संक्षिप्त रिपोर्ट दिसम्बर 2006

छह वर्ष से कम के बच्चों पर फोकस

15663
CLIC
SOPHEA

SOCHARA
Community Health
Library and Information Centre (CLIC)
Community Health Cell
85/2, 1st Main, Maruthi Nagar,
Madiwala, Bengaluru - 560 068.
Tel : 080 - 25531518
email : clic@sochara.org / chc@sochara.org
www.sochara.org

छह वर्ष से कम के बच्चों पर फोकस

COMMUNITY HEALTH CELL
Library and Information Centre
No. 367, Srinivasa Nilaya, Jakkasandra,
I Main, I Block, Koramangala, Bangalore - 560 034.

THIS BOOK MUST BE RETURNED BY THE DATE LAST STAMPED		

संक्षिप्त रिपोर्ट

दिसम्बर 2006

अनुवाद – अरविन्द मोहन

© सिटीजन्स इनिशिएटिव फॉर द राइट्स ऑफ चिल्ड्रेन अंडर सिक्स

कवर डिजाइन : अनुराधा मधुसूदनन
कवर फोटोग्राफ : अनिता खेमका – सभार मोबाइल क्रेश
ले-आउट – अवधेश कुमार
प्रिंटिंग – मैन्सा कम्प्यूटर्स प्रा. लि.

फोटोग्राफ : अनिता खेमका, अरिन्दम साहा, निधि विज, शशि पंडित

फोकस रिपोर्ट की हिन्दी अनुवाद टीम

अरविन्द मोहन

अजय कुमार सिंह | गुंजन शर्मा
अजीत कुमार द्विवेदी | विजय कुमार
डॉ. एम.ए. ख़ालिक़ | गुरमिन्दर सिंह

प्रतियाँ प्राप्त करने के लिए सम्पर्क

सिटीजन्स इनिशिएटिव फॉर द राइट ऑफ चिल्ड्रेन अंडर सिक्स
सर्कस, राइट टू फूड कंपेन सचिवालय,
5-ए, जंगी हाउस, शाहपुर जट,
नई दिल्ली-110049 (फोन 011-24699563)
ई मेल : righttofood@gmail.com
वेबसाइट : www.righttofoodindia.org

फोकस के इस हिन्दी संस्करण के लिए प्रकाशन सहयोग "ऑफिस ऑफ दी कमिश्नरस टू दी सुप्रीम कोर्ट (सिविल रिट पिटीशन 196, 2001)" www.sccommissioners.org का रहा है।

CH-100
15663 P06

भूमिका

यह रिपोर्ट छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों को सार्वजनिक चर्चा और लोकतांत्रिक राजनीति के केन्द्र में लाने का सामूहिक प्रयास है। इस लम्बी यात्रा में काफी सारे लागों ने हिस्सा लिया है। किसी का काम थोड़ा ज्यादा है तो किसी ने परदे के पीछे रहकर ही काम किया है। उन सबका जिक्र करना असम्भव है। पर कुछ प्रमुख लोगों और कामों का जिक्र नीचें किया गया है।

यह रिपोर्ट छह राज्यों : छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में मई-जून 2004 में एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के तहत चल रहे कामों के सर्वेक्षण पर आधारित है। हम इसे 'फोकस' सर्वेक्षण कहेंगे। आंगनवाड़ियों और गांवों तक जाकर सर्वेक्षण का काम करने वालों में ज्यादातर लोग विश्वविद्यालयों के छात्र थे, जिन्होंने बिना किसी पारिश्रमिक के काम किया। हम इन सबके आभारी है – सिर्फ भीषण गर्मी में दूर-दराज के मुश्किल इलाकों में जाकर सर्वेक्षण करने के लिए ही नहीं, अपने जुटाये तथ्यों की व्याख्या में मदद करने के लिए भी। यह रिपोर्ट सर्वेक्षण में जुटे आंकड़ों के साथ ही सर्वेक्षणकर्ताओं द्वारा खुद से देखी गई चीजों के विवरण पर आधारित है। इस सर्वेक्षण को करने का काम जिन लोगों ने किया उनमें से हम अनुराधा डे, क्लेयर नरोन्हा, कविता श्रीवास्तव, मीरा सैमसन, सुधा नारायणन और स्वाति दास के साथ ही उन स्थानीय संस्थाओं का धन्यवाद करना चाहेंगे जिन्होंने सर्वेक्षणवाली टोलियों के ठहरने, आने-जाने से लेकर सर्वेक्षण करने में हर तरह की मदद की।

एक और महत्वपूर्ण गतिविधि मसूरी स्थित राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी में नवम्बर 2004 में "सबको स्तरीय सेवा : एकीकृत बाल विकास सेवा के लिए एक एजेंडा" इस विषय पर आयोजित कार्यशाला थी। इस कार्यशाला की रिपोर्ट 26 अगस्त 2006 के 'इकनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली' में प्रकाशित हुई थी। हम लेखकों और मसूरी कार्यशाला में भाग लेने वाले अन्य लोगों के आभारी हैं जिन्होंने काफी महत्वपूर्ण बातों को उठाया।

रिपोर्ट में 'फोकस' सर्वेक्षण मंडली के "विस्तृत परिवार" के सदस्यों के पुराने लेखन में से काफी चीजें उन्मुक्त भाव से ली गई हैं। रिपोर्ट में पाद टिप्पणियों का बोझ न बनाते हुए भी हमने मूल स्रोतों का उल्लेख करने की भरपूर कोशिश अपनी ओर से की है। हम इस

रिपोर्ट के विभिन्न पक्षों पर 'बाक्स' की सामग्री से इसमें योगदान करने वाले लोगों के भी आभारी हैं। इनके नाम है : ए.के. शिव कुमार, अनिता रामपाल, अंजलि एलेक्जेंडर, अंतु साहा, अनुराधा के. राजीवन, अरुण गुप्ता, दीक्षा शर्मा, देविका सिंह, इनाक्षी गांगुली ठुकराल, गोविन्द रथ, गुरजीत, इंदु कौड़ा, जोएल ली, जॉन रोढे, किरण भट्टी, लीला विसारिया, एम. कुमारन, मधु सरीन, मीना स्वामीनाथन, मिराई चटर्जी, मृदुला बजाज, रॉली शिवहरे, एस. आनंदलक्ष्मी, सचिन जैन, समीर गर्ग, संदीप नाइक, शालिनी ताई मोधे, शांता सिंहा, शांति घोष, श्रद्धा कपूर, सुधा नारायणन, सुधा सुंदररामन, सुखदेव थोराट, सुरभि चोपड़ा, टी. सुंदररामन, तारा गोपालदास, ऊषा राणे और विमला रामचन्द्रन्। अनिता रामपाल का विशेष धन्यवाद क्योंकि स्कूल-पूर्व शिक्षा वाले हिस्से को लिखने में उनका योगदान महत्वपूर्ण है।

हम उन सभी लोगों का भी धन्यवाद करना चाहेंगे जिन्होंने हमें अपनी सामग्री भेजी या इस संक्षिप्त रिपोर्ट में जिसका उपयोग नहीं हो पाया। इसके अनेक कारण थे। खैर, छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों की स्थिति को बताने वाली हर चीज़ महत्वपूर्ण है और हमने अपने पास आई सामग्री का उपयोग करने की हर सम्भव कोशिश की है। फिर भी हमें मिली हर चीज को इस रिपोर्ट में नहीं लिया जा सका। कई बार एक ही तरह की सामगी कई लोगों ने भेजी थी तो कई बार स्थान और पठनीयता का दबाव भी था।

इन लिखित सामग्रियों के अलावा रिपोर्ट में पिछले कुछ वर्षों के दौरान हुई चर्चाओं, बैठकों, कार्यशालाओं और सम्मेलनों में निकले निष्कर्षों और मुद्दों को भी शामिल किया गया है। इस सिलसिले में 7-9 अप्रैल 2006 को हैदराबाद में "भोजन पर बाल अधिकार" सम्मेलन का विशेष उल्लेख जरूरी है (अधिक विवरण के लिए देखें www.righttofoodindia. org)

विशाल वट वृक्ष की तरह इन हर आयोजन में आगे की कई चीजें निकलीं बढ़ीं और जिन लोगों ने भी इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में हिस्सेदारी की उन सभी का आभार। इसमें मुख्य भाषण देने वाले से लेकर छोटे-छोटे कामों तक में योगदान करने वाले सभी लोगों के प्रति आभार शामिल है।

इस रिपोर्ट को तैयार करने का काम सिटीजन्स इनिशिएटिव फॉर द राइट्स ऑफ चिल्ड्रेन अंडर सिक्स (अंग्रेजी के प्रथमाक्षरों से बना शब्द circus – सर्कस) या 'सर्कस' एक अनौपचारिक किस्म का समूह ही है। यह एक छोटी टीम है जो सुप्रीम कोर्ट के आयुक्तों और राइट टू फूड कंपेन के अभियान के बीच एक पुल की तरह काम करती है। 'सर्कस' की कोई सदस्यता तय नहीं है। इस रिपोर्ट को तैयार करने में सक्रिय भागीदारी निभाने वालों में थे बिराज पटनायक, सी.पी. सुजया, देविका सिंह, दीपा सिन्हा, गुरमिन्दर सिंह, हर्ष मंदर, ज्यां द्रेज़, नवज्योति, नंदिनी नायक, रीतिका खेड़ा, शोनाली सेन, स्पुर्थि रेड्डी, तनुश्री सूद, वंदना भाटिया, वंदना प्रसाद और विवेक एस.। इसमें से अनेक लोगों ने फोकस सर्वेक्षण में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया था।

'सर्कस' के कलाकारों के अलावा कुछ सचमुच के कलाकारों ने भी इस रिपोर्ट को तैयार करने में मदद की। रिपोर्ट का आवरण तैयार करने के लिए अनुराधा मधुसूदनन विशेष धन्यवाद की पात्र है। आंकड़ों का विश्लेषण में क्रिश्चियन ओल्डिगेम ने तथा संपादन के काम में सुहैल अकबर और अरुद्र बुर्रा ने मदद की उनका भी धन्यवाद।

19 दिसम्बर 2006 में दिल्ली को होने वाले 'बाल अधिकार संवाद' के लिए यह संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार की गयी। इसे जल्दी ही संशोधित और विस्तृत बनाया जाएगा जिसे सबके लिए उपलब्ध किया जाएगा। अगर इसे सुधारने के लिए आप कोई सुझाव और टिप्पणी भेजना चाहते हैं तो हमें नीचे लिखे पते पर भेजें। हमें आपके सुझावों का इंतजार रहेगा।

सिटीजन्स इनिशिएटिव फॉर द राइट्स ऑफ चिल्ड्रेन अंडर सिक्स
दिसम्बर 2006

सम्पर्क का पता :
सर्कस, राइट टू फूड कंपेन सचिवालय,
5-ए, जंगी हाउस, शाहपुर जट,
नई दिल्ली-110049 (फोन 011-24699563)
ई मेल : righttofood@gmail.com
वेबसाइट : www.righttofoodindia.org

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-III के आंकड़ों के बारे में स्पष्टीकरण

इस रिपोर्ट के प्रकाशित होने तक राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-III (यह सर्वेक्षण 2005-06 में हुआ था) के आंकड़े जारी होने की प्रक्रिया में है। यह देरी बहुत असम्भावित थी इसलिए हमने इस रिपोर्ट में उसके आंकड़ों (खासकर अखिल भारतीय सांख्यिवाले) को आखिरी वक्त में निकाल दिया। लेकिन इस सर्वेक्षण के आधिकारिक बेबसाइट (www.nfhsindia.org) पर उपलब्ध या मीडिया में आ गए डाटा को बनाए रखा है। इस रिपोर्ट में राज्यों के बारे में आए उसके आंकड़े आधिकारिक बेबसाइट के हैं। कहीं-कहीं अखिल भारतीय आंकड़े भी रह गए हैं (जैसे चार्ट 2.2), पर उन्हें आधिकारिक रूप से जारी हुए बगैर पक्का न माना जाए।

– 14 दिसम्बर 2006

विषय - सूची

1. बाल अधिकार और लोकतंत्र

1.1 भूमिका

1.2 बच्चे और लोकतांत्रिक राजनीति

1.3 बच्चों का ध्यान रखने की सामाजिक ज़िम्मेदारी

1.4 अधिकारों का क्या लाभ है

2. भारतीय बच्चों की स्थिति

2.1 शुरुआत से ही मुश्किल

2.2 धीमा विकास

2.3 भारत और दक्षिण एशिया

2.4 क्षेत्रीय विरोधाभास

3. एकीकृत बाल विकास सेवाएं 'हक' बनें

3.1 एकीकृत बाल विकास सेवाएं : शुरुआती सोच

3.2 वित्तीय आवंटन

3.3 सुप्रीम कोर्ट के आदेश

3.4 सबको स्तरीय सेवा

4. ज़मीनी हक़ीक़त

4.1 फोकस सर्वेक्षण

4.2 एकीकृत बाल विकास सेवाओं का हाल क्या है?

4.3 सर्वेक्षण में क्या दिखा

4.4 सामाजिक भेदभाव

5. आंगनवाड़ियों का हाल

5.1 पूरक पोषाहार कार्यक्रम

5.2 नवजातों और शिशुओं का आहार

5.3 स्वास्थ्य सेवाएं

5.4 प्रसव पूर्व देखरेख और मातृत्व स्वास्थ्य

5.5 स्कूल-पूर्व की शिक्षा

6. आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की दुनिया

6.1 भारत की गुमनाम नायिकाएं

6.2 आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की परेशानियां

6.3 आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और स्थानीय समुदाय

7. तमिलनाडु का अनुभव

7.1 तमिलनाडु की सफलताओं के सन्दर्भ

7.2 बाल विकास सेवाओं का फर्क

7.3 उपयोगी माहौल और बच्चों की राजनीति

8. हम क्या कर सकते हैं

8.1 नीतिगत प्राथमिकताएं

8.2 क़ानूनी पहल

8.3 सामुदायिक सक्रियता

8.4 प्रचार अभियान, मीडिया और अनुसंधान

8.5 छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों का भविष्य

परिशिष्ट : 11वीं योजना में छह वर्ष के कम उम्र के बच्चे

संलग्नः एकीकृत बाल विकास सेवा पर सर्वोच्च न्यायालय का आदेश (13 दिसम्बर 2006)

सन्दर्भ सूची

बाक्सों की सूची

बाक्स 1.1 : बाल स्वास्थ्य : एक राजनैतिक चुनौती (शांता सिन्हा)
बाक्स 1.2 : संसद में बच्चों से जुड़े मुद्दे (हक : बाल अधिकार केन्द्र)
बाक्स 1.3 : बच्चों ने हमें क्या सिखाया (मिराई चटर्जी)
बाक्स 1.4 : मातृत्व से जुड़े लाभ और बाल अधिकार (देविका सिंह)
बाक्स 1.5 : बालवाड़ी : क्या इन पर खर्च उचित है? (देविका सिंह)
बाक्स 1.6 : बच्चों के अधिकारों की कानूनी सुरक्षा (सुरभि चोपड़ा)
बाक्स 1.7 : कार्यस्थल पर बच्चों की देखरेख और रोजगार गारंटी कानून (किरण भट्टी)

बाक्स 2.1 : बांग्लादेश से भी पिछड़े (ज्यां द्रेज़)
बाक्स 2.2 : बांग्लादेश में बाल विकास (जान रोढे और ए.के. शिवकुमार)
बाक्स 2.3 : सहरिया बच्चे (रोली शिवहरे)
बाक्स 2.4 : हिमाचल प्रदेश में स्कूली क्रांति (किरण भट्टी)

बाक्स 3.1 : बुनियादी एकीकृत बाल विकास सेवाएं
बाक्स 3.2 : बाल विकास सेवा : मुख्य कार्यकर्ता
बाक्स 3.3 : छह वर्ष से कम उम्र के बच्चे और बजट (हक : बाल अधिकार केन्द्र)
बाक्स 3.4 : एकीकृत बाल विकास सेवाओं पर सुप्रीप कोर्ट के आदेश (नंदिनी नायक)
बाक्स 3.5 : 'निवेश' के तौर पर बाल विकास (सुधा नारायणन)

बाक्स 4.1 : फोकस में नृशास्त्री (अंतु साहा)
बाक्स 4.2 : एकीकृत बाल विकास सेवाओं में मानवीय कारक (विमला रामचंद्रन)
बाक्स 4.3 : कर्मचारियों का नज़रिया बाधक बना (समीर गर्ग)
बाक्स 4.4 : भारत में बिसरे वनवासी बच्चे (मधु सरीन)
बाक्स 4.5 : दोपहर के भोजन में जातिगत भेदभाव (सुखदेव थोराट और जोएॅल ली)
बाक्स 4.6 : एकीकृत बाल विकास सेवाएं और विक्लांग बच्चे (कुमारन और हर्ष मंदर)
बाक्स 4.7 : प्रवासी और दिहाड़ी मजदूरों के बच्चे (हर्ष मंदर और कुमारन)

बाक्स 5.1 : माँ का दूध पिलाओं, कुपोषण भगाओ (शांति घोष)
बाक्स 5.2 : अव्यक्त भूख और संभावित मदद (तारा गोपालदास)
बाक्स 5.3 : भोजन का अधिकार बनाम लूट का अधिकार व ठेकेदारों की छाया (बिराज पटनायक)
बाक्स 5.4 : शिशु और बाल आहार (दीक्षा शर्मा और अरुण गुप्ता)
बाक्स 5.5 : पहले घंटे का जादू (अरुण गुप्ता)
बाक्स 5.6 : बाल शक्ति योजना : कुपोषण रोकने की मध्य प्रदेश में कल्पनाशील पहल (डॉ. वंदना प्रसाद)

बाक्स 5.7 : एकीकृत बाल विकास सेवाएं और सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता (टी. सुदंररामन)
बाक्स 5.8 : खेल खेल में (मृदुला बजाज)
बाक्स 5.9 : सीखने के चमत्कार (अनीता रामपाल)
बाक्स 5.10 : पुणे का शिशुवाचन कार्यक्रम (ऊषा राणे)
बाक्स 5.11 : सीखने का आनन्द (मीना स्वामीनाथन)

बाक्स 6.1 : नाम में क्या रखा है? (मीना स्वामीनाथन)
बाक्स 6.2 : ख्याति से वंचित नायिकाएँ : ताराबाई मोडाक और अनुताई वाग (संदीप नायक और अन्य)
बाक्स 6.3 : नारकंडा में कठिन संघर्ष (डॉ. वन्दना प्रसाद)
बाक्स 6.4 : आंगनवाड़ी कार्यकर्ता संघ की मांग (सुधा संदररामन)
बाक्स 6.5 : सृजनात्मक प्रशिक्षण : सेवा का बालनंदशाला (एम. आनन्दलक्ष्मी)
बाक्स 6.6 : महिला मंडल का ज़िम्मा (सी.पी. सुजाया)
बाक्स 6.7 : आन्ध्र प्रदेश में समुदाय की लामबन्दी (दीपा सिन्हा)
बाक्स 6.8 : आंगनवाड़ी के अन्दर और बाहर के आदिवासी बच्चे (गोविन्द रथ)

बाक्स 7.1 : उत्तर भारत के नजरिए से तमिलनाडु (ज्यां द्रेज़)
बाक्स 7.2 : माँ और बच्चे के लिए चिन्ता : तमिलनाडु में मातृत्व लाभ (मीना स्वामीनाथन)
बाक्स 7.3 : तमिलनाडु में स्वास्थ्य सेवाओं का सामाजिक सन्दर्भ (लीला विसारिया)
बाक्स 7.4 : तमिलनाडु की जीवंत आंगनवाड़ियां (एस. विवेक)
बाक्स 7.5 : आंगनवाड़ियों में खेल (एस. विवेक)
बाक्स 7.6 : तमिलनाडु का दो कार्यकर्ता मॉडल (मीना स्वामीनाथन)
बाक्स 7.7 : तमिलनाडु में सार्वजनिक स्वास्थ्य की पहल (लीला विसरिया)
बाक्स 7.8 : तमिलनाडु में प्रशिक्षण कार्यक्रम (एस. विवेक)
बाक्स 7.9 : तमिलनाडु में बाल पोषाहार की राजनीति : सामाजिक और राजनैतिक फायदों का मेल (अनुराधा के. राजीवन)
बाक्स 7.10 : फोकस सर्वेक्षण : एक आकलन (सुधा नारायणन)

बाक्स 8.1 : झारखण्ड में दोपहर का भोजन अभियान (गुरजीत)
बाक्स 8.2 : मुम्बई हाई कोर्ट के महत्वपूर्ण फैसले
बाक्स 8.3 : छत्तीसगढ़ के कोरिया जिले में आईसीडीएस के लिए ज़मीनी स्तर पर लामबन्दी (समीर गर्ग)
बाक्स 8.4 : आंगनवाडी को सामाजिक संरक्षण (नवज्योति)
बाक्स 8.5 : मोबाइल क्रेश (अंजलि एलेक्जेंडर)
बाक्स 8.6 : बच्चों के साथ सीखना (इंदु कौड़ा और श्रद्धा कपूर)
बाक्स 8.7 : दिल्ली में बाल अधिकार यात्रा (गुरमिन्दर सिंह)
बाक्स 8.8 : भूख और मीडिया (सचिन कुमार जैन)

चार्टों की सूची

चार्ट 1.1 : मीडिया में बच्चों के मामले

चार्ट 2.1 : भारत : मातृ स्वास्थ्य और सम्बन्ध संकेतक
चार्ट 2.2 : भारत में बच्चों की स्थिति
चार्ट 2.3 : भारत और दक्षिण एशिया में बच्चों की बदहाली, 2004
चार्ट 2.4 : भारत और बांग्लादेश : बाल कल्याण और संबंधित संकेतक, 2004
चार्ट 2.5 : बाल विकास में क्षेत्रीय तुलना 1998-99

चार्ट 3.1 : पूरक पोषाहार कार्यक्रम के लिए राज्यों को आवंटन 2002-03
चार्ट 3.2 : पूरक पोषाहार कार्यक्रम पर धन का आवंटन और उपयोग 2003-04

चार्ट 4.1 : फोकस सर्वेक्षण : माताओं की योजना के बारे में धारणा
चार्ट 4.2 : फोकस सर्वेक्षण : सर्वेक्षणकर्ताओं की राय
चार्ट 4.3 : आंगनवाड़िओं में बुनियादी सुविधाएं
चार्ट 4.4 : सामाजिक भेदभाव का अनुभव
चार्ट 4.5 : विभिन्न सामाजिक समूहों की आंगनवाड़ी तक पहुंच
चार्ट 4.6 : एकीकृत बाल विकास सेवाओं में अनुसूचित जाति/जनजाति की भागीदारी

चार्ट 5.1 : एकीकृत बाल विकास सेवा में क्वालिटी का अंतर : पूरक पोषाहार कार्यक्रम
चार्ट 5.2 : पूरक पोषाहार में दिये जाने वाले भोजन के प्रकार
चार्ट 5.3 : बनाकर दिये भोजन का बच्चों की उपस्थिति पर प्रभाव
चार्ट 5.4 : नवजात के आहार पर परामर्श
चार्ट 5.5 : फोकस गांवों में बाल-रुग्णता
चार्ट 5.6 : एकीकृत बाल विकास सेवाओं के अंतर्गत स्वास्थ्य सेवाएं
चार्ट 5.7 : स्वास्थ्य कार्यकर्ता का दौरा : नियमितता और सम्भावना
चार्ट 5.8 : स्वास्थ्य संकेतकों की प्रगति : छत्तीसगढ़ और भारत
चार्ट 5.9 : एकीकृत बाल विकास सेवा में प्रसवपूर्व देखरेख और मातृत्व स्वास्थ्य
चार्ट 5.10 : आंगनवाड़ी में स्कूल-पूर्व शिक्षा : सर्वेक्षण में आई माताओं की राय
चार्ट 5.11 : दूरी का प्रभाव : आंगनवाड़ी और प्राथमिक स्कूल

चार्ट 6.1 : आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिका की सामाजिक पृष्ठभूमि
चार्ट 6.2 : आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के लिए परेशानी का कारण
चार्ट 6.3 : बाहर के कामों का बोझ
चार्ट 6.4 : आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं का प्रशिक्षण

चार्ट 7.1 : स्वास्थ्य संकेतक : राजस्थान और तमिलनाडु 2005–06
चार्ट 7.2 : तमिलनाडु का अलग रूप

प्रथमाक्षरों की सूची

ANM	–	सहायक नर्स / मिडवाइफ
ASHA	–	पंजीकृत सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता
AWC	–	आंगनवाड़ी केन्द्र
AWH	–	आंगनवाड़ी सहायिका
AWW	–	आंगनवाड़ी कार्यकर्ता
CDPO	–	बाल विकास परियोजना अधिकारी
DPEP	–	जिला प्राथमिक शिक्षा योजना
ECCE	–	अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन – शिशु की देखभाल और स्कूल-पूर्व शिक्षा
FOCUS	–	छह वर्ष से कम के बच्चों पर फोकस
ICDS	–	इंटिग्रेटेड चाइल्ड डेवलपमेंट सर्विसेज – एकीकृत बाल विकास सेवाएं
IYCF	–	शिशु व बालक खान-पान
LHV	–	महिला स्वास्थ्य पर्यवेक्षक
NHE	–	पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा
NRMH	–	राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन
PDS	–	जन वितरण प्रणाली/राशन प्रणाली
PHC	–	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र
PMGY	–	प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना
PUCL	–	पिपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबिर्टी
PSE	–	पूर्व-स्कूल शिक्षा
RTE	–	भोजन के लिए तैयार
SNP	–	पूरक पोषाहार कार्यक्रम
THR	–	घर ले जाने वाला अनाज
WFP	–	विश्व खाद्य कार्यक्रम

1. बाल अधिकार और लोकतंत्र

अरिन्दम साहा

1.1 भूमिका

ज़रा कल्पना कीजिए कि कोई माली अपने फूलों को इस तरह उगाता है कि उन्हें कई हफ्तों तक धूप और पानी ही नहीं मिलता, लोगों को उन्हें रौंदने देता है और फिर खूब खाद डालकर जल्दी से इस बीच हुई गड़बड़ियों की भरपाई कर लेना चाहता है। निस्संदेह ऐसे व्यक्ति को पागलखाने भेजने के लायक ही माना जाएगा। पर भारतीय बच्चों के साथ कुछ ऐसा ही बर्ताव हो रहा है। छह वर्ष की उम्र तक तो उनकी कोई परवाह नहीं करता, उन्हें अपने ढंग से बढ़ने दिया जाता है फिर उन्हें घेर-घार कर स्कूल ले जाया जाता है और दनादन एक पर एक चीजों की घुट्टी पिलानी शुरू कर दी जाती है। पर बच्चों के विकास में उनके शुरुआती छह वर्षों (खास तौर से पहले दो वर्षों) का बहुत महत्व है और इसी दौरान बच्चे के स्वास्थ्य, उसके हितों, उसके नज़रिए और अवसरों की काफी सारी चीजें निर्धारित हो जाती हैं जो जीवन भर बनी रहती हैं।

और बच्चों के प्रति इस व्यवहार के नतीजे हमारे सामने हैं। भारत के करीब आधे बच्चे कुपोषित हैं, आधे से ज़्यादा खून की कमी

के शिकार हैं और लगभग इतने ही बच्चे पूर्ण टीकाकरण से वंचित हैं। दुनिया के बहुत कम देशों में ही बाल कल्याण की यह स्थिति है। नवीनतम मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में कुपोषित बच्चों का अनुपात दुनिया में सबसे ज़्यादा है और उसके साथ सिर्फ बांग्लादेश, इथियोपिया और नेपाल की ही तुलना की जा सकती है। इस मानवीय अनर्थ का नुकसान सिर्फ उन बच्चों और उनके परिवारों को ही नहीं है या यह सिर्फ उनके मौलिक अधिकारों का हनन ही नहीं है, यह पूरे राष्ट्र का नुकसान है। भूख, कुपोषण और बीमार स्वास्थ्य के आधार पर एक अच्छे समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता।

इस पृष्ठभूमि में, इस सवाल पर फिर से गौर करने की तत्काल ज़रूरत है कि भारत छह वर्ष से कम आयु के बच्चों को बचाने, उनके कल्याण और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए क्या कर रहा है। मोटे तौर पर, इस मामले में दो तरह की कोशिशें दरकार हैं। पहली ज़रूरत है बच्चों की वंचना, जिसमें आम दरिद्रता, सामाजिक भेदभाव, शिक्षा की कमी और लैंगिक असमानता शामिल हैं, के बुनियादी कारणों की पहचान करके उन्हें दूर करने की कोशिश करना। दूसरा काम इन बच्चों को तत्काल बाल विकास सेवाओं की एक प्रभावी व्यवस्था से जोड़कर उनका संरक्षण करना। इसी तात्कालिक लक्ष्य को ध्यान में रखकर यह रिपोर्ट लिखी गई है।

यह रिपोर्ट सिर्फ एक 'शोधपत्र' मात्र नहीं है। हमारा मानना है कि यह ठोस शोध और

बाक्स 1.1. बाल स्वास्थ्यः एक राजनैतिक चुनौती

भारतीय संदर्भ में गरीब के घर स्वस्थ बच्चा हो जाए और जच्चा-बच्चा दोनों जिंदा बचे रह जाएं यह बात भरोसे से नहीं कही जा सकती। स्वास्थ्य और पोषण के मामलों में घनघोर असमानता को चलने देने वाली तथा नवजात बच्चों और जच्चा के कल्याण और उनके प्रति जरा भी आदर भाव न दिखाने वाली राजनैतिक व्यवस्था को पूरी तरह लोकतांत्रिक मानना उचित नहीं है। हर बच्चे का पूरा ध्यान रखने की चौकस व्यवस्था हो और ये चीजें बच्चों का अधिकार हैं यह मानने वाली व्यवस्था सभी सार्वजनिक संस्थाओं के लोकतांत्रिकरण और सार्वजनिक सक्रियता से जन दवाब बनाने से ही संभव है। पर अभी जो हाल है वह मुल्क क कानूनी व्यवस्था, इसकी संस्थागत व्यवस्थाओं, सत्ता के संतुलन और प्राथमिकताओं को ही बताता है। एक तरह से देखें तो भारत में जच्चा-बच्चा का स्वास्थ्य और उनके जीवित रहने का दर भारतीय लोकतंत्र के स्वास्थ्य को भी बताता है।

हर बच्चे के स्वास्थ्य, पोषण और कल्याण का पूरा खयाल रखने के लिए पहले परिवार, समुदाय, प्रांत, राष्ट्र और वैश्विक स्तर पर सत्ता के स्वरूप, वैचारिक स्पष्टता और नीतिगत प्राथमिकताओं में बदलाव जरूरी है। ये मुद्दे शायद ही कभी गंभीर बहस और चर्चा में आ पाते हैं तथा राजनैतिक दल भी इन में पहल लेना या सक्रियता दिखाना नहीं चाहते। चुनावी राजनीति और लोकतंत्र के सामान्य कामकाज के हिसाब से इसे महत्वपूर्ण नहीं माना जाता।

जच्चा-बच्चा का पूरा खयाल करना खैरात जैसा काम या सामान्य कल्याण कार्यक्रम नहीं है, असल में यह लोकतंत्र की कामकाज का केंद्रीय मुद्दा है। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तक सबकी पंहुच का सवाल हो या एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के तरह सबको स्तरीय सेवाएं देने का, इस तरह की मांग लोगों की तरफ से उठना नीतिगत गड़बड़ियों और शासन व्यवस्था में इन चीजों के प्रति व्याप्त उपेक्षाभाव को ही उजागर करता है। पर ऐसे दबाव से ही शासन के कामकाज में बदलाव आता है और नवजात बच्चों, शिशुओं और औरतों को सेवाएं उपलब्ध कराने की पहल होती है। स्वास्थ्य के अधिकार की इस लड़ाई से सत्ता और प्रमुख के ढांचे में बदलाव होता है। ये चीजें उन मूल्यों पर आधारित होती हैं जो व्यवस्था से बहुत गहरे तौर पर जुड़ी होती हैं। पर जब बदलाव शुरू होता है तो साफ हो जाता है कि शासन का स्वरूप कैसा है और नन्हें बच्चों और माताओं की इस बदहाल स्थिति का लाभ किन-किन लोगों को मिलता है। पर सार्वजनिक स्तर पर ऐसी सक्रियता से ही बाल स्वास्थ्य और पोषण का मसला भारतीय लोकतंत्र के केंद्रीय मंच पर आ सकता है। इसके लिए लोकतंत्र को और ज्यादा मजबूत होना होगा और बच्चों और उनके अधिकारों की परवाह करने वाले नेतृत्व को आगे आना होगा।

वास्तविक लोकतंत्र में हर बच्चे को अमूल्य मानना चाहिए और जच्चा-बच्चा की मौत के लिए सरकार को जवाबदेह मानना चाहिए। शिशु मृत्यु रोकने और बाल स्वास्थ्य का बंदोबस्त करने के लिए नीतियों के स्वरूप में जो बदलाव जरूरी है उसमें किसी किस्म का समझौता नहीं चल सकता। इसका मतलब है सबको नीतिगत लाभ पंहुचाना, पेशेवर सेवाएं देना, बहुत लाभ घाटे का हिसाब लगाए बिना धन खर्च करना तथा बच्चों के सामाजिक और राजनैतिक वर्गीकरण को भुलाकर सभी बच्चों को व्यवस्थित संस्थागत मदद और संरक्षण देना। यह करना आसान नहीं है क्योंकि इसमें गरीब को इन्हीं साधनों और सुबिधाओं के लिए अधिक ताकतवर जमातों से मुकाबला करना होगा जिनकी प्राथमिकताएं सभी बच्चों का कल्याण हो यह जरूरी नहीं है।

राज्य और देश के स्तर पर ही नहीं स्थानीय स्तर की संस्थाओं के स्तर से लोगों की सक्रियता को जोड़ने से ही समाज के लोग सत्ता में बैठे लोगों से सवाल पूछ सकते हैं, उनसे अपने लाभ की व्यवस्था करने को कह सकते हैं और इस चीज का इंतजाम करा सकते हैं कि हर बच्चे को एकीकृत बाल विकास सेवा योजना का लाभ मिले और यह छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों के अधिकारों की रक्षा करने वाली संस्था के रूप में उभरे। इसके लिए जरूरी है कि फैसले लेने की प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी हो और सार्वजनिक जीवन में वास्तविक लोकतंत्र आए। एकीकृत बाल विकास योजना को भी सत्ता की सांप-सीढ़ी के खेल में एक बड़े खिलाड़ी के रूप में उभरना और दिखना चाहिए।

सार्वजनिक गतिविधियों और दबाव से जब व्यवस्था को डर लगने लगे और वह बच्चों के स्वास्थ्य और कल्याण के अधिकारों के पक्ष में बड़े बदलाव करने लगे तभी लोकतंत्र अपने वास्तविक रंग में आता है। प्रत्येक कुपोषित बच्चा लोकतंत्र विरोधी ताकतों और उनके गठजोड़ के पूरे ताना बाना को चुनौती देता है।

सहयोग – शांता सिन्हा

अनुसंधान पर आधारित है। लेकिन यह कार्यक्रम और गतिविधि चलाने वाली रिपोर्ट है, जिसका उद्देश्य छह वर्ष से कम के बच्चों के अधिकारों की सार्वजनिक चिंता और सक्रियता बढ़ाना है। हर सचेत नागरिक को (इस रिपोर्ट के पाठक, आप को भी) इस प्रयास में कुछ न कुछ योगदान करना है। पर प्रभावी कदम उठाने के लिए पहले बुनियादी मुद्दों की ठोस जानकारी ज़रूरी है। इसी भावना से हम इस अध्ययन की शुरुआत बाल अधिकारों को लोकतांत्रिक राजनीति के बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में रखकर कर रहे हैं। यह स्वाभाविक रूप से शुरुआत का बिन्दु है, क्योंकि भारतीय बच्चों की यह दुर्दशा बताती है कि हमारे यहां बाल अधिकारों के प्रति राजनैतिक निष्ठा में घनघोर कमी है।

1.2 बच्चे और लोकतांत्रिक राजनीति

भारत को अक्सर 'दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र' कहा जाता है। निश्चित रूप से यह सबसे बड़ा लोकतंत्र तो है पर लोकतंत्र है कैसा? इस सवाल पर अलग-अलग राय संभव है। अगर हम भारत की लोकतांत्रिक संस्थाओं के सामान्य हाल पर नज़र डालेंगे तो अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में वे बहुत खराब नहीं लगेंगी। इसकी चुनाव प्रणाली पर्याप्त विश्वसनीय है, संसद का कामकाज भी ठीक ठाक ढंग से चलता है, न्यायपालिका स्वतंत्र है, प्रेस आज़ाद है, सामाजिक आंदोलनों की सक्रियता और संख्या में कमी नहीं है, तर्क और वाद विवाद की पुरानी मज़बूत परंपरा अब तक कायम है, वगैरह। दूसरी तरफ अगर हम लोकतंत्र को 'लोगों की, लोगों के द्वारा और लोगों के लिए सरकार' वाली सर्वमान्य परिभाषा को मानें तो हर मामले में अभी बहुत कुछ करना बाकी पड़ा है। इन लोकतांत्रिक संस्थाओं में ज़्यादातर लोगों की बहुत ही सीमित अर्थों वाली भागीदारी है। इसके लिए उनकी दरिद्रता भी ज़िम्मेदार है, और अशिक्षा भी, सामाजिक भेदभाव ज़िम्मेदार है और तमाम किस्म की वंचनाएं भी। दूसरी और समाज की ताकतवर जमातों (अमीर वर्ग, कार्पोरेट क्षेत्र, सैनिक प्रतिष्ठान वगैरह) का लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और सार्वजनिक नीतियों पर काफी प्रभाव बना हुआ है। इसी चलते आज़ादी के साठ वर्ष बाद भी भारत में इतने सारे लोग अनेक बुनियादी सुविधाओं : स्वास्थ्य सेवा, साफ पानी, अच्छी शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा वगैरह से वंचित हैं।

इस बहुत ही असंतुलित किस्म के लोकतंत्र में, जहां अक्सर गरीब लोगों की ज़रूरतों की ज़्यादा परवाह नहीं होती, बच्चों के कल्याण कार्यक्रमों तथा अधिकारों की और भी अधिक उपेक्षा होती है। निश्चित रूप से गरीब बच्चों को तो दोहरी मार झेलनी पड़ती है। इस राजनैतिक व्यवस्था में उनके परिवार की उपेक्षा का दंड तो उन्हें भी भुगतना ही होता है, खुद परिवार में उनकी कोई नहीं सुनता और उनकी ज़रा भी नहीं चलती है।

भारतीय लोकतंत्र में बच्चों के निरंतर हाशिये पर पड़े रहने का प्रमाण मुख्यधारा की मीडिया से उनकी या उनके मुद्दों का गायब रहना भी है। चार्ट 1.1 में यही बात भारत के एक प्रमुख राष्ट्रीय अंग्रेज़ी दैनिक 'हिन्दू' में प्रकाशित विभिन्न विषयों के लेखों के हिसाब-किताब को दिखाता है। मुख्यधारा की मीडिया के कुलीन रुझान स्पष्ट और कई तरह से दिखाई देते हैं। हम जैसे ही शैक्षिक प्रणाली में ऊपर की तरफ बढ़ने लगते हैं, मीडिया में उसकी चिंता भी उसी हिसाब से ज़्यादा दिखाई देती है। जैसे 'आंगनवाड़ी'* को जितनी जगह मिली है उससे दो गुनी जगह 'प्राथमिक शिक्षा' को मिली है। 'माध्यमिक शिक्षा' को उससे छह गुनी ज़्यादा और 'विश्वविद्यालय शिक्षा' को उससे 40 गुनी ज्यादा जगह मिली है। इसी प्रकार एकीकृत बाल विकास सेवाओं की तुलना में प्राथमिक शिक्षा का ज़िक्र दो बार हुआ है, जबकि 'माध्यमिक शिक्षा' का तीन बार और उच्च शिक्षा का बारह बार। या विरोधाभास तक और ज्यादा तीखे ढंग से समझ में आता है जब हम इस तथ्य पर गौर करते हैं कि एकीकृत बाल विकास सेवा और नोबल पुरस्कार को बराबर जगह मिल पाती हैं।*

शिक्षा से अलग मसलों पर भी नज़र डालने से मुख्यधारा की मीडिया के पूर्वाग्रह कई तरह से सामने आते हैं। जैसे 'परमाणु हथियारों' का ज़िक्र भी लगभग उतनी ही बार हुआ है जितना 'प्राथमिक शिक्षा' का और 'प्रत्यक्ष विदेशी निवेश' का ज़िक्र 'बाल स्वास्थ्य,' 'बाल अधिकार' और 'बाल विकास' को जोड़कर बनने वाली संख्या के लगभग किया गया है। एक अलग गिनती के अनुसार 2006 में भारत और अमेरिका के बीच हुए कथित परमाणु करार का ज़िक्र एकीकृत बाल विकास सेवाओं से दो गुना ज़्यादा बार हुआ। इस बात का उल्लेख करना ज़रूरी है कि 'दि हिन्दू' अपेक्षाकृत गंभीर और प्रगतिशील अख़बार है और इसमें सामाजिक मसलों को अन्य राष्ट्रीय दैनिकों की तुलना में ज़्यादा जगह दी जाती है। राष्ट्रीय मुख्यधारा की मीडिया का कुलीन चरित्र तब और साफ दिखेगा जब हम 'टाइम्स आफ इंडिया' जैसे अखबार पर गौर करेंगे, हाल के वर्षों में तेजी से उभरे आर्थिक अखबारों का तो हिसाब और भी गड़बड़ है।

संसद की बहसों में बच्चों के मुद्दों को जितनी जगह एवं प्रमुखता मिलती है, उससे भी यही बात साबित होती है। संसदीय कार्यवाई का हाल में जब 'हक : सेंटर फार चाइल्ड राइट्स' ने विश्लेषण किया तो पाया

* यदि आप 'आईसीडीएस', 'आंगनवाड़ी' से परिचित नहीं हो तो कृपया खण्ड 3.1 को देखें फिर यहाँ से पढ़ना शुरू करें।

चार्ट : 1.1. मीडिया में बच्चों के मामले

मुख्य शब्द	हिन्दू में प्रकाशित लेखों की संख्या जिसमें प्रमुख शब्द आए हैं।			प्रति माह आने वाले लोगों की औसत संख्या
	2004	2005	2006[a]	
1. सीखने वाली संस्थाएं				
आंगनवाड़ी	440	412	297	34
प्राथमिक स्कूल	896	976	800	79
माध्यमिक स्कूल	2006	2247	2031	185
विश्वविद्यालय	13670	16030	13340	1266
आई.आई.टी.[b]	867	1079	950	85
2. शैक्षिक व्यवस्था				
एकीकृत बाल विकास सेवा[b]	147	182	115	13
प्राथमिक शिक्षा	322	284	211	24
माध्यमिक शिक्षा	385	468	409	37
उच्चतर शिक्षा	1650	1750	1990	158
नोबल पुरस्कार	121	124	88	10
3. अन्य मुद्दें				
बाल स्वास्थ्य[c]	183	201	140	15
बाल अधिकार[d]	186	193	173	16
फैशन शो	203	262	196	19
शॉपिंग मॉल	156	242	270	20
बाल विकास	263	321	246	24
परमाणु हथियार	250	291	301	25
परमाणु ऊर्जा	214	341	434	29
'सेज' – विशेष आर्थिक क्षेत्र	273	458	701	42
प्रत्यक्ष विदेशी निवेश	617	799	499	49
बॉलीवुड	851	1280	1160	97
क्रिकेट	4040	3640	2930	312

[a] *21 नवम्बर तक*

[b] *संक्षिप्त और पूरा नाम, दोनों शामिल।*

[c] *बाल स्वास्थ्य, बच्चों का स्वास्थ्य भी शामिल है।*

[d] *बच्चों के अधिकार, बच्चों का अधिकार भी शामिल।*

(नोट : कई मदों के साथ आने से अनुमान ज्यादा है)

स्रोत : हिन्दू के ऑन लाइन संस्करण है जो news.google.com/akarchivesearch पर उपलब्ध हैं। आंकड़े शब्दों की संख्या को बताते हैं जो इस अवधि में आए।

कि पिछले चार वर्षों में संसद में उठे सिर्फ तीन फीसदी सवाल ही बच्चों से संबंधित थे। और ये सवाल भी अक्सर बच्चों के मुद्दों पर सांसदों और पार्टियों की दिलचस्पी की जगह मीडिया की खबरों के आधार पर ही उठाए गए थे। इतना ही नहीं बच्चों से जुड़े जो मसले उठाए गए उनमें से भी 0-6 वर्ष उम्र के बच्चों की देखरेख और विकास वाले मसलों का हिस्सा 5 फीसदी से भी कम था। इतना ही नहीं बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण के मसलों पर सांसदों का ध्यान लगभग जाता ही नहीं है। (देखें बाक्स 1. 1)। संसदीय बहसों में बच्चों के मसलों की यह तस्वीर बहुत ही चिंताजनक तो है ही छह वर्ष से कम के बच्चों और उनकी बुनियादी ज़रूरतों की उपेक्षा इसे डरावना बना देती है।

लोकतांत्रिक राजनीति और सार्वजनिक नीतियों के मामले में बच्चों के मसलों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, पर इस स्थिति को बदला जा सकता है। ऐसा करना असंभव नहीं है। निश्चित रूप से सारी सीमाओं के बावजूद भारतीय लोकतंत्र में कमज़ोर जमातों के लिए भी कुछ न कुछ गुंजाइश बनती ही है। वे संगठित हो सकते हैं, अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं, पर जब मामला इतने नन्हें-मुन्नों का हो तो उनके लिए यह काम दूसरे लोगों को करना होगा, क्योंकि इस व्यवस्था में वे अपनी आवाज़ नहीं पंहुचा सकते और जैसा पहले कहा गया है इस मामले में सारे सचेत नागरिक अपने स्तर पर योगदान कर सकते हैं। इसीलिए इस रिपोर्ट का आखिरी अध्याय यही रखा गया है, "हम क्या कर सकते हैं।"

1.3. बच्चों का ध्यान रखने की सामाजिक ज़िम्मेदारी

इतने नन्हे बच्चों की देखरेख उनके परिवार में ही बेहतर ढंग से हो सकती है, यह

बाक्स 1.2. संसद में बच्चों से जुड़े मुद्दे

सरकार को बाल कल्याण के लिए ज्यादा सक्रिय करने में सांसदों का सामूहिक प्रभाव बहुत उपयोगी हो सकता है।

(श्री सोमनाथ चटर्जी, 'बालिकाओं के अधिकारों से जुड़े मुद्दे' पर उद्घाटन भाषण, मई 2006, नई दिल्ली)

संसद में जो मुद्दे उठते हैं और जिन पर वहां चर्चा होती है वह इस बात का सबसे अच्छा संकेत देते हैं कि हमारे चुने हुए प्रतिनिधियों ओर सरकार की प्राथमिकाएं क्या हैं। भारत की आबादी में बच्चों का हिस्सा 42 फीसदी से ज्यादा है और इनमें भी 16.4 करोड़ तो छह वर्ष से कम उम्र के हैं। वे वोट तो नहीं देते पर वे नागरिक हैं और संसद तथा विधानसभाओं में चुनकर गए लोग वयस्क नागरिकों के साथ-साथ उनका भी प्रतिनिधित्व करते हैं। पर क्या चुने हुए प्रतिनिधि इन बाल नागरिकों के प्रतिनिधित्व की अपनी जबावदेही को गंभीरता से लेते हैं? या फिर वे उन्हें भुलाए ही रहते हैं और जब कोई संकट आता है तभी नींद से जगते हैं? इससे भी महत्वपूर्ण मसला यह है कि उनकी नजर पर कौन से मुद्दे चढ़ते हैं और कैसे चढ़ते हैं?

हकः सेंटर फार चाइल्ड राइट्स ने संसदीय कार्रवाई के विश्लेषण (वहां उठे सवालों और बहसों के आधार पर) के आधार पर निम्नलिखित प्रवृत्तियां पाई :

- पिछले चार वर्षों में पूछे गए प्रश्नों में सिर्फ 3 फीसदी सवाल ही बच्चों से संबोधित थे, इनमें भी अधिकांश मुद्दे वहीं थे जो मीडिया में आई खबरों और चर्चो से जुड़े थे।
- बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण के सवाल पर सांसदों का बहुत कम ध्यान था, बच्चों से जुड़े जो प्रश्न उठाए गए उनमें से भी उनके स्वास्थ्य से जुड़े सवाल सिर्फ 11.4 फीसदी थे। यह स्थिति तब है जब भारतीय बच्चों को स्वास्थ्य के मामले में सबसे ज्यादा गंभीर परेशानी उठानी पड़ रही है। आज दुनिया के 30 फीसदी कुपोषित बच्चे भारत में है और नवजात शिशुओं की मौत के मामले में भी भारत की हिस्सेदारी 30 फीसदी है।
- यह स्पष्ट है कि बच्चों से जुड़े मामलों में शिक्षा सबसे प्रमुख है और 58.9 फीसदी सवाल उससे जुड़े थे। इसके बावजूद शिक्षा के अधिकार का विधेयक अभी तक वास्तविकता नहीं बन पाया है।
- पिछले तीन वर्षों में जितने भी सवाल बच्चों से जुड़े थे उनमें सिर्फ 4.6 फीसदी ही नवजातों और नन्हें बच्चों की देखरेख और विकास से जुड़े थे। इनमें बालवाड़ियों, उनकी दिन के समय देखरेख और एकीकृत बाल विकास सेवाओं से जुड़े सवाल भी थे।
- एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के प्रति दिलचस्पी में भी उतार-चढ़ाव आता रहा है। 2004 में बच्चों से जुड़े सवालों में इस योजना से जुड़े 2.7 फीसदी (बजट सत्र में 3.4 फीसदी और शीतकालीन सत्र में 1.9 फीसदी) पूछे गए। इनमें योजना के विस्तार, सुप्रीम कोर्ट के आदेशों को लागू करने और आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ताओं की स्थिति के बारे में पूछे गए सवाल शामिल थे। 2005 में यह अनुपात बढ़कर 3.8 फीसदी हो गया लेकिन मुद्दे कमोबेस यही थे।
- बच्चों से जुड़े सवालों में उनके शोषण और उनके खिलाफ दुराचार के मामले करीब 20 फीसदी थे।

भारत के नए और भविष्य के नागरिकों के महत्व को स्वीकार करने का भाव भारत के इतिहास में पहली बार 2 मार्च 2006 को *'पार्लियामेंटरी फोरम ऑन चिल्ड्रेन'* की शुरुआत से हुआ। इस फोरम का उद्देश्य सांसदों के बीच बच्चों से जुड़े मुद्दों पर चेतना बढ़ाना और उनके विकास की प्रक्रिया को उचित महत्व दिलवाना है। भारत के बच्चों को उस दिन का इंतजार है जब उनके चुने हुए प्रतिनिधि सही अर्थों में उनका प्रतिनिधित्व करेंगे

सहयोग – हक : बाल अधिकार केन्द्र

सोचना कोई गलत नहीं है। निश्चित रूप से मां-बाप ही बच्चों की सबसे अच्छी देखरेख करते हैं और उन्हें ही उनकी सबसे ज़्यादा परवाह भी रहती है। पर इस बात को मानने के बावजूद बच्चों की देखरेख में सामाजिक दखल की ज़रूरत बनी हुई है और उसके चार ठोस कारण गिनवाए जा सकते हैं (और कुछ मां-बाप अपने बच्चों की 'उपेक्षा' भी करते होंगे, इस संभावना को भी नजरंदाज नहीं करना चाहिए।)

पहला कारण है, मां बाप की गरीबी और असमर्थता। अपनी गरीबी और असमर्थताओं के चलते काफी सारे मां-बाप बच्चों का लालन-पालन ठीक से नहीं कर पाते। उनकी इन असमर्थताओं को सामाजिक स्तर पर दखल से (जैसे भूमि सुधार, रोजगार कार्यक्रम और आमदनी के पुनर्वितरण जैसे कार्यक्रमों से) दूर किया जा सकता है। पर इन दीर्घकालिक मसलों के निपटने तक का इंतजार वे बच्चे नहीं कर सकते जो इस बीच पैदा होते और बढ़ते हैं।

दूसरे, मां-बाप अक्सर अपने बच्चों के लिए जो सुविधाएं लाते हैं या जो चीज़ें देते हैं वे अक्सर कई तरह के सामाजिक दखल से आई होती हैं - जैसे जो सार्वजनिक सुविधाएं उपलब्ध होती हैं, मां-बाप उन्हें अपने बच्चों को भी देते हैं। अगर अच्छी स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध हों तो अधिकांश मां-बाप अपने बच्चों की स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतों के लिए उन्हें वहां ले जाते हैं। इसी प्रकार भले ही शिशुओं को मां के दूध की उपलब्धता के लिए सामाजिक दखल की कोई ज़रूरत न लगे, पर कामकाजी औरतों को अगर मातृत्व संबंधी सुविधाएं या शिशुगृह जैसी सहुलियतें न हों तो बच्चों को मां का दूध भी ढंग से नसीब नहीं हो सकता।

तीसरे, अक्सर माँ-बाप को बच्चों की देखरेख और पोषण संबंधी उचित जानकारियां नहीं होतीं। जैसे, पिछले दिनों जब उत्तर प्रदेश में बच्चों के सर्वेक्षण में तो आधे बच्चे कुपोषित मिले पर उनकी माताओं का कहना था कि उन्हें ठीक ठाक खाना-पीना मिलता है। स्तनपान के मामले में भी हजारों साल के ज्ञान और अनुभव के बावजूद स्थानीय स्तर की मान्यताएं सरासर गलत या सीमित लाभ की हो सकती हैं। जैसे, जन्म के कई दिन बाद शिशु को इस गलत मान्यता के अनुसार स्तनपान नहीं कराया जाता है कि शुरुआती दूध से बच्चे को नुकसान होगा। स्तनपान भी जितना आसान माना जाता है, उतना है नहीं।

चौथी चीज़, सामाजिक मान्यताओं का महत्व है। जैसे बच्चों को टीका लगवाना ठीक है या नहीं यह बात मां-बाप, परिवार, समुदाय या गांव के अन्य लोगों को देख-सुनकर तय करते हैं। और फिर खानपान की आदतें तो हम सभी में सामाजिक रूप से ही आती हैं। इसलिए टीकाकरण के बारे में राय बनानी हो या किसी पौष्टिक भोजन के बारे में, इन सभी-मामलों में सामाजिक दखल की गुंजाइश है।

इन सभी कारणों से हम बच्चों की देख-रेख की जिम्मेदारी सिर्फ परिवार के ऊपर नहीं छोड़ सकते। मां-बाप घरों के अंदर अपने बच्चों की बेहतर देखरेख करें, इसमें सामाजिक दखल की ज़रूरत है ही और साथ ही स्वास्थ्य, पोषण, स्कूल पूर्व की शिक्षा और अन्य मामलों में बड़े पैमाने पर शिशु पालन और बाल कल्याण का खयाल रखने वाले फैसले हों तो इन मामलों में भी ऐसे ही दखल की दरकरार है। संक्षेप में कहें तो बाल कल्याण एक सामाजिक जवाबदेही है।

इस जिम्मेदारी को बोझ नहीं मानना चाहिए। दरअसल यह सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण माध्यम है। 'सेवा' के शिशु कल्याण केंद्रों के अपने वर्षों के अनुभव के आधार पर मिराई चटर्जी कहती हैं कि, "यही बात हमारे बच्चे हमें सिखाते हैं (देखें बाक्स 1. 3)। जैसाकि लेखिका की राय है, बाल कल्याण में सार्वजनिक भागीदारी का मतलब शिशु मृत्यु दर में कमी या बच्चों को स्कूल जाने के लिए तैयार करना भर नहीं है। इससे अनेक दूसरे उद्देश्य भी पूरे होते हैं : हर शिशु का एक स्वस्थ और अच्छे मनुष्य के रूप में विकास; दरिद्रता और वंचनाओं की समाप्ति; बच्चों का स्वस्थ ढंग से सामाजीकरण; शिक्षा के अधिकार और अन्य मौलिक अधिकारों का पालन; सामाजिक भेदभाव की समाप्ति; सामाजिक एकता का विकास और इस जैसी अनेक चीजों की प्राप्ति इससे जुड़ी है। बाल कल्याण के प्रति सामाजिक जागरूकता और भागीदारी, औरतों की आज़ादी के मामले में भी कई तरह से लाभ करती है : इससे बच्चों की देखरेख का उसका बोझ कुछ हल्का होता है, इसमें औरतों को लाभकारी रोज़गार मिलने की संभावना होती है और उन्हें मज़बूत महिला संगठन खड़ा करने का अवसर मिलता है। सामाजिक विकास में बाल कल्याण अपने इन्हीं महत्वपूर्ण योगदानों के चलते सार्वजनिक नीतियों और लोकतांत्रिक राजनीति में ज़्यादा महत्व की मांग करता है।

व्यावहारिक स्तर पर इस मामले में सामाजिक दखल का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम एकीकृत बाल विकास सेवा है। छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों की ज़रूरतों के लिए यह एकमात्र बड़ा राष्ट्रीय कार्यक्रम है। इस रिपोर्ट में इस सेवा पर खास चर्चा है और फिर इसके स्तर को सुधारकर सभी के लिए इसकी उपलब्धता सुनिश्चित करने की एक योजना भी दी गई है। इस पर अध्याय 3 में विस्तार से चर्चा की गई है। इस रिपोर्ट का आधार बनने वाला फोकस सर्वेक्षण भी इस कार्यक्रम पर ध्यान केंद्रित करता है। सर्वेक्षण पर अध्याय 4 से आगे चर्चा हुई है।

बाक्स 1.3. बच्चों ने हमें क्या सिखाया

असंगठित क्षेत्र की करीब आठ लाख महिला कामगारों का संगठन है 'सेवा'। इसने दो सहकारी और तीन सहयोगी संस्थाओं का गठन करके 10000 से ज्यादा नन्हें बच्चों की देखरेख में विभिन्न सामाजिक भूमिकाओं के बारे में कई सबक सिखाए हैं।

पहला, बच्चों की देखरेख से दरिद्रता घटती है। एक सदस्य का कहना है, "बच्चों की देखरेख हो रही हो तो हम काम करके ज्यादा कमा सकते हैं और तब हम बच्चों के लिए दाल-सब्जी ले आते हैं। वैसे हम रोटा और मरचा (रोटी-मिर्च) खाते हैं।" हमने यह बार-बार देखा है कि जब गरीब औरतों के बच्चों की देखरेख का इंतजाम हो तो वे ज्यादा काम करके ज्यादा कमा लेती हैं। खेड़ा और सुरेंद्रनगर जिलों में हुए अध्ययनों से जाहिर हुआ कि ऐसी औरतों की कमाई पचास फीसदी बढ़ जाती है।

दूसरा, बच्चों की देखरेख से उनका बेहतर विकास होता है। हमने अच्छी देखरेख पाते ही सैकड़ों बीमार और कमजोर बच्चों को अच्छी देखरेख पूरी तरह तंदुरस्त होते हुए देखा है। जिन बच्चों को चलने और बोलने में दिक्कत होती थी उन्हें भी देखरेख, प्रेम और प्रोत्साहन मिला तो वे भी अन्य बच्चों की बराबरी पर आ गए।

तीसरा, बच्चों की उचित देखरेख हो तो महिला कल्याण और विकास भी हो जाता है। बच्चों की देखरेख का इंतजाम हो तो औरत की चिंता कम हो जाती है। हमारी सदस्य अक्सर कहती हैं, "जब से ये केंद्र शुरू हुए हैं हम लोग शांति से काम करके कमा सकती हैं। मुझे अपने बच्चे की चिंता अब नहीं रहती। और जब मैं अक्सर घर पंहुचती हूं तो खाए-पिए और खुश बच्चे को देखकर तबियत खुश हो जाती है।"

चौथा, बच्चों की देखरेख से स्कूल जाने को बढ़ावा मिलता है। हमारी बालवाड़ियां (क्रेश) से निकल कर 'स्नातक' बने लड़कियों-लड़कों के हमारे दो 'मेलों' में बोलने वालों ने बताया कि उन्हें किस तरह स्कूल जाने की प्रेरणा बालवाड़ी से मिली। लड़के-लड़की में बराबरी के व्यवहार से लड़कियों को भी स्कूल जाने का प्रोत्साहन मिलता है – जो चीज गरीब परिवारों में आमतौर नहीं होती। खेड़ा से जुड़े अध्ययन में हमने पाया कि जब गांवों से बालवाड़ियां काम करने लगी तो स्कूल पंहुचने वालों में 30 फीसदी बच्चे वहीं से निकलकर आए थे। गांवों और शहरी बस्तियों में बालवाड़ियों शुरू करने का यह सबसे मजबूत तर्क है।

पाँच, सामूहिक देखभाल में जाति, धर्म, वर्ग वगैरह का भेदभाव मिट जाता है। जाति, भाषा, धर्म और संस्कृति की विविधताओं से भरे हमारे समाज के बच्चे सभी धर्म और वर्ग के होते हैं। बालवाड़ियों में वे सभी साथ खेलते-खाते हैं। पर यह काम बहुत आसानी से नहीं हो जाता। जैसे एक बार हमें मंदिर परिसर में बड़ा-सा कमरा बालवाड़ी के लिए मिला। लेकिन जब मंदिर वालों को पता चला कि वहां आने वाले काफी सारे बच्चे दलित समुदाय से हैं तो हमें यह जगह खाली करने को कहा गया। कई जगह माताओं को भी जाति के सवाल पर आपत्ति हुई। कुछेक गांवों में लोगों के विरोध में हमें अथवा केन्द्र बंद भी करना पड़ा। पर हम झुके नहीं। इसका लाभ हुआ। आज हमें सभी गांवों और सभी समुदायों का पूरा समर्थन मिलता है।

छह, बालवाड़ियां औरतों के और सामुदायिक विकास का संगठन बनाने का एक केन्द्र बन जाती है। खेड़ा जिले के दमनोल गांव की बालवाड़ी पर ही गांव की औरतों ने तम्बाकू की खेती करने वालों और फैक्टरी वालों के खिलाफ धरना शुरू करके उन्हें झुका दिया। जिले के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ। धरना कई दिनों तक चला और इसमें हिस्सा लेने वाली ज्यादातर महिलाएं वहीं थीं जिनके बच्चे बालवाड़ी में थे या रह चुके थे। यह धरना सफल रहा, औरतों को उनका भुगतान मिला, संगठन बनाने का निश्चत बढ़ा और बालवाड़ी तथा सेवा के प्रति उनकी निष्ठा बढ़ी।

सात, बालवाडी आपदा प्रबन्धन का केन्द्र बन सकती है। पिछले पांच वर्षों में हमारी गांव सदस्य बहनों का बार-बार प्राकृतिक आपदाएं झेलनी पड़ी है। गुजरात के इन जिलों में सेवा की बालवाड़ियां ही इनके बच्चों की देखरेख करने के साथ-साथ आयात राहत सामग्री के वितरण का केन्द्र बनीं। दवा, भोजन, पानी और टैंट यहीं से बंटे। इन्होंने राहत शृंखला बनाने में भी मदद की।

आठ, बृहत्तर क्षमता के अवसर की शुरूआत बच्चों की देखरेख से होती है।

'सेवा' में बच्चों की देखरेख करने वाली अध्यापिकाओं और टोलियों को प्रशिक्षित करने के लिए विशेष 'बालनन्दशाला' शुरू की है। यहाँ हम बच्चों के लिए नई गतिविधियों और अध्यापकों के काम और कौशल को बढ़ाने के लिए नए प्रयोग करते हैं और प्रशिक्षण देते हैं उन्हें बाल विकास, स्वास्थ्य, समाज विज्ञान, भूगोल जैसे अनेक विषयों पर नया ज्ञान दिया जाता है।

अपनी बालवाड़ियों चलाने के अलावा 'सेवा' ने बच्चों की देखरेख को बढ़ावा देने की कार्य नीति तैयार की है। हमनें बससे पहले इस मामले में एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के साथ मिलकर काम करने की पहल की। जब सरकार ने आंगनवाड़ियों को चलाने का 'सेवा' को सौंपा तो कहा कि इसमें सारे शिक्षक कम से कम हाईस्कूल पास होने चाहिए। हमें सरकार को यह समझाने में दो वर्ष लगे कि सिर्फ डिग्री लेने से बच्चों की देखरेख का कौशल आ जाए यह जरूरी नहीं है।

सुरेन्द्रनगर जिले में नया नमक बनाने वाली मजदूरिनों के बच्चों के लिए बालवाडी शुरू करना एक और नया अनुभव था। इन मजदूरों के कल्याण कोष में पर्याप्त रकम थी पर किसी ने भी इसका उपयोग बच्चों के लिए करने की नहीं सोची थी। काफी लम्बी चर्चा में बाद नमक मजदूरिनों के बच्चों के लिए बालवाड़ी शुरू की जा सकी।

फिर, महीनों की चर्चा के बाद गुजरात में सरकार, जब संगठनों और गैर सरकार संस्थाओं का ऐसा संयुक्त मंच बनाने पर सहमति हुई जिसके जिम्में नन्हें बच्चों की जरूरतों पर चर्चा करने, उनके लिए चलने वाले कार्यक्रमों की देखरेख करने, भविष्य की योजना बनाने का काम रखा गया। यह काम भी सेवा द्वारा सरकार को पत्र लिखने के बाद शुरू हुआ।

सहयोग – मिराई चटर्जी

यह कहने के बावजूद इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि एकीकृत बाल विकास सेवा के अलावा सामाजिक दखल के अन्य माध्यम भी संभव हैं। फिर इस सेवा के अधीन शिशुगृह और मातृत्व संबंधी सुविधाओं का ज़िक्र भी खासतौर से करना चाहिए जो इन सेवाओं का अभिन्न अंग हैं। (देखें बाक्स 1.4 और 1.5)। फिर छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के जीवित बचने और स्वस्थ विकास के लिए पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं का होना भी ज़रूरी है। इस रिपोर्ट में एकीकृत बाल विकास सेवा पर विशेष ध्यान देने का अर्थ छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के अधिकारों से जुड़े बृहत्तर मुद्दों की उपेक्षा नहीं है।

1.4 अधिकारों का क्या लाभ है

इस अध्याय के शुरू में हमने उल्लेख किया है कि भारत की सार्वजनिक नीतियों में

बाक्स 1.4. मातृत्व से जुड़े लाभ और बाल अधिकार

बच्चों के पहले छह वर्षों के जीवन के हिसाब से देखें तो मां और बच्चे के अधिकार आपस में जुड़े दिखेंगे और बच्चे का स्वास्थ्य तो सीधे-सीधे मां और उसके काम की स्थितियों से जुड़ा है। महिला कामगारों को दफ्तर और कारखानों वगैरह से मातृत्व के समय मिलने वाली छुट्टी और अन्य फायदों को अक्सर हम श्रम का विषय मानते हैं। पर ये सुविधाएं महिला से भी ज्यादा उसकी संतान के जन्म, उसके स्वास्थ्य और उसके जीवन से जुड़ी है। बच्चे के स्तनपान सुरक्षा, देखरेख और सुरक्षा के अधिकार वाले मुद्दे इससे गहरे तौर पर जुड़े हैं। हम जाने-अनजाने इन्हें सिर्फ बच्चों का मुद्दा मान लेते हैं। सोच की इस दुविधा ने सार्वजनिक नीतियों के मामले में सामने आने वाले नतीजों को भी प्रभावित किया है।

अभी मातृत्व से जुड़े लाभ सिर्फ उन्हीं महिलाओं को अधिकार के रूप में मिले हुए हैं जो संगठित क्षेत्र में काम करती है – अर्थात कुल महिला कामगारों के सिर्फ सात फीसदी हिस्से को। इसका मतलब यह है कि बाकी 93 फीसदी औरतें अपनी गर्भावस्था, प्रसव, स्तनपान और बच्चों की देख रेख के पूरे समय वो अपने काम की सारी सर्दी-गर्मी झेलते हुए गुजारती हैं। जाहिर तौर पर वे अपने काम करते हुए ये सारे काम अच्छी तरह से नहीं कर पा रही होंगी।

काम करने और साथ ही बच्चों को पालने में औरतों पर दोहरा बोझ पड़ता है और इससे उनका अपना तथा बच्चे का स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। चूंकि ज्यादातर महिलाएं असंगठित क्षेत्र में काम करती हैं इसलिए उन्हें काफी काफी समय घर से बाहर गुजारना होता है। उन्हें ठेके पर या सस्ती मजदूरी पर खेतों-खलिहानों, निर्माण के ठिकानों, खदानों, रेहड़ी-पटरी पर या घरों में झाड़ू-पोंछा जैसे काम करने होते हैं जहां उन्हें अक्सर अपनी देह की सुझ बुध रखने का होता नहीं होता – बच्चों की हर जरूरत पूरी करना तो बहुत दूर की बात है। उन्हें न तो परिवार का पूरा समर्थन मिलता है न सामाजिक सुरक्षा। और फिर वे हर तरह के शोषण का शिकार होती हैं। सो यह कल्पना करना मुश्किल नहीं है कि इन स्थितियों में नवजातों और बच्चों की देखभाल की क्या हालत होगी। वे बस जी लेते है – जैसे-तैसे पल जाते हैं। प्रसिद्ध पत्रिका 'लैंसेट' द्वारा प्रमाणित शोध पत्र के अनुसार "बाल मृत्युदर में सिर्फ स्तनपान से ही 13-16 फीसदी कमी लाई जा सकती है।" मां का दूध बीमारियों और कुपोषण से लड़ने का पहला और सबसे महत्वपूर्ण हथियार है। पर स्तनपान के लिए पहली जरूरत है कि कम से कम शुरुआत छह महीनों तक तो मां और नवजात शिशु साथ या पास रहें। ऊपर औरतों के काम करने की जिन स्थितियों का जिक्र हुआ है उसमें तो सभी बच्चों के लिए यह स्थिति भी नसीब नहीं होती। मातृत्व से जुड़े लाभ और काम की जगहों पर बालवाड़ियों (क्रेच) के होने से मां और बच्चे में दूरी नहीं रहती और कम से कम स्तनपान में कोई दिक्कत नहीं आती। ये सुविधाएं इसलिए भी जरूरी हैं कि बच्चे की देखभाल के लिए उसे सबसे ज्यादा जानने वाला और उसकी परवाह करने वाला बड़ा आदमी (अर्थात् माँ) उसके पास होता है जो उसकी जान की रक्षा, उसके विकास और देखरेख में अपनी ओर से कोई कमी नहीं आने देता।

इसी संबंध को सभी जानते हैं और दुनिया भर में इसे स्वीकार भी किया जाता है। बाल अधिकार घोषणापत्र में भी बच्चों के स्तनपान और देखरेख के अधिकार की बात कही गई है। महिलाओं के खिलाफ हर किस्म का भेदभाव समाप्त करने के घोषणापत्र 11वें अनुच्छेद में गर्भावस्था, प्रसव और नवजातों की देख रेख की अवधि को विशेष बताया गया है। इसमें मातृत्व सुरक्षा और औरतों के समता के अधिकार की रक्षा को बढ़ावा देने और भेदभाव मिटाने के लिए जरूरी कदमों की वकालत की गई है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मातृ सुरक्षा घोषणापत्र 2000 में भी इन चीजों का उल्लेख है। सो अब जरूरी है कि अपने यहां भी हमें औरतों और बच्चों के कल्याण और स्वास्थ्य के मामले में जरूरी स्थिति और वास्तविकता के बीच के फासले को भरने की दिशा में गंभीरता के साथ करना चाहिए। इस दिशा में सबसे पहला और सबसे जरूरी काम है मातृत्व से जुड़े लाभों की मौजूदा स्थिति पर गौर करना अभी तक इनका और कर्मचारी स्वास्थ्य योजना का लाभ सिर्फ संगठित क्षेत्र की कामगार महिलाओं को मिलता है। राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना का फायदा गरीबी रेखा से नीचे जीवन बसर करने वाली महिलाओं को मिलता है। और इस पूरी योजना पर प्रति प्रसव सिर्फ 500 रुपए के फायदे दिए जाते हैं। और यह योजना भी गिनती के राज्यों में ही शुरू हो पाई है। अधिकांश राज्यों में यह लागू भी नहीं हुई है। इस मामले में भी तमिलनाडु ने हाल में एक जबरदस्त मिसाल पेश की है। उसने प्रसव के बाद छह महीने तक प्रति माह 1000 रुपये देने का फैसला किया है। इससे मां के लिए हर हाल में काम करने की मजबूरी कम होगी और बच्चे को दूध पिलाने और उसकी देखरेख करने का काम कर सकेगी। अधिकांश महिलाओं के लिए यह चीज भी बहुत बड़ी बन गई है।

इस दिशा में कुछ ये कदम उठाए जा सकते हैं : सभी औरतों को जिसमें गोद लेने वाली औरत भी शामिल हो, मातृत्व से जुड़े लाभ दिए जाएं। इस मामले में उम्र, शादी, बच्चों की संख्या जैसी कोई भी सीमा बांधने की जरूरत नहीं है – हां कमजोर आर्थिक स्थिति वालों को प्राथमिकता जरूर दी जा सकती है। दूसरे, ये लाभ महिला को प्रसव के दो हफ्ते पहले से लेकर प्रसव के छह महीने बाद तक मिलने चाहिए। तीसरे, कामकाजी महिलाओं को उनके वेतन के बराबर रकम और बाकी औरतों को न्यूनतम मजदूरी के बराबर रकम दी जानी चाहिए। फिर, हमें काम की जगहों, मुहल्लों और आंगनवाड़ियों में बालवाड़ियां (क्रेच) बनाने की जरूरत है। ऐसा करने के बाद ही बच्चों और औरतों के स्वास्थ्य और कल्याण का काम हो संबंधी और उनके अधिकारों की रक्षा होगी।

सहयोग – देविका सिंह

बच्चों के मुद्दे, खास तौर से शिशुओं के मुद्दों की घोर उपेक्षा है। हमने यह भी कहा है कि अंततः बाल कल्याण का मामला सामाजिक जवाबदेही का है। ये दोनों ही चीज़ें शिशुओं के मौलिक अधिकारों की रक्षा से ज़्यादा मज़बूती से जुड़ी हैं।

सामाजिक विकास में अधिकारों पर ज़ोर देने और उनको पूरा लागू कराने वाले नज़रिए का महत्व हाल के वर्षों में अच्छी तरह उजागर हुआ है। प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार मानने का ज़ोर बढ़ने (और जिसे हाल में संविधान में 86 वें संशोधन से स्वीकार किया गया है) के साथ ही नब्बे के दशक में स्कूली शिक्षा के प्रसार में तेज़ी से वृद्धि हुई। और 1991 तथा 2001 की जनगणना में उम्रवार साक्षरता के हिसाब से यह बात प्रमाणित भी होती है। सूचना के अधिकार 2005 ने सरकारी दस्तावेज़ों के

बाक्स 1.5. बालवाड़ी : क्या इन पर खर्च उचित है?

'बच्चे क्या करते हैं?'

'बच्चे? वे क्या करेंगे, खेलते हैं। हम 5-6 घंटा धागा निकालते हैं। बड़े बच्चे छोटों को देखते हैं।'

'बड़े-बूढ़े भी नजर रखते हैं पर वे बच्चों के पीछे कहां दौड़ सकते हैं। वे कहते हैं बड़ी बेटी को घर पर छोड़ जाओ। बड़ी देख रेख करेगी।'

'हां, छोटे बच्चों को अक्सर चोट लग जाती है – हमें बड़े बच्चों की भी काफी चिंता होती है – वे आसपास के लोगों से गंदी आदतें सीख लेते हैं, ताश खेलते हैं, आपस में लड़ते हैं।'

'देवरानी? अरे, उसके तो अपने बच्चे हैं?

'अब हम सब अलग-अलग हैं। अब कोई दूसरों के बच्चों का जिम्मा नहीं उठाना चाहता.. फिर उन्हें पशुओं की देखरेख भी तो करनी है, भंता सुखाना है।" (झारखंड के एक गांव की बातचीत)

वैज्ञानिकों का कहना है कि दिमाग का 90 फीसदी विकास पांच वर्ष की उम्र तक हो चुका होता है। अर्थशास्त्री कहते हैं कि रोगों की रोकथाम उपचार की तुलना में काफी सस्ता है। बाल विशेषज्ञ बताते हैं कि बच्चों के विकास के लिए उसके शुरुआती वर्ष काफी महत्वपूर्ण हैं। फिर भी हम इन बातों और प्रमाणों की परवाह नहीं करते और अपने नन्हें-मुन्नों से मुंह मोड़े हुए हैं। हमारे यहां जन्म ने वाले 6 फीसदी बच्चे अपना पहला जन्म दिन भी नहीं देख पाते। हमारे 50 फीसदी बच्चे कुपोषण का शिकार है और खराब स्वास्थ्य, कम कौशल और दरिद्रता में तो पूरी पीढ़ी ही जीवन बसर कर रही है। तो क्या हम बच्चों के पालन, जीवित रहने और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली बालवाड़ियों (क्रेच) को भूल सकते हैं?

देश में छह वर्ष से कम उम्र के तो 16 करोड़ बच्चे हैं उनमें से 40 फीसदी गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करने वाले परिवारों के हैं। दिन-ब-दिन ज्यादा औरतों के बाहर मजदूरी पर जाने और संयुक्त परिवारों के टूटने के बाल बालवाडियां या नन्हें बच्चों की देखरेख की व्यवस्था अब कोई छोटा मुद्दा नहीं है। यह छह करोड़ बच्चों के लिए एक जरूरत है। इन सुविधाओं को अब सिर्फ कैरियर बनाने वाली औरतों की जरूरत पर नहीं माना जा सकता जो सिर्फ अपनी मर्जी से बच्चों की फिक्र छोड़कर कमाने निकलती है। इस स्थिति के बावजूद राजीव गांधी बालवाड़ी योजना के तहत सिर्फ 22,038 बालवाडियां ही चल रही है जबकि ऐसी करीब 8 लाख बालवाड़ियों की जरूरत है। क्या हम इस अंतर का बोझ उठा सकते हैं?

बालवाड़ी में तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चो को दिन में तीन चार दफे प्रेम से गरम आहार खिलाना, बुखार-दस्त वगैरह में तत्काल इलाज उपलब्ध कराने और नींद से जगने पर प्रेम से संभालने जैसे काम होते है। पर यह कामकाजी औरतों को काम करने या उनके बच्चों को संभालने भर की व्यवस्था नहीं है। इससे कुपोषण, जन्म के समय का वजन और शिशु मृत्यु दर घटाने की लड़ाई में काफी मदद मिलत है।

हमें कामकाज के जगहों पर भी बालवाडियां (क्रेश) रखने की जरूरत है जिससे बच्चों को स्तनपान कराना और पूरक आहार दे पाना संभव हो। हमें अपने आसपास आंगनवाड़ियों के साथ ही बालवाड़ियां भी चाहिए जिसमें बच्चे को सुरक्षा, देखरेख और कुछ चीजें सिखाने में मदद मिले। हमें इसलिए भी बालवाड़ियां चाहिए कि अपने नन्हें मुन्ने भाई-बहनों की देखरेख करने के चक्कर में लड़कियों की पढ़ाई न छूट जाए, उनको भी पढ़ने-खेलने का अवसर मिले। हमें बालवाड़ियों की जरूरत है जिससे बच्चों को भी अधिकार संपन्न नागरिक का सम्मान मिले, मातृत्व और नन्हें बच्चों की देखरेख के समय मदद मिले जिससे वे काम और जीवन में भागीदारी कर सकें।

इन सबसे बावजूद छोटे बच्चों के प्रमुख राष्ट्रीय कार्यक्रम, एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के स्वरूप में बालवाड़ियों का प्रावधान नहीं है। यह एक बड़ी कमी है।

'आंगनवाड़ी? हां मैंने देखी है, वहां थोड़ी देर के लिए एक बहनजी आती हैं जो कुछ खाना बांटती हैं"

'और बालवाड़ी?'

'यह क्या होता है?

'बच्चों का ठिकाना' जहां वे खेलते हैं, खाते हैं, सफाई से रहना सीखते हैं और दीदी उनक देख रेख करती है।"

'यह कौन करेगा? हम तो सपने में भी नहीं सोच नहीं सकते कि हमारे बच्चों को किसी और तरह से पाला-पोसा जा सकता है।"

क्या नन्हें बच्चों की देखरेख और सरंक्षण वाले पक्ष का ध्यान दिए बिना एकीकृत बाल विकास योजना अपने लक्ष्य पा सकती है? ये चीजें बालवाड़ियों से मिलेंगी। अगर धैर्य से आहार देने और साफ सफाई सिखाने का काम नहीं होगा तो पूरक पोषाहार और टीकाकरण किस हद तक पूरा लाभ देंगे?

इस बड़ी योजना में बदलाव कैसे होगा? इसे कुछ न्यूनतम जरूरतों के बारे में कड़े फैसले करने होंगे : आंगनवाड़ियों के लिए पर्याप्त और सुरक्षित जगह (जिसनी सबसे ज्यादा कमी है); प्रशिक्षण; वेतन-भत्ते और तीन वर्ष से कम उम्र के शिशुओं की देखरेख करे वाली महिला के लिए पर्याप्त सुरक्षा और लाभ; काम के समय में वृद्धि; सफाई और आहार के साधारण उपकरण; आराम और खेल का इंतजाम और माताओं से ज्यादा मेलजोल की व्यवस्था इनमें शामिल होनी चाहिए। क्या इससे खर्च बढ़ेगा? हां, क्या कोई लाभ होगा? निश्चित रूप से।

सहयोग – देविका सिंह

ऊपर से गोपनीयता की चादर हटा दी है और सार्वजनिक जीवन में उत्तरदायित्व की दिशा में यह एक बड़ा कदम है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा आहार के अधिकार के बारे में दिए गए आदेशों ने सरकार को इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाने को मजबूर किया है और प्राथमिक स्कूलों में दोपहर का पका भोजन उन्हीं में से एक महत्वपूर्ण कदम है। इसी प्रकार *राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून* ने ग्रामीण मजदूरों को अधिकार दिए हैं और सार्वजनिक नीतियों में ग्रामीण रोज़गार की दीर्घकालिक उपेक्षा को समाप्त किया है।

इन अनुभवों के आधार पर बच्चों के मुद्दों पर भी अधिकार वाले पक्ष का ज़्यादा सक्रिय उपयोग करने की ज़रूरत लगती है, इसमें भी छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के जीवित बचने और कल्याण के मुद्दों पर खास ध्यान देना ज़रूरी है। निश्चित रूप से बाल अधिकारों की बात कोई नई चीज़ नहीं है। भारतीय संविधान में भी ये आए हैं और संविधान की धारा 39(एफ) सरकार को इस बात का निर्देश देती है कि "बच्चों को स्वस्थ, सम्मान पूर्ण और आज़ादी से विकास करने के अवसर और सुविधाएं उपलब्ध कराए।" यह धारा नीति निर्देशक सिद्धांतों का हिस्सा है और इसे धारा 37 के साथ पढ़ा जाना चाहिए जिसमें स्पष्ट उल्लेख है कि ये सिद्धांत 'देश के शासन की बुनियादी चीज़ें हैं' और यह सरकार की ज़िम्मेदारी है कि कानून बनाते समय इन नीतियों को लागू करे।" जैसा कि धारा 39(एफ) से स्पष्ट होता है, नीति निर्धारक सिद्धांतों (जो मुख्यतः डा. अंबेडकर के चलते आए) में "सकारात्मक आज़ादी" पर काफी ज़ोर दिया गया है। बाल अधिकारों और सकारात्मक आज़ादी के प्रति सरकार की वचनबद्धता की कड़ी को बाल अधिकार संबंधी अंतर्राष्ट्रीय कानून और मज़बूती देते हैं। पर व्यवहार में बच्चों की सकारात्मक आज़ादी को बचाने और बढ़ाने के लिए बहुत कम प्रयास हुए हैं और बाल अधिकारों की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। अधिकारों पर ज़ोर देने वाले नज़रिए से काम करने में सबसे पहली चीज़ बच्चों के अधिकार और ज़रूरतों के बारे में लोगों के नज़रिए में बदलाव करने की है। और इस मामले में व्यावहारिक कदम है बच्चों के मुद्दों को राजनैतिक एजेंडे में लाना और इनके बारे में नए सामाजिक मानक निर्धारित करना। जैसे, प्राथमिक शिक्षा को भौतिक अधिकार बनाने का काम इस आम धारणा को तोड़कर ही किया जा सका, कि समाज के कुछ समूहों के लिए शिक्षा 'फालतू' चीज़ है। छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों के अधिकारों और जरूरतों के बारे में इसी तरह की सर्वानुमति बनाना भी ज़रूरी है।

अपने राजनैतिक महत्व के अलावा अधिकार वाले नज़रिए का बाल विकास सेवाओं संबंधी सार्वजनिक नीतियों के कार्यान्वयन के लिए भी काफी महत्व है। इस नज़रिए के आधार पर ही हम बाल विकास सेवाएं सबको उपलब्ध कराने की मांग कर सकते हैं। अधिकार वाले नज़रिए की एक व्यावहारिक अभिव्यक्ति यह है कि सभी बच्चों को कुछ खास 'सुविधाओं और अवसर' (जैसा कि संविधान कहता है) पाने का हक है। और इस चीज़ को लागत लाभ के पैमाने पर मापने या हर बच्चे के लिए अलग-अलग ढंग से उठाने की ज़रूरत नहीं है। एकीकृत बाल विकास सेवाओं (और खास तौर से आंगनवाड़ी) की मुख्य भूमिका इन सुविधाओं को उपलब्ध कराने का संस्थागत माध्यम बनना है। इन सुविधाओं में पूरक पौष्टिक आहार, टीकाकरण सेवाएं, स्वास्थ्य सेवा और खेल के साथ सीखने जैसी चीज़ें शामिल हैं।

दूसरे, अधिकारों वाले नज़रिए से काम करने के लिए निगरानी और दोष सुधार की मज़बूत व्यवस्था की जरूरत भी लगती है, जिससे कि लोग अपने लिए उपलब्ध सेवाओं और सुविधाओं को हासिल कर सकें। जैसाकि इस रिपोर्ट में बाद में उल्लेख हुआ है, अभी भी दोष निवारण की बहुत कम व्यवस्थाएं काम कर रही हैं। जैसे कुछ राज्यों में एकीकृत बाल विकास योजना के तहत चलने वाले पोषण कार्यक्रम महीनों तक रुके रहते हैं और उनको वापस शुरू करने पर पर्याप्त चौकसी नहीं दिखती। इसका एक कारण तो यह आम नज़रिया है कि ये चीज़ें बच्चों का हक न होकर सरकारी खैरात है।

यह चीज़ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि अधिकारों वाले नज़रिए से काम करने में बच्चों के अधिकारों की कानूनी हिफाज़त की बात को भी उचित स्थान मिले। निस्संदेह भारत के अनेक कानून बच्चों के अधिकारों की किसी न किसी तरह से बात करते हैं। लेकिन ये कानूनी प्रावधान 'नकारात्मक' या 'उदासीन' किस्म के हैं, क्योंकि इनमें बच्चों को कई तरह की बुराइयों (जैसे बाल मज़दूरी या बाल विवाह) से बचाने की बात कही गई है, उनको 'अवसर और सुविधाएं उपलब्ध कराने' (जैसा कि संविधान की धारा 39 (एफ) में कहा गया है) जैसी 'सकारात्मक' बात नहीं है। शिक्षा के अधिकार विधेयक में भले ही कुछ कमियां हों पर यह भारतीय बच्चों को धनात्मक आज़ादी देने की गारंटी देने का अच्छा उदाहरण है। इस मामले में और भी कई कदम उठाए जा सकते हैं जिसमें छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए भी ऐसे कानून बनाना शामिल है।

पर आखिर में यह कहना भी ज़रूरी है कि बच्चों के अधिकारों की रक्षा का मसला सिर्फ बाल विकास सेवाओं संबंधी कानून

बाक्स 1.6. बच्चों के अधिकारों की कानूनी सुरक्षा

बाल अधिकार घोषणापत्र का उद्देश्य बच्चों के नागरिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की रक्षा करना है। भारत ने 1992 में इस घोषणापत्र की पुष्टि कर दी थी पर बच्चों से जुड़े भारतीय कानून अभी भी दुरुस्त नहीं हैं और बच्चों के अधिकारों की रक्षा में इनसे लाभ नहीं मिलता। बच्चों से जुड़े भारतीय कानून बच्चे को अधिकारों से युक्त व्यक्ति मानने की जगह परिवार का एक हिस्सा या वयस्क लोगों की जिम्मेदारी मानते हैं। परिणामस्वरूप उनके अधिकार भी परिवार या वयस्क व्यक्ति के हवाले ही हैं। इतना ही नहीं बच्चों से जुड़े अनेक कानून आंशिक रूप में ही लागू होते हैं और अनेक पहलुओं पर कोई ध्यान ही नहीं है। यहां कुछ महत्वपूर्ण चूकों और गलतियों की चर्चा की गई है।

बच्चे का मतलब? कानून में बच्चे की जो परिभाषा दी गई है उसी से उसे मिलने वाले कानूनी संरक्षण की कमियां उजागर हो जाती हैं। किस उम्र तक के व्यक्ति को बच्चा कहा जाए इस बारे में अलग-अलग कानून में अलग-अलग उम्र बताई गई है। बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) कानून 1966 के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति को बच्चा माना गया है तो आपराधिक जवाबदेही के मामले में उसकी उम्र सीमा सात साल ही है। बाल विवाह रोक कानून 1929 के अनुसार 18 वर्ष से कम की लड़की और 21 वर्ष से कम के लड़के को नाबालिग माना गया है जबकि स्वैच्छिक शारीरिक संबंध बनाने के मामले में 16 वर्ष की अविवाहित लड़की (15 वर्ष की विवाहित लड़की) को बालिग मान लिया गया है। बाल एवं महिला विकास मंत्रालय ने 1997 की अपनी रिपोर्ट में इन गड़बड़ियों की ओर इशारा किया है पर अभी तक भारतीय कानून के अनुसार 'बच्चा' की एक परिभाषा तय नहीं है।

दूसरी गड़बड़ बच्चों की देखरेख और शिक्षा की गारंटी देने में शासन की असफलता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों की शिक्षा को एक प्राथमिकता माना गया हैं पर इस नीतिगत पहल के पक्ष में कानूनी सुरक्षा नहीं दी गई है। जहां तक बच्चों की देखरेख और विकास का सवाल है तो संगठित क्षेत्र के लिए स्पष्ट श्रम कानून हैं पर अनौपचारिक क्षेत्र के लिए कोई व्यवस्था नहीं है।

इसी से जुड़ी गड़बड़ 6 से 14 वर्ष उम्र के बच्चों के अनिवार्य शिक्षा देने के मामले में शासन की असफलता है। संविधान के 86 वें संशोधन से बच्चों को यह मौलिक अधिकार मिल गया है। इसने मां-बाप और अभिभावकों पर मौलिक कर्त्तव्य (51ए) के तहत यह जबावदेही डाली है कि वे इस उम्र समूह के बच्चों को शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराएं। पर बच्चों को मुफ्त, अनिवार्य, प्रभावी और सबसे पंहुच वाली शिक्षा उपलब्ध कराने की वैधानिक जिम्मेदारी को शासन अभी तक उठाता नहीं दिखता। शिक्षा अधिकार विधेयक 2005 के 86वें संशोधन को प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें व्यवस्था है कि शासन हर बच्चे के पास-पड़ोस में स्कूल का इंतजाम करे, सरकारी स्कूल में मुफ्त शिक्षा दी जाए और स्कूलों के काम काज में मां-बाप की ज्यादा भागीदारी हो। विधेयक में नामांकन के लिए परीक्षा लेने और डोनेशन फीस लेने पर रोक लगाने और प्राथमिक शिक्षा के काम काज पर निगरानी के लिए राष्ट्रीय प्राथमिक शिक्षा आयोग बनाने का प्रावधानों पर खुली चर्चा कराएगा जिससे इसके माध्यम से बनने वाला कानून सचमुच प्रतिनिधित्व वाला हो।

स्वास्थ्य के अधिकार को न मानना एक और प्रमुख मुद्दा है। भारत के संविधान में इसे व्यक्तिगत अधिकार के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। लेकिन शासन के नीति निर्देशक तत्वों में पोषण और सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्तर में बढावा देने की बात कही गई है। इसके बावजूद बच्चों के स्वास्थ्य के पर्याप्त देखरेख और पोषण के अधिकार के बारे में कोई कानून नहीं बना है। जैसे, नवजात शिशु दुग्ध विकल्प, पोषण बोतल और नवजात आहार (उत्पादन, आपूर्ति और वितरण नियमन) कानून 1992 (जून 2003 में संशोधन) इस बात का इंतजाम करता है कि कोई उत्पाद खुद को मां के दुध से बेहतर होने का दावा न करे और पाउडर दूध, बोतल और बच्चों के आहार की अन्य चीजों के उत्पादन-विपणन में कोई गड़बड़ न हो। ऐसे ही उद्देश्यों के लिए खाद्य मिलावट कानून बिना आयोडीन वाले नमक की बिक्री पर प्रतिबंध लगाता हैं। लेकिन ये सभी छिटपुट काम ही है। कुल मिलाकर बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण के मामले भारतीय कानून की नजर से छूटे ही हुए हैं।

एक बड़ी असफलता लिंग आधारित जांच के बाद गर्भपात की है। नई तकनीक ने कन्याओं का जीवन और मुश्किल कर दिया है। कन्या भ्रूण का गर्भपात कराने के चलते पंजाब (प्रत्येक हजार लड़कों पर 793 लड़कियां) जैसे अनेक राज्यों में लिंग अनुपात एकदम गड़बड़ हो गया है। (2001 जनगणना के प्रारंभिक आंकड़ों के अनुसार) प्रसव पूर्व जांच तकनीक (नियमन और दुरुपयोग निषेध) कानून 1994 बना भी है पर देश भर में डाक्टर और क्लिनिक इसकी परवाह करते नहीं दिखते।

इसी प्रकार जन्म का मुफ्त पंजीकरण (1919 के कानून के अनुसार अनिवार्य) के लिए 14-21 दिनों का वक्त रखा गया है। पर यह बहुत छोटी अवधि है क्योंकि एक तो मां-बाप को इस कानून की जानकारी नहीं है और दूसरे पंजीकरण केंद्र भी काफी दूरी पर स्थित है। यह एक बड़ी बात है क्योंकि स्कूलों में दाखिले से लेकर श्रम कानून या अपराध कानून के अनेक मामलों में बच्चों को अपनी उम्र बताने के लिए जन्म प्रमाण पत्र पेश करना होता है।

सहयोग – सुरभि चोपड़ा

और नीतियां बना देने भर से सुलझने वाला नहीं है। इसके लिए प्राथमिक शिक्षा, लैंगिक संबंधों और यहां तक कि संपत्ति के अधिकारों में काफी कुछ काम करने की मांग करता है। पर इस संदर्भ में भी बाल विकास सेवाओं की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसी चलते इस रिपोर्ट में एकीकृत बाल विकास सेवा को सबके लिए उपलब्ध कराने की बात पर खास ज़ोर दिया गया है – खास तौर से बेहतर स्तर की सेवाओं की सार्वभौमिक उपलब्धता पर।

बाक्स 1.7. कार्यस्थल पर बच्चों की देखरेख और रोजगार गांरटी कानून

औरतों और काम के प्रभावित करने वाली एक प्रमुख चीज है बच्चों की देखरेख की सुविधाएं – खासकर उनके काम करने की जगह पर। अगर औरत को भरोसा हो कि वह जहां काम करने जा रही है वहां या उसके आसपास उसके बच्चों को ठीक-ठाक देखरेख हो जाएगी तो उसके लिए काम करना बहुत आसान हो जाता है। अगर बच्चा स्तनपान की उम्र (0-2वर्ष) का हो तो यह और भी जरूरी है कि वह मां के आसपास ही रहे जिससे उसका दूध पीना जारी रहे। दुनिया भर का अनुभव बताता है कि अगर बच्चों की देखरेख का इंतजाम न हो या ऐसी सुविधाओं का लाभ लेना मुश्किल हो (दूरी, समय या अन्य कारणों से) तो माताएं या तो उनका उपयोग ही नहीं करतीं या फिर काम करना ही बंद कर देती है। पर गरीब औरत के लिए तो काम बंद करने का विकल्प भी नहीं होता। ऐसे में बच्चों को घर पर ही बूढ़े लोगों या थोड़े बड़े बच्चे-बच्चियों के भरोसो छोड़ दिया जाता है या फिर काम करने की जगह पर ही ले जाया जाता है। उन्हें वहीं सड़क के किनारे या पेड़ की छांव में छोड़कर काम करना आम है। फिर ऐसे बच्चों की देखरेख तो भगवान भरोसे ही होती है।

भारत में इन तर्कों को मानने वाले कम नहीं हैं और वे मानते हैं कि काम की जगह बालवाड़ियों का इंतजाम करने का कानून बनना चाहिए। फैक्टरी कानून 1948, बागान श्रम कानून 1951, खदान कानून 1952, बीड़ी और सिगार मजदूर कानून 1966, ठेका श्रम कानून 1970, अंतरराज्य प्रवासी मजदूर कानून 1980, निर्माण मजदूर कानून 1996 और अब राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून 2006, सभी में नियोक्ताओं को अपने महिला श्रमिकों के बच्चों के देखरेख की सुविधा उपलब्ध कराने को कहा गया है। पर अनुभव बताता है कि इन प्रावधानों पर शायद ही कभी अमल होता है। एक अनुमान के अनुसार भारत में सिर्फ 15000 बालवाड़ियों (क्रेच) हैं (एम एस स्वामीनाथन फाउंडेशन)। स्पष्ट है कि ये ऊंट के मुंह में जीरे के समान ही है।

हाल में बने रोजगार गांरटी कानून ने काम की जगहों पर बच्चों की देखरेख की सुविधाओं को नए तरह से उठाने की कोशिश की है। इस कानून में यह प्रावधान है तो इस पर जोर देने से महिलाओं और गरीबों में जीवन पर ही नहीं बच्चों की देखरेख पर भी काफी प्रभाव पड़ सकता है।

इस कार्यक्रम में महिलाओं की भागीदारी बहुत बड़े पैमाने पर है और इसका बच्चों पर भी असर पड़ता है। इस साल अप्रैल में अपने सामाजिक आडिट के क्रम में मैंने डुंगरपूर, राजस्थान में पाया कि काम के अधिकांश ठिकानों पर महिला श्रमिकों की संख्या 80 फीसदी से ज्यादा थी। चूंकि पुरुष बाहर काम करने चले गए है। और महिलाएं भी इन कामों में लगी हैं सो बच्चे यूं ही घर पर छोड़ दिए जाते हैं। काफी सारे मामलों में 5-6 वर्ष के लड़के-लड़की के जिम्मे ही अपने नन्हें भाई-बहनों की देखरेख का जिम्मा था क्योंकि मां-बाप दोनों कमाने निकल गए थे। जिन बच्चों को दूध पिलाना पड़ता है, वैसे बच्चों को भी घर पर छोड़ दिया जाता है। एक बार दूध पिलाकर मां निकल जाती है और फिर वापस लौटने पर दूध पिलाती है। घर में बूढ़े लोग ही बच जाते हैं जिन्हें स्वयं देखरेख की जरूरत होती है। बच्चे अपने से छोटे भाई बहनों के कैसे संभालते होंगे, गिरने-पड़ने चोट लगने पर कैसे काम करते होंगे या सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है। ऐसे ही एक बच्चे की मां ने कहा, "नन्हीं बेटियां कैसे संभालती हैं हमें नहीं मालूम। हम तो ऊपर वाले के भरोसे छोड़ आते हैं। क्या करें?"

जहां घर में कोई भी न हो वहां नन्हें-मुन्नों को काम की जगहों पर ले आया जाता है। मां ईट ढोती है, मिट्टी खोदती है या पत्थर तोड़ती है और बच्चा वहीं आसपास पड़ा रहता है। ऐसी मुश्किल स्थितियों में बिना पर्याप्त छाया और कपड़े में पड़े हुए ऐसे बच्चों को देखना भी कष्टकर है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी कानून में स्पष्ट कहा गया है कि अगर काम की जगह पर कामगार महिलाओं के पांच बच्चे छह वर्ष से कम के हों तो उनकी देखरेख के लिए एक महिला को लगाना चाहिए। इसके दिशा-निर्देशों में बालवाड़ियां बनाने का भी प्रावधान है और राज्य सरकारों से कहा गया है कि वे लागत खर्च के अनुमान में बालवाड़ी की सुविधाओं का खर्च भी जोड़ लें। पर बालवाड़ियों की सख्त जरूरत के बावजूद कानून के इस पक्ष को सभी भूल से गए हैं।

काम के जगह पर बच्चों के देखरेख की समस्या जितनी छोटी दिखती है असल में यह उतनी ही जटिल है। वहां का माहौल इतना मुश्किल है कि वहां बच्चों को ले जाना ही गलत है। उस जगह पर बालवाड़ी का स्थायी भवन वगैरह बनवाना भी संभव नहीं है और काम-चलाऊ इंतजाम से बेहतर तो बच्चों को घर छोड़ना ही है। इस संदर्भ में कुछ अच्छे सुझाव आए हैं और उन पर भी विचार होना चाहिए। एक सुझाव तो ऐसे बच्चों की देखरेख के लिए एक महिला को लगाने का है जो घर-घर जाकर बच्चों की देखरेख करे। ऐसे में बच्चों की देखरेख भी हो जाएगी और काम की जगह पर सुविधाएं जुटाने का सिरदर्द नहीं रहेगा। एक और सुझाव ऐसी सुविधाएं जुटाने का है जो एक जगह से दूसरी जगह आसनी से पंहुचाई जा सकें। टेंट जैसी इन सुविधाओं का लाभ यह होगा कि बच्चों को स्तनपान कराने में कोई दिक्कत नहीं होगी। और फिर बच्चे पास हों तो महिला कामगार शांत मन से काम कर सकेगी।

इस बात में संदेह नहीं कि रोजगार गांरटी योजना से ग्रामीण इलाकों से काफी सारे लोगों, खासकर महिलाओं के लिए जीविका चलाने के साधन उपलब्ध होंगे। पर इनका बच्चों पर जो प्रभाव पड़ेगा उस पर भी तत्काल ध्यान दिए जाने की जरूरत है। अनेक दूसरे मामलों की तरह इसमें भी अभी तक बच्चों, खासकर छह वर्ष से कम उम्र के मामलों की अनदेखी ही की गई है। पर यह न्यूनतम जरूरत है कि बच्चों की देखरेख का प्रभावी इंतजाम हो जिससे महिलाएं स्वतंत्र भाव से रोजगार कर सकें और उनके बच्चे भी परेशान न हों। इस समस्या को समझने और इससे निपटने की रचनात्मक सोच से इस कानून का लाभ समाज के काफी बड़े और जरूरतमंद हिस्से तक पंहुचने में मदद मिलेगी।

सहयोग – किरण भट्टी

2. भारतीय बच्चों की स्थिति

अनिता खेमका

यह सुझाया जाता है कि भारतीय प्रधान मंत्री को अपने मंत्रियों से "अर्थव्यवस्था के विकास की स्थिति क्या है?" पूछने की जगह "हमारे बच्चों के विकास की स्थिति क्या है?" पूछना चाहिए। पर मंत्री भी पहले सवाल का जबाव देना चाहेंगे क्योंकि भारतीय बच्चों का हाल किसी मानवीय आपातस्थिति से कम नहीं है। और यह आज की बात नहीं है। पिछली कुछ शताब्दियों से बच्चों के विकास के संकेतक सबसे ज़्यादा बदहाली बता रहे हैं। इस मामले में प्रगति बहुत सुस्त रही है और बांग्लादेश जैसे मुल्क भी पिछले कुछ वर्षो में भारत से आगे निकल गए हैं। यह संकट भारत की अन्य क्षेत्रों की प्रगति पर भी गहरा छाया डाल रहा है।

तीसरा भारतीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण, इसे 2005-06 में किया गया था, के निष्कर्षों को तैयार करके जारी करने का काम चल रहा है, सो रिपोर्ट में उनको शामिल नहीं किया जा सका है, पर इसके आगे के संस्करणों में उन निष्कर्षों को लिया जाएगा। इसी बीच यह अध्याय मुख्यतः, दूसरे भारतीय परिवार सर्वेक्षण, 1998-99 में किया गया था, के निष्कर्षों पर आधारित है।

2.1 शुरुआत से ही मुश्किल

औसत भारतीय बच्चे को जीवन की शुरुआत ही मुश्किलों और तंगी से करनी होती है। मां के कुपोषित रहने और परिवार को जच्चा-बच्चा संबंधी सामान्य किस्म की सुविधाएं भी उपलब्ध न होने से बच्चे की परेशानियां उसके पैदा होने से पहले से ही शुरू हो जाती हैं। जन्म के समय रोगों को रोकने संबंधी सबसे महत्वपूर्ण टिटनेस की सूई भी एक तिहाई संभावित माताओं को नसीब नहीं होती। और आज भी ज़्यादातर प्रसव, किसी भी किस्म के प्रशिक्षित डाक्टर, नर्स या दाई की देख रेख के बिना ही होता है।

इससे भी बुरी स्थिति यह है कि औसत भारतीय मां स्वयं कुपोषित होती है। उसका शरीर कमज़ोर होता है। और उनमें खून की कमी आम है। इससे बच्चे के कम वज़न का होने की संभावना बढ़ जाती है और फिर वह बच्चा कमज़ोर ही बना रहता है।

पैदा होने के बाद भी औसत भारतीय बच्चे का जीवन मुश्किल ही बना होता है। भारत में पैदा होने वाले एक तिहाई बच्चों का वजन 2.5 किलो से कम होता है जो सामान्य रूप से स्वस्थ बच्चे का न्यूनतम वज़न माना जाता है (चार्ट 2.2)। स्तनपान की परेशानियों और अनेक कारणों से बच्चे का दूध जल्दी बंद हो जाने के चलते उसके कुपोषित होते जाने का सिलसिला शुरुआती दो वर्षों तक चलता जाता है। तीन वर्ष से कम आयु के करीब आधे बच्चे कुपोषित होते हैं और आधे से ज़्यादा खून की कमी के शिकार होते हैं। 'पूर्ण टीकाकरण' भी आधे से ज़्यादा बच्चों को नसीब नहीं होता। फिर शिशुओं में बीमारियां आम है और प्रत्येक पांच में से एक बच्चा दस्त की चपेट में आता है तो प्रत्येक तीन में से एक बुखार के। भारतीय शिशुओं में से काफी सारे (प्रत्येक दस में एक) पांच की उम्र तक आने के पहले ही दम तोड़ देते हैं।

बढ़ने के दौर में जब बच्चा कुपोषित और बीमार रहता है तो उसके सीखने-समझने की क्षमता भी प्रभावित होती है। 1998-99 तक भी 15-19 वर्ष आयु वर्ग के एक तिहाई बच्चे पांचवीं पास नहीं कर पाए थे, और आधे बच्चों की पढ़ाई आठवीं से आगे नहीं बढ़ पाई थी। यह तो है शिक्षा के मौलिक अधिकार का हाल। जिस उम्र तक भारतीय बच्चों को अपर-प्राइमरी स्कूल में होना चाहिए उस समय तक उनमें से काफी सारे मज़दूरी करने पंहुच गए होते हैं, कम उम्र, भारी काम और ज़्यादा-ज़्यादा देर तक काम करने का उनके कमज़ोर स्वास्थ्य पर और भी नुकसानदेह असर होता है।

संक्षेप में कहें तो भारत के करोड़ों बच्चों को शुरुआत से ही मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। जीवन के पहले छह वर्षों, खासकर शुरुआती दो वर्षों तक वे कुपोषण, बीमारियों और सीखने-समझने की अक्षमता के बीच डूबते-उतराते हुए आगे बढ़ते हैं। और फिर इन कमियों और कमज़ोरियों से वे शायद ही पूरे जीवन में मुक्त हो पाते हैं।

2.2 धीमा विकास

भारत में बच्चों की स्थिति का एक और चिंताजनक पहलू यह है कि उनके भोजन में पौष्टिकता की स्थिति में काफी समय से कोई बहुत सुधार होने के संकेत नहीं दिख रहे हैं। भूख और कुपोषण के बहुत ही डरावने स्वरूप, सूखा रोग के मामलों में इधर कमी आई है, लेकिन मानवीय विकास के सामान्य मानकों (भारतीय बच्चों की

चार्ट : 2.1. भारत : मातृ स्वास्थ्य और सम्बन्ध संकेतक

प्रतिशत (%)	1998-99 (रा.म.स्तर.स.-2)	2005-6 (रा.म.स्तर.स.-32)
माताओं का प्रतिशत अनुपात जिन्हें :[a]		
गर्भावस्था के दौरान टिटनेस का टीका नहीं लगा	33	n/a
जिनका कोई चेकअप नहीं हुआ	34	23
जिनका आइरन या फोलिक की गोलियां नहीं मिली	42	n/a
प्रसव के दौरान डॉक्टर नर्स की मदद नहीं मिली	58	52
15-49 वर्ष की औरतों का अनुपात प्रतिशत जिन्हें :		
रक्तल्पता है	52	58
जिनका वजन सामान्य से कम है।	36	33

[a] आंकड़े सर्वेक्षण के पहले के तीन वर्षों के हैं।

स्रोत: राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-2) 1998-99 और राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-3) 2005-06 के आंकड़े अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान (2000, 2006) में प्रस्तुत किए गए; साथ ही www.nfhsindia.org पर भी उपलब्ध है। यह आंकड़े 15-49 वर्ष की आयु वर्ग की विवाहित महिलाओं पर लागू हैं।

चार्ट : 2.2. भारत में बच्चों की स्थिति

	1998-99 (रा.स.स्वा.स.-2)	2005-06 (रा.स.स्वा.स.-3)
विभिन्न श्रेणियों वाले शिशुओं का प्रतिशत अनुपात :		
जन्म के समय कम वजन	(लगभग 30)	
जन्म के समय के एक घंटे में स्तनपान नहीं	84	77
अल्पोषित[a]	47	46
कम लम्बाई[a]	45	38
दुर्बल[a]	16	19
पूर्ण टीकाकरण नहीं [b]	58	56
कोई टीका नहीं [b]	14	n/a
जन्म से पहले कोई जांच /या मदद नहीं	34	23
रक्तल्पता का शिकार	74	79
पिछले दो हफ्तों इन बीमारियों से परेशान:		
बुखार	30	n/a
दस्त	19	n/a
सांस का गंभीर संक्रमण	19	n/a

[a] *उम्र के हिसाब से वजन न होने, उम्र के हिसाब से ऊंचाई कम होने और ऊंचाई के हिसाब से वजन न होने का मानक पैमाने मानने परण*

[b] *12-23 माह उम्र के*

स्रोत : राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (सर्वे चार्ट 2.1) अगर अलग से उल्लेख न हो तो आंकड़े 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में (जिनके छह माह से कम के बच्चे शामिल नहीं है।) जुड़े है। जन्म के समय कम वजन का अनुमान मानव विकास रिपोर्ट 2006 से लिए गए हैं।

ऊंचाई और वजन में वृद्धि वगैरह) में सुधार की रफ्तार बहुत ही धीमी है। इस रिपोर्ट के जारी होने के कुछ ही दिनों पूर्व तीसरे *राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण* के नतीजे सामने आए जो बहुत भयावह हैं। यह चीज़ चार्ट 2.2 में दिखाई गई है जो 2005-06 और 1998-99 में अलग -अलग आयु वर्ग के बच्चों के औसत वज़न को दिखाता है। निश्चित रूप से इसमें सुधार दिखता है, पर यह कोई तेज़ या उल्लेखनीय सुधार नहीं है। और उम्र के हिसाब से वज़न के आधार पर की गई गिनती के अनुसार जहां 1998-99 में अल्प पोषण वाले बच्चों का अनुपात अगर 45 फीसदी था तो 2005-06 में यह 38 फीसदी हो गया था। और अगर साल में एक फीसदी की दर से कमी की यह रफ्तार चलती रही तो भारत को शिशु स्वास्थ्य में चीन के स्तर तक पंहुचने में करीब 25 वर्ष लग जाएंगे।

इस तीसरे सर्वेक्षण के स्वास्थ्य वाले आंकड़े ज़्यादा चिंता पैदा करते हैं। ये बताते हैं कि 1998-99 और 2005-06 में टीकाकरण का स्तर लगभग समान है। (चार्ट 2.2)। रक्तलप्ता की दर 2005-06 में पहले से कुछ बढ़ ही गई है। कुछ चीजों में हल्का सुधार है। इन दो सर्वेक्षणों की तुलना पोषक भोजन मिलने के मामले में असमानता को भी दर्शाता है : स्वास्थ्य में सुधार के आंकड़े बताते हैं कि गांवों की तुलना में शहरों में और लड़कियों की तुलना में लड़कों के स्वास्थ्य में औसतन ज़्यादा सुधार हुआ है। जैसे उम्र के हिसाब से वज़न के पैमाने पर अगर 1992-93 से 1998-99 के बीच शहरी इलाकों के सात फीसदी ज़्यादा लड़के स्वस्थ पाए गए हैं, तो ग्रामीण इलाके की मात्र तीन फीसदी अधिक लड़कियां ही इन सात वर्षों में इस पैमाने पर ऊपर आ पाई हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि इस रफ्तार से गांव की सभी लड़कियों को इस पैमाने से चीन के स्तर तक पहुँचने में 40 वर्ष भी नहीं, अस्सी या उससे ज़्यादा वर्ष का समय लग जाएगा। नब्बे के दशक में आर्थिक असमानताओं में जिस तेज़ी से वृद्धि हुई है, बच्चों के अल्पपोषण की यह प्रवृत्ति उससे मेल खाती है।

अगर हम शिशु मृत्यु के संकेतकों पर गौर करते हैं तो उनसे भी ऐसी ही चिंताजनक तस्वीर उभरती है। अन्य अधिकांश देशों की तरह भारत में भी पिछले पचास वर्षों में शिशु मृत्यु दर में तेज़ी से कमी आई है। 1950 के दशक के अंत में प्रति हज़ार जन्म पर शिशु मृत्यु दर करीब 150 थी जो अब करीब 60 रह गई है। पर यह गिरावट नब्बे के दशक में आकर थम सी गई है या इसकी रफ्तार बहुत कम हो गई है। इधर के कुछ वर्षों में इस रफ्तार में तेजी की बात कही जा रही है पर 1990 के बाद से इस क्षेत्र में हुई प्रगति अन्य काफी सारे मुल्कों की तुलना में बहुत सीमित है।

और जब हम बाल स्वास्थ्य और पोषण की इस स्थिति को भारत की अर्थव्यवस्था में तेज विकास के बाक्स देखते हैं तब स्थिति और चिंताजनक है। दुनिया में सबसे तेज़ विकास दर वाले मुल्कों में आज भारत की गिनती भी की जाती है। पिछले 15 वर्षों में भारत की अर्थव्यवस्था का विकास दर करीब 6 फीसदी रहा है और इस बीच प्रति व्यक्ति आय दो गुनी से ज़्यादा हो चुकी है। फिर भी भारत में बाल विकास के संकेतकों का विकास उन देशों से भी कम रहा है जिनके आर्थिक विकास की दर भारत से काफी कम है।

2.3 भारत और दक्षिण एशिया

जब भारत की तुलना दूसरे देशों से की जाती है तो अक्सर यह चीन और अमेरिका जैसे बड़े देशों से होती है। और अपेक्षाकृत विकसित देशों से तुलना भी 'बड़े-बड़े' मामलों में होती है जैसे भारतीय फौज और चीनी फौज की ताकत की, या भारत में लोकतंत्र और अमेरिका में लोकतंत्र की। कई बार भारत और पाकिस्तान की तुलना होती है, पर ज़्यादातर गड़बड़ मामलों में, और अन्य पड़ोसी देशों को तो भुला ही दिया जाता है। उन्हें बहुत छोटा या अपेक्षाकृत 'पिछड़ा' मानकर उन्हें तुलना के योग्य ही नहीं माना जाता। आखिर भारत 'उभरती महाशक्ति' है, तो छोटों की परवाह क्यों करे?

पर सिर्फ दक्षिण एशिया में ही अपने आसपास नज़र डालें तो काफी कुछ सीखने लायक़ चीजें दिखेंगी – खासकर स्वास्थ्य और पोषण के मामले में। भारत की तुलना में इनके 'पिछड़ा' होने का भ्रम असलियत पर नजर डालते ही टूट जाता है और साफ लगता है कि दक्षिण एशिया के अन्य देश इन मामलों में भारत से बेहतर प्रदर्शन कर

चार्ट : 2.3. भारत और दक्षिण एशिया में बच्चों की बदहाली, 2004

	बांग्लादेश	भूटान	भारत	नेपाल	पाकिस्तान	श्रीलंका
टीकाकरण (सरकारी टीका न पाने वाले 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का प्रतिशत)						
बीसीजी	5	8	**27**	15	20	1
डीटीपी-3	15	11	**36**	20	35	3
एमसीवी	23	13	**44**	27	33	4
पोलियो-3	15	10	30	20	**35**	3
बाल अल्पपोषण (उपरोक्त लक्षणों वाले बच्चों का प्रतिशत)						
सामान्य से कम वजन	**48**	19	47	**48**	38	29
सामान्य से कम ऊंचाई	43	40	46	**51**	37	14
दुर्बल	13	3	**16**	10	13	14
बाल एवं शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जन्म दर)						
नवजात जन्म दर	56	67	62	59	**80**	12
पांच वर्ष से पहले मृत्यु दर	77	80	85	76	**101**	14

स्रोत : यूनिसेफ (2006), दुनिया के बच्चों की स्थिति, हर पंक्ति में सबसे खराब आंकड़ा रेखांकित है।

रहे हैं। यह बात चार्ट 2.3 से साफ होती है। जैसे भारत में 'बीसीजी' के टीकों से वंचित बच्चों का अनुपात नेपाल से दो गुना, बांग्लादेश से पांच गुना और श्रीलंका से करीब 30 गुना ज़्यादा है। जहां तक बाल अल्पपोषण का मामला है तो इसमें भी भारत की स्थिति बहुत खराब है, और सिर्फ नेपाल ही उससे बदतर है। इतनी उन्नत स्वास्थ्य सुविधाओं और इतने सारे डाक्टरों की फौज के बावजूद शिशुओं के जीवन रक्षा के मामले में भारत की स्थिति दयनीय ही बनी हुई है, और सिर्फ पाकिस्तान उससे पीछे है। बाल विकास के इन सभी सूचकांकों का कोई भी चार्ट बनाया जाए तो भारत लगभग हर मामले में इसमें सबसे नीचे ही आएगा।

इस तस्वीर के कुछ पहलू तो सर्वज्ञात किस्म के भी हैं। जैसे बाल स्वास्थ्य के मामले में श्रीलंका की शानदार उपलब्धियां छुपी हुई नहीं हैं : प्रति व्यक्ति आय के मामले में भारत जितना गरीब होने के बावजूद श्रीलंका में शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार जन्म पर) सिर्फ 12 है जबकि भारत में यह उससे पांच गुने से ज्यादा (प्रति 1000 करीब 62) है। इसी प्रकार श्रीलंका में लगभग सभी बच्चों का टीकाकरण होता है जबकि भारत के लिए यह स्थिति अभी दूर की कौड़ी लगती है (चार्ट 2.3)। पर यह बात ज़्यादा चर्चित नहीं है कि श्रीलंका ने यह सफलता लोगों की जागरूकता और सामाजिक हस्तक्षेप के ज़रिए ही हासिल की है। ज़रूरी बुनियादी सेवाएं सबको और मुफ्त दी जाएं – खासकर स्वास्थ्य और शिक्षा के मामलों में – यह श्रीलंकाई राजनैतिक एजेंडे और सार्वजनिक नीतियों का हिस्सा बन गए थे। जैसे श्रीलंका में अधिकांश बच्चे ठीक ठाक स्तर के एक साझा स्कूल प्रणाली में जाते ही हैं जो सरकारी देखरेख में चलते हैं। दरअसल वहां 1960 के दशक से ही माध्यमिक स्तर की शिक्षा में निजी स्कूलों पर रोक लगा दी गई है। भारतीय पाठक यह पढ़कर भी हैरान होंगे कि श्रीलंका के गिनती के लोगों को ही अपने घर से प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र पंहुचने में 1.3 कि.मी. से ज्यादा दूरी तय करनी पड़ती है (आक्सफैम इंटरनेशनल, 2006)। और अगर श्रीलंका के बच्चे स्वास्थ्य और पोषण के मामलों में बेहतर दिखते हैं, तो यह उचित ही है और यह दोनों मुल्कों में बाल कल्याण के प्रति सार्वजनिक चर्चा और चिंता के स्तर में फर्क से जुड़ा है।

भारत और बांग्लादेश की तुलना भी कम दिलचस्प नहीं है। भारत की तुलना में बहुत गरीब होने के बावजूद बाल विकास में काफी मामलों में बांग्लादेश हमसे बेहतर स्थिति में है और चार्ट 2.4 इस चीज़ को अच्छी तरह दर्शाता है (साथ ही देखें चार्ट 2.3)। टीकाकरण के स्तर का अंतर सबसे

चार्ट : 2.4. भारत और बांग्लादेश : बाल कल्याण और संबंधित संकेतक, 2004

	भारत	बांग्लादेश
शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जन्म दर)	62	56
एक वर्ष में और टीकाकरण का अनुपात (%)		
बीसीजी	73	95
खसरा	56	77
अल्पोषित बच्चों का प्रतिशत अनुपात 1995-2003[a]		
उम्र के अनुसार वजन कम	49	48
उम्र के अनुसार लम्बाई कम	45	43
अनुमानित मातृ मृत्यु दर, 2000 (प्रति 1000 प्रसव पर)	540	380
शुद्ध प्राथमिक पंजीकरण अनुपात (महिला) (%)	87	95
प्रति व्यक्ति आय (क्रय शक्ति की तुलना अमेरिकी डालर के आधार पर)	3,139	1,870

[a] आंकड़े हाल के वर्षों के है, जिसने आंकलन इस समय उपलब्ध हैं।

स्रोत : मानव विकास रिपोर्ट 2006. अगर अलग से उल्लेख नहीं है तो आंकड़े वर्ष 2004 के हैं।

बाक्स 2.1. बांग्लादेश से भी पिछड़े

भारत में मुसलमानों की आबादी की वृद्धि दर को लेकर हाल में जो हाय-तौबा मची है उस संदर्भ में भारत और बांग्लादेश में 'मानव विकास' से संबंधित हाल के आंकड़े कुछ बहुत दिलचस्प बातें सामने लाते हैं। कायदे से तो इस मामले में भारत को बांग्लादेश से काफी आगे होना चाहिए? नियमित रूप से बांग्लादेश न सिर्फ भारत से गरीब (बल्कि काफी गरीब) है बल्कि वहां तो मुसलमान ही मुसलमान हैं। अपने हिसाब में भारत 'महाशक्ति' बन गया हैं। ऐसे में कोई भी उम्मीद करेगा कि यहां के नागरिक बांग्लादेश की तुलना में काफी स्वस्थ, काफी बेहतर खाते-पीते और काफी ज्यादा पढ़े-लिखे होंगे।

आइए अब प्रमाणों पर भी गौर करें, शिशु मृत्यु दर शुरुआत करने का अच्छा बिन्दु है। नवीनतम मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रति 1000 जन्म पर शिशु मृत्यु दर 67 है जबकि बांग्लादेश में 51 अर्थात भारत से काफी कम। और यह तस्वीर तब और दिलचस्प दिखती है जब हम 1990 में आंकड़ों पर गौर करते हैं। तब भारत में शिशु मृत्यु दर 80 था तो बांग्लादेश में 91, जाहिर तौर पर बांग्लादेश बड़ी सफाई से आगे निकल गया है और वह भी उस दौर में जब यहां का आर्थिक विकास दर बांग्लादेश से काफी अधिक रहा है।

बाल स्वास्थ्य से जुड़े अन्य संकेत भी यही तस्वीर बताते हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार बांग्लादेश के 95 फीसदी बच्चों को टीबी और 77 फीसदी को खसरे का टीका लग जाता है। भारत में ये आंकड़े 81 फीसदी ही है। बांग्लादेश के 48 फीसदी लोगों को उन्नत किस्म के शौचालयों की सुविधा उपलब्ध है। जबकि भारत में ऐसी सुविधा 28 फीसदी लोगों को ही उपलब्ध है। भारत में मातृ मृत्यु दर बांग्लादेश से काफी अधिक है। प्रति 100000 जन्म पर प्रसव के दौरान करने वाली औरतों की संख्या बांग्लादेश में 380 है तो भारत में 540, बांग्लादेश में गर्भनिरोधकों की उपलब्धता का स्तर भी भारत से काफी अधिक है।

शायद इन सबका रिश्ता सार्वजनिक स्वास्थ्य पर होने वाले खर्च है। बांग्लादेश अपने सकल घरेलू उत्पादन का 1.6 फीसदी हिस्सा स्वास्थ्य पर खर्च करता है जबकि भारत में यह अनुपात मात्र 0. 9 फीसदी का है। सैनिक खर्च में स्थिति ठीक उल्टी है। भारत का प्रतिरक्षा बजट उसके सफल घरेलू उत्पाद का 2.3 फीसदी है जबकि बांग्लादेश में मात्र 1.1 फीसदी।

चलिए यह तो हुई स्वास्थ्य की बात। कम से कम शिक्षा में तो भारत काफी आगे होगा? क्या बांग्लादेश नोबल पुरस्कारों, प्रसिद्ध लेखकों, परमाणु वैज्ञानिकों और विद्वानों के मामले में भारत के आगे कहीं ठहरता है? नहीं। पर उसने सबको प्राथमिक शिक्षा देने का लक्ष्य लगभग हासिल कर लिया है। बांग्लादेश में आज 87 फीसदी बच्चों का स्कूलों में पंजीकरण है जबकि भारत में यह आंकड़ा 83 फीसदी ही है। इतना ही नहीं वहां दाखिले में लड़के-लड़कियों का भेदभाव खत्म हो गया जो भारत में उसी से बना हुआ है। यहां स्कूल जाने वालों में लड़कों की संख्या लड़कियों से अधिक हे। लैंगिक विषमता में अन्य संकेतों और आंकड़ों में भी बांग्लादेश भारत से बेहतर है। जैसे वहां की आबादी में लैंगिक अनुपात हमारी तरह नहीं बिगड़ा है और वहां के श्रम बल में भी औरतों की हिस्सेदारी का अनुपात हमसे काफी अधिक है।

संभवत: दिल रखने वाला एक मामला भारत के हक में भी है, पोषण स्तर के मामले में भारत बांग्लादेश से बेहतर है। दोनों ही देशों के लगभग आधे बच्चे अल्पपोषित है। इस मामले में इन दोनों देशों का स्थान दुनिया में सबसे नीचे है – पर इस नरक की ठेलाठेली में हम बांग्लादेश से ऊपर हैं।

संभव है कि इसमें से कुछ अनुमान पूरी तरह ठीक न हों, संभव है कि पक्के आंकड़े हों तो रैंकिंग उलट जाए। पर सामान्य तौर पर सामाकि विकास के कई पहलुओं में बांग्लादेश आज भारत से बेहतर प्रदर्शन कर रहा है। यह चीज और भी ज्यादा उल्लेखनीय लगती है क्योंकि अभी हाल तक भारत सभी मामलों में बांग्लादेश से बेहतर स्थिति में रहा करता था – अभी बांग्लादेश को आजाद हुए भी कितने दिन हुए हैं।

बांग्लादेश मानव विकास के हिसाब से कोई स्वर्ग नहीं है। भारत की तरह यह भी दुनिया के सबसे वंचित देशों में एक है। पर बांग्लादेश में सामाजिक विकास के सारे सूचकांक बहुत तेजी से सुधर रहे हैं। शिशु मृत्यु दर हो या टीकाकरण की दर, स्कूलों में भागीदारी हो या पोषण और प्रजनन दर, सभी में एक ही तरह का संकेत और संदेश मिलता है – वहां के जीवन स्तर में तेजी से सुधार हो रहा है और ऐसा सिर्फ अमीर या बड़े लोगों के साथ ही नही हो रहा है बल्कि पूरी आबादी के साथ हो रहा है। भारत में सामाजिक विकास की दर कम है जबकि आर्थिक विकास तेजी से हो रहा है। अनेक दूसरे संकेतों के साथ दर भी एक संकेत है जो बताता है कि भारत की विकास नीति बुनियादी खोट वाली है।

सहयोग – ज्यां द्रेज
(हिन्दू, 17 सितंबर 2004)

ज़्यादा है और भारत में टीकों से वंचित बच्चों का अनुपात बांग्लादेश की तुलना में दो से पांच गुना है। इस प्रकार शिशु और बाल मृत्यु की दरें भी बांग्लादेश में भारत से काफी कम हैं।

यह चीज़ भी खास ध्यान देने योग्य है कि ये बातें हाल की हैं। इस क्षेत्र में बांग्लादेश मात्र 15 वर्ष पहले ही आगे बढ़ा है, जबकि इस अवधि में भारत में आर्थिक विकास की रफ्तार काफी तेज़ रही है। शिशु मृत्यु दर के संदर्भ में (इसी मुद्दे को चार्ट 2.2 अच्छी तरह से बताता है।) 1990 तक बांग्लादेश में भारत की तुलना में शिशु मृत्यु दर ज़्यादा थी (भारत में यह प्रति हजार 80 थी तो बांग्लादेश में 91) और जिस दौर में भारत ने बांग्लादेश की तुलना में बहुत तेज़ आर्थिक विकास दर हासिल किया है, उसी में बांग्लादेश इन मामलों में उससे निकल गया।

यह बात भी उल्लेखनीय है कि अगर हम पूरे राष्ट्र के आंकड़ों की जगह कमज़ोर समुदायों या पिछड़े इलाकों पर ध्यान दें तो

बाक्स 2.2. बांग्लादेश में बाल विकास

1990 में बांग्लादेश में शिशु मृत्यु-दर प्रति हजार 114 भारत के 94 से 21 फीसदी ज्यादा थी। सन 2004 तक स्थिति एकदम उलट गई थी। बांग्लादेश में प्रति हजार जन्म पर यह 56 थी जो भारत से 10 फीसदी कम हैं 1990 में भारत में जीवन प्रत्याशा दर बांग्लादेश (52 वर्ष) से सात साल ज्यादा थी। 2004 तक वह भारत के 63.6 वर्ष की तुलना में 63.3 वर्ष यानि भारत के बराबर पंहुच गया। यह उपलब्धि बहुत ही शानदार है। खासतौर से इस तथ्य को देखते हुए कि 2004 में भी बांग्लादेश में प्रति व्यक्ति आमदनी भारत में 58 फीसदी कम थी। बांग्लादेश में यह 406 डालर थी तो भारत में 640 डालर और 1975 से 2004 के बीच भारत में बांग्लादेश में बच्चों के जीवनदर में इस उल्लेखनीय सुधार को तीन प्रमुख कारकों से समझा जा सकता है।

पहला कारक तो है औरतों का सशक्तिकरण जो स्वतंत्र वेतन वाले रोजगार (जैसे परिधन उद्योग में) और स्वरोजगार (लघु ऋण के विशाल कार्यक्रम के जरिए) के माध्यम से आया है और इसने औरतों की स्थिति एकदम बदल दी है। यह दृश्य आम है कि बांग्लादेशी औरतें और लड़कियां सुबह-सुबह बतियाती हुई अपने-अपने कारखानों की तरफ जा रही हों। अध्ययनों से पता चलता है कि इन औरतों में 95 फीसदी से ज्यादा महिलाएं गांवों से आई हुई है। युवा महिलाओं के लिए रोजगार के इस अपूर्व अवसर ने रोजगार और कमाई में लैंगिक फासले को कम कर दिया है। इसके साथ ही औरतों ने अनेक पारंपरिक सामाजिक बंधनों और पूर्वाग्रहों को तोड़ा है तथा वे आत्मविश्वास से भरी है। समाज भी परिवार की कमाई में उनके योगदान को मानने लगा है और फैसलों में उनकी भागीदारी का सम्मान किया जाने लगा है। ये युवा महिलाएं अपनी नई आजादी और नई जीवन शैली को पसंद कर रही हैं और समाज की अगुवाई में हिस्सेदार बनने के अवसर का लाभ ले रही हैं। देर से शादी करना और बच्चे पैदा करने में जल्दबाजी न करना खुद उनके लिए तो लाभदायक है ही इसका बच्चों का मृत्युदर कम करने पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है।

बांग्लादेश भर में लघु ऋणों की उपलब्धता का प्रसार होने के साथ ही काम के बेहतर अवसर बन गए हैं। मई 2006 तक अकेले ग्रामीण बैंक ने अपनी 2259 शाखाओं से पूरे बांग्लादेश के 86 फीसदी से ज्यादा गांवों तब अपनी पंहुच बना ली है। इसके 290 अरब का ऋण (करीब 5.72 अरब डालर) 67.4 लाख लोगों में बांटा है – उल्लेखनीय है कि ऋण लेने वालों में औरतों का हिस्सा 97 फीसदी है। ऋण बांटने वाली दूसरी प्रमुख संस्था 'ब्रेक' के भी ऋण बांटने और उससे ऋण लाने वालों की संख्या का हिसाब इसी से मिलता जुलता है। हाल के अनुमानों के अनुसार इस तरह के छोटे ऋणों के सहारे ही ऋण लेने वाले 50 फीसदी से ज्यादा परिवार गरीबी देखा के ऊपर आ गए हैं। लघु ऋणों के मिलने में आसानी होने से नए आर्थिक अवसर खुले हैं। जैसे ग्रामीण बैंक के ऋण लेने वाले 250000 लाख से ज्यादा लोग मोबाइल फोन चलाते हैं जिससे बांग्लादेश की आधी ग्रामीण आबादी फोन सेवा का लाभ पा रही है। इन जगहों पर कभी फोन था भी नहीं।

दूसरा, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा महिला समूहों में काम करने और उनकी नियमित बैठक कराने से औरतों का सामाजिक और राजनैतिक सशक्तिकरण तेजी से हुआ है। ग्रामीण बैंक ने अपने लोकतांत्रिक काम काज से सबके चुनाव प्रणाली से परिचित करा दिया है। बैंक की शाखाओं में हर साल प्रमुख, सचिव, केंद्र प्रमुख और उप-केंद्र प्रमुख का चुनाव होता है। वे हर साल में ग्रामीण बैंक को चलाने वाले बोर्ड के सदस्यों का चुनाव करते हैं। इस अनुभव ने अनेक औरतों को भी चुनाव लड़ने की प्रेरणा दी है। सन 2003 चुनाव में ग्रामीण बैंक के 3059 सदस्यों ने चुनाव लड़ा और स्थानीय सरकार के चुनावों में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों पर जीत भी हासिल की। बैंक से ऋण लेने वाली महिलाओं ने भी काफी बड़ी संख्या में चुनाव जीता। हाल के एक विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ है कि ऋण-मंच में भाग लेने वाली महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति उन महिलाओं से ज्यादा जागरूकता थी जो इसके दायरे से बाहर हैं। लघु ऋण के सहारे अपना व्यवसाय करने वाली महिला सामुदायिक कार्यकर्त्ता परिवार नियोजन, टीबी मरीज की देख रेख और बच्चों के प्रमुख रोगों का इलाज घर-घर जाकर ही करती है। स्कूल की पाठ्यचर्या में स्वास्थ्य संबंधी संदेश अनिवार्य हिस्सा है और रेडियो पर भी ये संदेश बार-बार प्रसारित होते हैं।

तीसरी चीज है औपचारिक शिक्षा में लड़कियों की हिस्सेदारी में नाटकीय वृद्धि। इस नाम में भी गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। जैसे 'ब्रेक' की अनौपचारिक स्कूलों में उन किशोर-किशोरियों को तीन साल की प्राथमिक शिक्षा दी जाती है जो कभी स्कूल नहीं गई हैं। इन बच्चों के स्कूल की पढ़ाई पूरी करने की दर 98 फीसदी से ज्यादा है। यहां से निकले बच्चे एक दफे में आठवीं कक्षा में दाखिला ले सकते हैं और ज्यादातर बच्चे लेते भी हैं। स्कूल की नियमित पाठ्यचर्चा में किशोरवय में शारीरिक बदलाव, मासिक धर्म, शादी और गर्भ, परिवार नियोजन और गर्भनिरोधक, धूम्रपान और नशीले पदार्थों के सेवन तथा लैंगिक मुद्दों पर पर्याप्त विस्तार से चर्चा की गई है। ग्रामीण बैंक ने ही 35000 से ज्यादा अनौपचारिक स्कूल बनाए हैं जिसें 15 लाख बच्चे पढ़ते हैं। हर स्कूल 30 बच्चों को मुफ्त पढ़ाता है और इनमें कम से कम 70 फीसदी लड़कियां हैं। जहां स्कूल बनाया जाता है उसी गांव से शिक्षक की भर्ती की जाती है और उसे प्रशिक्षित करने पढ़ाने का काम सौंपा जाता है कोशिश की जाती है कि अभिभावकों की मासिक बैठक के माध्यम से मां-बाप और परिवारों को भी इस काम में शामिल किया जाए और उस सोच से प्रभावित किया जाए जिसमें लड़कियों की शादी कम उम्र में कर दी जाती है। आज स्कूलों में दाखिला लेने वाली लड़कियों की संख्या लड़कों से ज्यादा है जबकि 15 साल पहले यह स्कूलों के कुछ दाखिले में 40 फीसदी ही होता था।

स्वास्थ्य पर खर्च बढ़ने और उस क्षेत्र में मुस्तैदी बढ़ने से महिला सशक्तिकरण के काम में भी तेजी आई है। एक दशक से ज्यादा समय से स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता घर-घर जाकर औरतों को यह बताती है कि दस्त लगाने पर अपने बच्चों को कैसे जीवनरक्षक घोल पिलाएं। आज बांग्लादेश उस घोल का इस्तेमाल करने में दुनिया में सबसे आगे है और अब वहां दस्त बच्चों की मौत का बड़ा कारण नहीं रह गया है। वहां के 95 फीसदी बच्चों का टीबी का पूर्ण टीकाकरण किया जा चुका है जबकि भारत में यह आंकड़ा 75 फीसदी है।

बांग्लादेश का अनुभव कई महत्वपूर्ण चीजों की ओर इशारा करता है। औरतों के लिए रोजगार के अवसर बढ़ने, उनके सामाजिक दर्जे में सुधार उनकी राजनैतिक भागीदारी बढ़ने, सामाजिक गतिशीलता और सामुदायिक भागीदारी, सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान के प्रभावी प्रचार और समुदाय आधारित प्रभावी जरूरी स्वास्थ्य सेवाओं का बच्चों के जीवित बचने और स्वस्थ रहने पर काफी असर होता है।

सहयोग – जान रोढे और ए. के. शिवकुमार

बाक्स 2.3. सहरिया बच्चे

मई 2006 में दिल्ली दाखा की पहली संतान, डेढ साल की बेटी मर गई। उसके बाद उसे एक बेटा, सुग्रीव हुआ जो अब दो साल का है। फिर उसे जुड़वा बेटियां हुई – गंगा और जमुना। ये दोनों भी नहीं बचीं। दाखा के अनुसार उसे पूरा दूध ही नहीं होता इसलिए ना बच्चों का पेट ही नहीं भर पाती। वह बताती है कि दिन भर में वह प्याज के साथ रोटी ही खाती है। उसके परिवार के भोजन में दाल या सब्जी होती ही नहीं क्योंकि वे यह सब खरीद ही नहीं सकते। वह और उसका पति रोज लगभग 20 रुपए कमाते हैं। कई दिन दोनों में से किसी को काम नहीं मिलता। फिर जब उसको तीसरी दफे बच्चा हुआ तो उसकी आंखों की रोशनी जाने लगी जो मुख्यत: विटामिन ए की कमी के चलते होता है। गंगा और जमुना जैसी बच्चियों की मौत इस जिले के लिए कोई नई बात नहीं है।

दिल्ली दाखा और उसके पति सहरिया आदिवासी है। 'सेहरा या सैर' से सहरिया बना है और उनका दावा है कि वे मुल्क के सभी आदिवासियों में सबसे पुराने हैं। पीढ़ियों तक उनका जीवन जंगलों पर ही आश्रित था और वे बहुत कम चीजों से गुजर बसर करते थे। खेती, जंगली फल-फूल लकड़ी-पत्ता चुनने और शिकार करके वे अपना जीवन चलाते थे। पर जंगल से निकालने के बाद से उनका जीवन आसान नहीं रह गया है।

घोर दरिद्रता, जीविका के संसाधनों के अभाव और सरकारी नीतियों की उपेक्षा की सबसे बुरी मार सहरिया बच्चे झेलते हैं। जबलपुर स्थित क्षेत्रीय आदिवासी स्वास्थ्य अनुसंधान केंद्र के अनुसार सहरिया बच्चों में शिशु मृत्यु दर प्रति हजार जन्म पर 88 है। 93.5 सहरिया बच्चे कुपोषित हैं। सहरिया लोगों की औसत उम्र सिर्फ 45 वर्ष है। 74.3 फीसदी सहरिया बच्चे सामान्य से कम वजन के हैं जबकि 75.4 फीसदी सामान्य से कम ऊंचाई के। राज्य सरकार के बाल संजीवन अभियान (8वीं रिपोर्ट) के आंकड़ों के अनुसार 0-6 उम्र के 58 फीसदी बच्चे कुपोषण का शिकार है। सहरिया औरतों की स्थिति भी उनकी तरह है और दोनों के स्वास्थ्य को अलग नहीं माना जा सकता। करीब 86. फीसदी सहरयिा औरतें रक्तल्पता का शिकार हैं क्योंकि उन्हें उचित और पोषक आहार उपलब्ध नहीं है। सहरिया हमारे पूरे देश के सबसे दरिद्र और वंचित समुदायों में एक है।

मध्यप्रदेश के सहिरया पिछले दिनों कई कारणों से खबरों में रहे हैं। शिवपुर जिले के कड़हल प्रखंड का पातालगढ़ गांव फरवरी 2005 से 13 निर्दोष बच्चों की मौत को लेकर खबरों में रहा है। यह गांव जिला मुख्यालय से 70 किमी और प्रखंड मुख्यालय से 65 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां तक पंहुचने के लिए आपको घने जंगल और कच्ची तथा उबड़-खाबड़ सड़क से होकर जाना पड़ेगा। इस गांव की अवस्थिति भी बहुत अजीब है। और एकदम बुनियादी संरचनात्मक चीजें भी अनुपलब्ध है। जैसे सबसे पास का अस्पताल 5 किलोमीटर दूर है। यहां पंहुचना बहुत मुश्किल है सो आंगनवाड़ी के कामकाज को चलाने और दोपहर का भोजन देने जैसी योजनाओं को चलाना बहुत मुश्किल है। पहले पातालगढ़ गांव में आंगनवाड़ी नहीं थी और हीरापुर गांव में आंगनवाड़ी चलती थी जो यहां से 17 किलोमीटर दूर है। मिथिलेश ही यहां के सारे काम देखती है और केंद्र में 70 बच्चों का पंजीकरण हुआ है। पर फरवरी 2006 से इन बच्चों को न तो कोई भोजन मिला है ना पूरक पोषाहार। एक बहुद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता भी है पर वह महीने में सिर्फ एक बार ही यहां आ पाता है क्योंकि उसके जिम्मे तीन और पंचायतें भी है। उसके जिम्मे जन्म-मरण का पंजीकरण भी है और ऐसी स्थिति में वह अपनी कई जिम्मेवारियों को ठीक से पूरा नहीं कर पाता। इसी चलते सरकार मौत की खबरों का खंडन ही करती है। अधिकांश नवजात जन्म लेने के एक महीने के अंदर ही मर जाते हैं सो न तो उनके जन्म का पंजीकरण हो पाता है न मरने का।

हाल में भोजन अधिकार अभियान ने सुप्रीम कोर्ट के आयुक्तों से मध्य प्रदेश में संयुक्त जांच की मांग की। राज्य सरकार भी उस पर सहमत हुई और जांच आयोग ने शिवपुर में कुपोषण से हुई मौतों की पुष्टि की और सहरिया आदिवासियों को 'दुनिया में कुपोषण का सबसे बड़ा अड्‌डा' घोषित किया। आयोग ने पाया कि शासन तो पूरी तरह असफल है ही राज्य सरकार को सहरिया लोगों को बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराने का होश भी नहीं है।

मध्य प्रदेश में भोजन अधिकार अभियान ने सुप्रीम कोर्ट में चल रहे मुकदमें में एक अंतरिम आवेदन भी दिए और बच्चों की मौत के लिए राज्य सरकार को ज्यादा जवाबदेही बनाने की मांग की है।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए दखल को छोड़ दें तो पातालगढ़ की कहानी एकदम अलग है। इस गांव में ठीक ठाक काम करने वाली आगनवाड़ी है, सहायक नर्स है और सार्वजनिक वितरण प्रणाली का ट्रैक्टर महीनें में एक बार पास के गांव से अनाज ला देता है। सुप्रीम कोर्ट के पिछले आदेश के समक्ष लोगों को अस्थायी राशनकार्ड बंटे थे जिससे उनके लिए राशन लेना सुगम हो गया। ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत सड़क भी बन रही है और मजदूरों को 61.37 रुपए की दैनिक मजदूरी भी मिल रही है।

वैसे ऊंची पातालगढ़ पर राज्य सरकार की नजर है, उपर उसकी तरह के अन्य गांवों में कुछ खास नहीं हुआ है। वहां प्रशासन की उपेक्षा के चलते निर्दोष और भोले बच्चों का मरना जारी है। हर गर्मी में गंगा और जमुना जैसी न जाने कितनी बच्चियां और बच्चे मरते हैं पर वे अखबारों की सुर्खियों में नहीं आ पाते क्योंकि उन्हें प्रमोद महाजनों और अमिताभ बच्चनों की बीमारी की चिंता करनी है।

सहयोग – रोली शिवहरे

भारत और दक्षिण एशिया के देशों के आंकड़ों का अंतर और भी ज्यादा बड़ा लगने लगेगा। इसका कारण यह है कि भारत में आंतरिक असमानताएं और भी ज्यादा है। दक्षिण एशिया के अन्य देशों में इतनी आंतरिक असमानताएं नहीं हैं – सिर्फ क्षेत्रीय मामलों में ही नहीं सामाजिक-आर्थिक स्तर पर भी। मध्य प्रदेश के सहरिया या बिहार के मुसहरों जैसे समुदायों जितनी बदहाली में दक्षिण एशिया के किसी अन्य देश का कोई समूह रहता होगा इस बात में शक ही है। और यह बात भी नजरंदाज नहीं करनी चाहिए कि मुसहरों की आबादी करीब 25 लाख है जो भूटान या नवीनतम मानव विकास रिपोर्ट में आए 177 देशों में से 45 की आबादी से ज़्यादा बड़ी संख्या है।

संक्षेप में कहें तो अगर हम अपने आस-पड़ोस पर नज़र डालें तो बाल कल्याण के क्षेत्र में बेहतर कर सकते हैं। दक्षिण एशिया ज़्यादा उपयोगी आइना है, जिसके बरक्स भारत अपनी तस्वीर को ज़्यादा अच्छी तरह से देख-समझ सकता है, कथित महाशक्ति बनने की महत्वाकांक्षा को थोड़ा लगाम देकर बच्चों की बदहाली दूर करने पर ध्यान दे सकता है। दक्षिण एशियाई देशों की हाल की उपलब्धियों और पहलों से भी हम अनेक सकारात्मक सबक ले सकते हैं। और जब भारत ऊंचे अंतर्राष्ट्रीय दर्जे की भागादौड़ी में लगा है तो बाल विकास के मामले में बांग्लादेश की बराबरी पर आना एक अच्छी शुरुआत हो सकती है।

2.4 क्षेत्रीय विरोधाभास

राष्ट्रीय औसत अक्सर विभिन्न क्षेत्रों और सामाजिक, आर्थिक समूहों के बीच की प्रमुख असमानताओं को छुपा लेते हैं। और यह बात भारत जैसे मुल्कों पर खास तौर से लागू होती है, जहां ऐसी असमानताएं काफी हैं। जैसे दूसरे राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण में टीकाकरण का उदाहरण ही लें। अगर कोई बच्चा तमिलनाडु में पैदा होता है तो इस बात की 90 फीसदी संभावना है कि एक साल का होने तक उसे सभी टीके लग जाएंगे (अगर वह अच्छे घर में पैदा हुआ तब तो शत प्रतिशत)। पर भारत में पूर्ण टीकाकरण का राष्ट्रीय औसत सिर्फ 42 फीसदी है। अनुसूचित जनजाति से बच्चों के मामले में औसत 26 फीसदी और बिहारी बच्चों में तो यह मात्र 11 फीसदी है। जब विभिन्न किस्म की कमज़ोरियों और वंचनाओं का समूह जुड़ता है तब टीकाकरण का स्तर एकदम नीचे चला जाता (गरीब, दलित और लड़की होने जैसी वंचनाएं को मारक ही बन जाती हैं) जैसे बिहार/राजस्थान के अनुसूचित जाति के बच्चों में सिर्फ चार फीसदी को ही पूर्ण टीकाकरण नसीब हो पाता है। दरअसल इस में से काफी बच्चों (38 फीसदी) को कोई भी टीका लगता ही नहीं है। बाल विकास के अन्य मामलों में भी इसी तरह की हैरान करने वाली असमानताएं दिखाई देती हैं।

चार्ट 2.5 में क्षेत्रीय असमानताओं को और भी विस्तार से दिखाया गया है। यह चार्ट बाल कल्याण के चार पहलुओं : जीवित बचना, टीकाकरण, पोषक खुराक और स्कूली पढ़ाई पर गौर करता है। इन सबके लिए मानक संकेतकों का चुनाव किया गया है (अन्य संकेतकों का चुनाव भी किया जा सकता था पर वे हमारे ज़्यादा मतलब के न थे)। हर संकेतक को प्रतिशत के आधार पर मापा गया है और इसकी व्याख्या किसी खास लक्ष्य को हासिल कर लेने की 'संभावना' के रूप में की जा सकती है: पांच वर्ष की उम्र तक जीवित बचना, पूर्ण टीकाकरण, पर्याप्त पोषक आहार और स्कूलों में दाखिला जैसे मामले इसमें हैं। आखिरी स्तंभ में हमने बाल विकास के इन चार संकेतकों के आधार पर एक साधारण निष्कर्ष वाला 'सूचकांक' दिया है। विभिन्न उपलब्धियों का इस सूचकांक में काफी महत्व है, और इसे ही बताने के लिए हमने इसे 'शिशु और बाल उपलब्धि – '*एचीवमेंट्स आफ बेबीज ऐंड चिल्ड्रेंस*' (एबीसी) सूचकांक नाम दिया है।

इस सूचकांक की व्याख्या करते हुए यह बात याद रखना उपयोगी होगा कि हम भारतीय बच्चों की बुनियादी उपलब्धियों पर ही बात केंद्रित कर रहे हैं। किसी भी अच्छे समाज में हम चाहेंगे कि पैदा होने वाला हर शिशु आराम से पांच वर्ष की आयु पार कर ले, उसे सारे रोगरोधी टीके लग जाएं, उसे अच्छा पोषक आहार और डाक्टरी देखरेख मिले तथा वह स्कूल जाए। ऐसी सूरत में यह 'एबीसी' सूचकांक 100 अंक के करीब होगा - अर्थात पूर्णांक के करीब। पर जैसा कि चार्ट 2.5 से ज़ाहिर होता है यह आदर्श स्थिति भारत में कहीं भी दिखाई नहीं देती, केरल में भी नहीं जो इन मामलों में सबसे आगे है। इस पैमाने पर नीचे वह चार राज्य – बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश – आते हैं, जिन्हें कई बार 'बीमारू' प्रदेश भी कहा जाता है। मोटे तौर पर इन चारों राज्यों का औसत बच्चा इन चारों बुनियादी लक्ष्यों से औसत उपलब्धि के आधे तक ही पहुँचता है।

संभवत: आप इस बात पर हैरान नहीं होंगे कि इस सूची में केरल सबसे ऊपर है क्योंकि स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में केरल की उपलब्धियां जगज़ाहिर हैं और उसका अपना एक इतिहास रहा है। पर यह बात उल्लेखनीय है कि केरल अब बाकी राज्यों से 'बहुत आगे' नहीं है, जैसाकि वह पहले था। इतना ही नहीं जो राज्य केरल को पकड़ते लगते हैं वे सिर्फ आर्थिक रूप से तेज़ विकास करने वाले राज्य ही नहीं है। अगर आर्थिक विकास और बाल कल्याण में ऐसा सीधा संबंध होता तो पंजाब और हरियाण काफी राज्यों से आगे

रहते, लेकिन 'एबीसी' सूचकांक में पंजाब चौथे और हरियाणा छठे स्थान पर है। तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश इन दोनों से आगे निकल गए हैं, और बाल विकास के मामले में ये लगभग केरल जैसी स्थिति में आ गए हैं।

यहां हम इस क्षेत्र में सार्वजनिक सक्रियता की एक बड़ी भूमिका देखते हैं। निश्चित रूप से तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश ने अपने सभी नागरिकों को अच्छा स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा व्यवस्था उपलब्ध कराने की दिशा में दमदार कदम उठाए हैं। हिमाचल प्रदेश में पिछले कुछ दशकों में 'स्कूली क्रांति' हुई है। अभी हाल तक हिमाचल को शिक्षा के मामले में पिछड़ा माना जाता था पर अब इसने तेज़ी से विकास किया है और यह केरल के करीब पंहुच गया है। ऐसा राज्य में प्राथमिक शिक्षा पर सरकारी ज़ोर से संभव हुआ है। 1998-99 में हिमाचल के 6-14 वर्ष आयु वर्ग के क्रमशः 99 फीसदी लड़के और 97 फीसदी लड़कियां स्कूलों में जा रही थीं, जबकि केरल में दोनों के मामले में यह औसत 97 फीसदी का था। इस स्कूली क्रांति और साथ चलते अन्य सामाजिक कार्यक्रमों ने न सिर्फ शैक्षिक स्तर में तेज़ सुधार किया है बल्कि स्वास्थ्य और पोषण के क्षेत्रों में भी तेज़ विकास ला दिया है। 'एबीसी' सूचकांक में हिमाचल की ऊंची स्थिति यह बताती है कि सार्वजनिक दखल और नीतियों से किस तरह तेज़

चार्ट : 2.5. बाल विकास में क्षेत्रीय तुलना 1998-99

राज्य	चुने हुए बाल विकास संकेतक[a]				"एबीसी सूचकांक पर उलपब्धि"
	जीवित बचने की दर (पांच वर्ष की उम्र पूरी करने वाली बच्चों का	टीकाकरण (सभी टीके लगवा चुके बच्चों का प्रतिशत)	पोषण (सामान्य या वजन के बच्चों का प्रतिशत)	पढ़ाई (स्कूल जाने वाले बच्चों का प्रतिशत)	
केरला	98.1	80	73	97	87.0
तमिलनाडु	93.7	89	63	92	84.4
हिमाचल प्रदेश	95.8	83	56	98	83.2
पंजाब	92.8	72	71	91	81.7
महाराष्ट्र	94.2	78	50	93	78.8
हरियाणा	92.3	63	65	89	77.3
जम्मू एवं कश्मीर	92.0	57	66	84	74.8
कर्नाटक	93.0	60	56	80	72.3
आन्ध्र प्रदेश	91.6	59	62	76	72.2
गुजरात	91.5	53	55	78	69.4
पश्चिम बंगाल	93.2	44	51	87	68.8
भारत	90.5	42	53	79	66.1
उड़ीसा	89.6	44	46	79	64.7
असम	91.1	17	64	77	62.3
उत्तर प्रदेश [b]	87.8	21	48	77	58.5
राजस्थान	88.5	17	49	76	57.6
मध्य प्रदेश [b]	86.2	22	45	76	57.3
बिहार [b]	89.5	11	46	63	52.4

[a] उम्र वर्ग : टीकाकरण के लिए 12-13 महीना; पोषण के लिए 'तीन वर्ष से कम' पढ़ाई के लिए 6-14.

[b] अविभाजित (जैसे बिहार में झारखंड का आंकड़ा भी)

टिप्पणी : एबीसी सूचकांक चार संकेतकों को उनके महत्व क्रम को नजरअंदाज करके औसत आधार पर बनता है। (विस्तार के लिए सूचकांक देखें)

बाक्स 2.4. हिमाचल प्रदेश में स्कूली क्रांति

हिमाचल प्रदेश में दूर दराज के इलाकों की जो चीज सबसे मोहक लगती है वह है स्कूल आते-जाते लड़के-लड़कियों के झुंड। कोई भी नया आदमी शैक्षिक गतिविधियों की चहल पहल से अनजान नहीं रह सकता – खासकर घने जंगली और पहाड़ी इलाकों में जहां आपको इस तरह की गतिविधियों की उम्मीद नहीं होती। इस सभी जगहों पर न सिर्फ स्कूल है बल्कि पूरी उर्जा से चल रहे हैं। खस्ताहाल भवनों में भी चलने वाले स्कूलों में पठन-पाठन का काम जिस लगन से होता है वह प्रेरक है। बैठने की दरी फटी हो या ब्लैकबोर्ड टूटा हो, इसका भी खास फर्क नहीं पड़ता क्योंकि छात्र और अध्यापक अपने-अपने काम में जुटे रहते हैं। अब यह कोई आदर्श स्थिति नहीं है पर बाकी जगहों का हाल देखते हुए यह देखना सुखद लगता है कि अध्यापक गायब रहने की जगह वक्त पर कक्षा में आ जाते हैं और बच्चे पांत लगाकर बैठे अपनी स्लेट और किताबों से नई-नई चीजें सीखने की जद्दोजहद कर रहे होते हैं।

आजादी के बाद हुई 1951 की पहली जनगणना में हिमाचल प्रदेश के इलाकों में साक्षरता दर मात्र 19 फीसदी थी। 2001 तक यह आंकड़ा 77 फीसदी तक पंहुच गया था जिसमें पुरुषों में साक्षरता की दर 86 फीसदी और औरतों में 68 फीसदी थी। 15-19 वर्ष की उम्र समूह में लड़कियों में साक्षरता की दर 95 फीसदी और लड़कों में 97 फीसदी थी। यह आंकड़ा सिर्फ केरल से कम है जहां लड़कियों में 98 फीसदी और लड़कों में 99 फीसदी साक्षरता है। पर स्कूलों की उपस्थिति के मामले में (6-12 वर्ष के बच्चों में) हिमाचल देश भर में सबसे आगे है। जाति और लिंग के पैमानों से भी उसकी उपलब्धियां शानदार हैं। 7-15 वर्ष के आयु वर्ग में सिर्फ साक्षरता की दर ही ऊंची नहीं है लैंगिक अंतर(लड़कों की साक्षरता 96 फीसदी है तो लड़कियों की 94 फीसदी) और जातिगत फासले (दलित लड़कियों की साक्षरता 92 फीसदी है तो दलित लड़कों की 95 फीसदी) काफी कम हो चुके हैं।

हिमाचल प्रदेश के कुल्लु जिले में सर्वेक्षण के मेरे काम की कुछ अद्भुद स्मृतियां मेरे मानस में है। नगर शहर के एक व्यक्ति टिप्पणी गुदगुदाती भी है और राज्य की स्थिति को भी बताती है। जब उनसे राज्य में बच्चों की स्थिति के बारे में पूछा गया तो उसका जवाब था, "बच्चे तो साझे होते हैं – वो हमारे तुम्हारे नहीं होते। उनकी जिम्मेवारी हम सब ही की होती है।

बच्चों के संदर्भ में हिमाचल का रिकार्ड देखने पर स्पष्ट होता है कि काफी लोग इस धारणा से सहमत हैं। यह चीज सिर्फ स्कूली शिक्षा के आंकड़ों से ही नहीं स्वास्थ्य संबंधी उपलब्धियों से भी जाहिर होती है। दूसरे राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार हिमाचल में शिशु मृत्यु दर 34.4, बाल मृत्यु दर 8.3 ओर पांच से कम उम्र के सभी बच्चों की मृत्युदर 8.3 और पांच से कम उम्र के सभी बच्चों की मृत्यु दर 42.4 थी। ये आंकड़े अखिल भारतीय औसत से काफी नीचे है। और सिर्फ केरल ही हिमाचल से आगे है। टीकाकरण के आंकड़े भी इतने ही प्रभावशाली हैं। 12.23 माह में 83.4 फीसदी बच्चों को सारे टीके लगे थे (तमिलनाडु भी उससे आगे है जहां आकड़ा 88 फीसदी है) वहीं सिर्फ को टीका न पाने वाले बच्चों का अनुपात मात्र 2. 8 फीसदी था (इस मामले में तमिलनाडु (0. 3 फीसदी) और केरल (2.2फीसदी) का रिकार्ड ही उससे बेहतर था)। हिमाचल में सामाजिक या क्षेत्रीय आधार ज्यादा अंतर न था। अगर पूर्ण टीकाकरण वाले गैर दलित बच्चों का अनुपात 82.9 फीसदी था तो दलित बच्चों में यह अनुपात 82.5 फीसदी का था। पर कोई टीका न पाने वाले सामान्य बच्चों का अनुपात अगर 2.7 फीसदी था तो दलित बच्चों में मात्र 1.8 फीसदी ही टीकों से पूरी तरह छूट पाए थे। हिमाचल की स्कूल क्रांति सरकारी सक्रियता और सामाजिक एकता द्वारा एक दूसरे की मदद करने का उदाहरण भी है। हिमाचल समाज में जातिगत भेदभाव ज्यादा नहीं हैं इससे प्राथमिक शिक्षा को सबके लिए उपलब्ध कराने में मदद मिली है; स्कूलों के लिए एक तरह के सामाजिक कायदे अपनाना आसान हुआ है; छात्रों और अध्यापकों के बीच ज्यादा फासला नहीं रह गया है और स्कूल प्रणाली में सामुदायिक भागीदारी का रास्ता आसान हुआ है।

पर हिमाचल में स्कूली क्रांति मुख्यतः सरकारी पहल का ही नतीजा है। वहां भारत में अन्य इलाकों की तरह अलग-अलग तरह के स्कूल न होकर मुख्यतः एक ही तरह के स्कूल हैं इसमें प्राथमिक शिक्षा में जाति और लिंग आधारित पक्षपात नहीं हो पाता, सबको शिक्षा का बुनियादी अवसर मिलता है।

सहयोग– किरण भट्टी

सामाजिक विकास हासिल किया जा सकता है।

तमिलनाडु पर भी यही बातें लागू होती हैं। प्राथमिक शिक्षा के मामले में तमिलनाडु ने हिमाचल जैसी उल्लेखनीय सफलताएं नहीं पाई हैं, पर स्वास्थ्य और पोषण सेवाओं में सरकारी स्तर के प्रयासों से कैसी सफलताएं पाई जा सकती हैं, तमिलनाडु इसका उदाहरण है। जैसे, इसने दोपहर को स्कूलों में पका भोजन देने की व्यवस्था सबसे पहले 1982 में ही की थी। इससे बीस वर्ष बाद जब सुप्रीम कोर्ट में अन्य राज्यों को भी ऐसा करने का निर्देश दिया तब जाकर उनके यहाँ कार्यक्रम शुरू हुआ। जैसाकि हम इस रिपोर्ट में आगे देखेंगे तमिलनाडु में आंगनवाड़ियों का भी बहुत ही अच्छा नेटवर्क बना हुआ है और तमिलनाडु के बच्चों की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है

तो यह न तो कोई संयोग मात्र है, ना ही यह राज्य की बहुत तेज़ आर्थिक प्रगति का नतीजा है, यह सिर्फ बच्चों को उनके संवैधानिक 'अधिकारों, अवसरों और सुविधाओं' को उपलब्ध कराने के लिए सचेत प्रयासों का नतीजा है। इसपर हम आगे अध्याय में चर्चा करेंगे।

और इस सूची के दूसरे छोर पर मौजूद बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश का बाल विकास के पैमानों पर घटिया प्रदर्शन यही बताता है कि इन प्रदेशों में बच्चों की उपेक्षा का लंबा इतिहास रहा है और वहां के राजनैतिक और सामाजिक एजेंडे में भी बाल कल्याण को कोई जगह नहीं है। पर दिलचस्प बात यह है कि इन राज्यों से हाल में निकले छोटे राज्यों (झारखंड, उत्तराखंड और छत्तीसगढ़) में इधर बदलाव के संकेत दिखने लगे हैं। जैसे छत्तीसगढ़ ने पिछले दिनों कल्याण पूर्ण सामुदायिक विकास कार्यक्रम 'मितानिन' शुरू किया, *राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण* के हाल के दौर के आंकड़े हों या तीसरे *राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य* केंद्र के आंकड़े यही बताते हैं कि इस कार्यक्रम का बाल विकास पर काफी अच्छा असर पड़ रहा है (देखें अध्याय 5)। पर इन राज्यों के बच्चों के अधिकारों और कल्याण भी चिंता का सामान्य स्तर काफी नीचा है।

3. एकीकृत बाल विकास सेवाएं 'हक' बनें

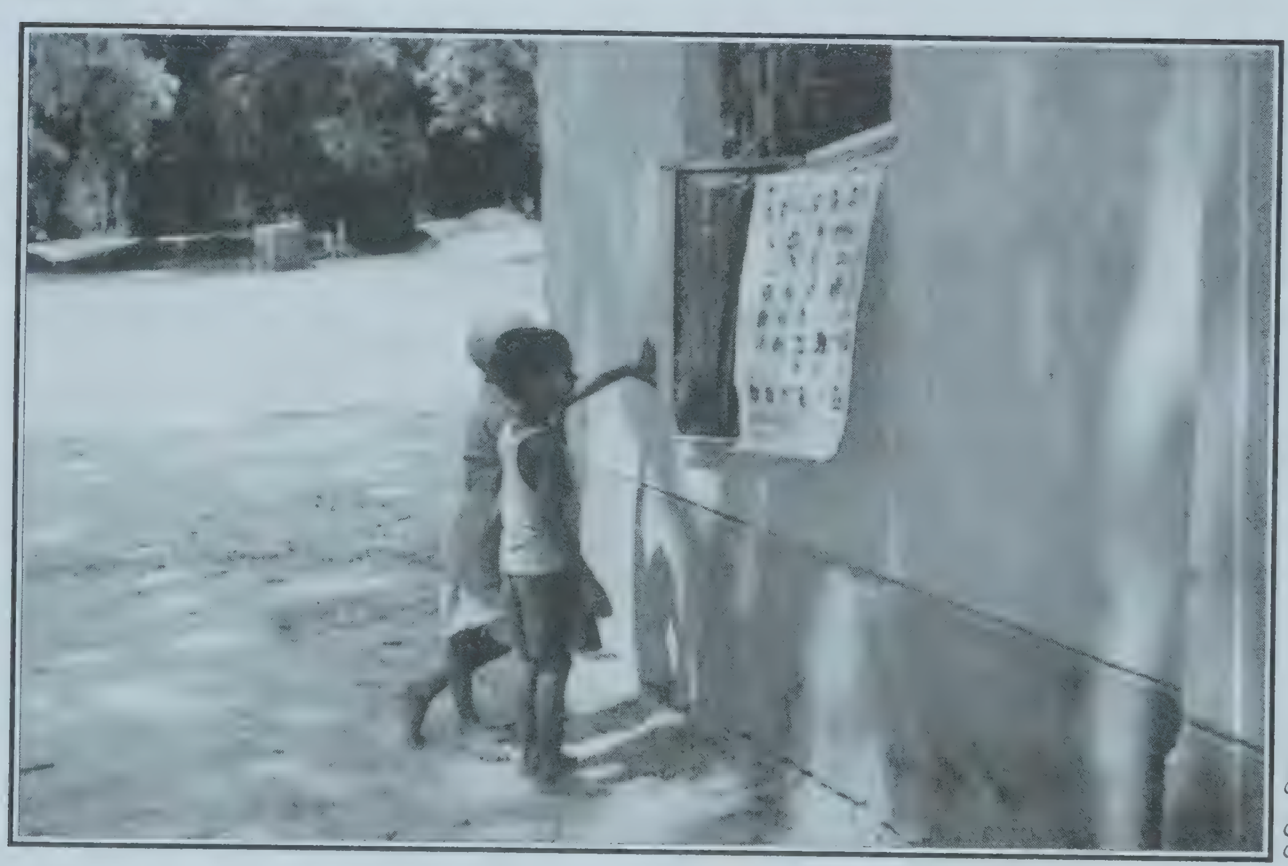

निधि विज

आपने शायद ध्यान दिया होगा कि आपके पास पड़ोस में किसी बहुत ही सामान्य से घर या जगह पर रोज़ सुबह काफी सारे बच्चे कुछ घंटों के लिए जमा होते हैं। आप किस जगह पर रहते हैं, उसी के आधार पर हो सकता है कि यह जगह एकदम खस्ताहाल मकान का छत भर हो, जहाँ कोई जीवंतता नहीं दिखती हो (सिर्फ दलिया या खिचड़ी बंटने वाले थोड़े से वक्त के अलावा) या फिर यह खूबसूरत जगह हो जहाँ बड़े धमा चौकड़ी मचाते हैं, खेल खेलते हैं, गाने गाते हैं, गिनती सिखाते हैं और अच्छा पोषक आहार खाते हैं। बहुत सम्भव है कि आपने इस पर ध्यान ही नहीं दिया हो या कभी यह भी सोचा हो कि आप भी इस जगह और यहां के कामकाज को थोड़ा बेहतर बनाने में कोई भूमिका निभा सकती है। अच्छा आंगनवाड़ी शिशुओं के जीवन में एकदम बड़ा बदलाव ला सकता है। जिस तरह से 6 से 14 वर्ष के आयुवर्ग के बच्चों के लिए स्कूलों का उपयोग हो सकता (सिर्फ शिक्षा ही नहीं, खेलकूद और

बच्चों के स्वास्थ्य की जांच के लिए भी) है। उसी तरह आंगनवाड़ी भी छह वर्ष तक के बच्चों के अधिकारों की रक्षा और संवर्द्धन के लिए महत्वपूर्ण संस्थागत मदद दे सकता। और इसी बात से यह चीज निकलती है कि असल में आंगनवाड़ियों को भारतीय बच्चों का एक बुनियादी हक मानना चाहिए और हर बच्चे की पहुँच आंगनवाड़ी तक होनी चाहिए। एकीकृत बाल विकास सेवाओं को अधिकार वाले नजरिए से देखने–समझने की भरी बुनियादी धारणा है।

3.1 एकीकृत बाल विकास सेवाएं : शुरुआती सोच

छह वर्ष से कम आयु के बच्चों की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने वाला एक मात्र प्रमुख राष्ट्रीय योजना है, एकीकृत बाल विकास सेवाएं। यह नन्हें बच्चों को अनुपूरक पोषक आहार, स्वास्थ्य की देखरेख और स्कूल पूर्व की शिक्षा वगैरह उपलब्ध कराने की एकीकृत योजना है। चूंकि किसी बच्चे के स्वास्थ्य और पोषण संबंधी सारी ज़रूरतें अकेली माँ अपने बल से पूरी नहीं कर सकती, इसलिए इस योजना के दायरे में किशोरियों, गर्भवती औरतों और लरकोरी महिलाओं को भी शामिल किया गया है।

एकीकृत बाल विकास सेवाएं के पीछे की सोच को समझने के लिए 1974 राष्ट्रीय बाल नीति पर गौर करना ज़रूरी होगा। इस नीति में यह स्वीकार किया गया था कि भारत के अधिकांश बच्चे बदहाल आर्थिक, सामाजिक और पारिस्थितिक स्थितियों में रहते हैं, और इससे उनके शारीरिक और मानसिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जब इस बात के प्रमाण आते गए कि विकास की सामान्य योजनाओं का लाभ बच्चों तक पंहुच ही नहीं पाता, या इनसे उस माहौल को बदलने या विकसित करने में अनिवार्यतः मदद नहीं मिलती, जिनमें बच्चे रहते और बड़े होते हैं, तब लक्षित ढंग से प्रयास करने पर ज़ोर दिया जाने लगा। इस एहसास के बाद बाल केंद्रित विशेष प्रयासों की ज़रूरत महसूस की गई जिससे बच्चों की परस्पर जुड़ी जरूरतें पूरी की जा सकें। इसी भावना से 1975 में सरकार ने एक परियोजना के तौर पर *एकीकृत बाल विकास सेवाएं* की शुरुआत की।

सरकारी दिशा–निर्देशों के अनुसार एकीकृत बाल विकास सेवाओं के बुनियादी उद्देश्य ये हैं :

1. छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण के स्तर में सुधार करना।
2. बच्चों के उचित शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास का आधार तैयार करना।
3. शिशु मृत्यु दर, रुग्णता, कुपोषण और स्कूली पढ़ाई छोड़ने की दर में कमी लाना।
4. बाल विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विचारों की नीतियों और कार्यक्रमों में समन्वय करना।
5. उचित सामुदायिक शिक्षा के सहारे माताओं को अपने शिशु के स्वास्थ्य, पोषण और विकास की सामान्य ज़रूरतों के बारे में जानकारी देना।

एकीकृत बाल विकास सेवाएं आंगनवाड़ियों के ज़रिए उपलब्ध कराई जाती हैं। इन आंगनवाड़ी केंद्रों का संचालन वेतन भोगी कार्यकर्ता और सहायिका करती हैं। आम तौर पर प्रत्येक आंगनवाड़ी से करीब एक हज़ार आबादी अर्थात 200 परिवारों पर होती है। यही आंगनवाड़ियां एकीकृत बाल विकास सेवाओं का आधार हैं।

एकीकृत बाल विकास सेवाओं के तहत जो बुनियादी सेवाएं आती हैं, वे मोटे तौर पर तीन वर्ग की हैं: पोषण, स्वास्थ्य और स्कूल पूर्व की शिक्षा। पोषण में पूरक आहार, शिशु विकास की निगरानी और पोषाहार तथा स्वास्थ्य परामर्श आता है। स्वास्थ्य सेवाओं में टीकाकरण, बुनियादी स्वास्थ्य की देखरेख और मुश्किल मामलों की पहचान करने उन्हें बड़े अस्पतालों में भेजना आता है। स्कूल पूर्व की शिक्षा में बच्चों के ज्ञान, कौतूहल और शुरुआती रुझानों को समझ कर उन्हें बढ़ावा देना शामिल है। और ब्यौरे बाक्स 3.1 में दिए गए हैं।

एकीकृत बाल विकास सेवा एक जटिल कार्यक्रम है और इसमें काफी सारे लोगों की अलग–अलग भूमिका है। वैसे तो यह केंद्र द्वारा प्रायोजित योजना है पर इसे लागू करने का ज़िम्मा राज्य सरकारों के ऊपर है। जमीनी स्तर पर इसमें सबसे बड़ी भूमिका आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की होती है, जो आंगनवाड़ी के प्रबंधन की अकेली जिम्मेदार होने के चलते कई तरह की भूमिकाएं निभाती है। जो महिला कार्यकर्ता सभी मोर्चों पर सक्रिय है, वह सही अर्थों में बहादुर है। पर उनकी कार्य कुशलता और सफलता भी कई लोगों से मिलने वाली मदद और समर्थन पर निर्भर करती है जिसमें आंगनवाड़ी सहायिका, नर्स या मिडवाइफ, सुपरवाइजर, बाल विकास परियोजना अधिकारी और इन सबसे बढ़कर गांव या मुहल्ले के लोग। इन विभिन्न लोगों की भूमिका और अधिकार के और ब्यौरे बाक्स 3.2 में दिए गए हैं।

बाक्स 3.1. बुनियादी एकीकृत बाल विकास सेवाएं

जैसाकि नाम से जाहिर है एकीकृत बाल विकास सेवा योजना छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों को उपलब्ध कराई जाने वाली कुछ 'एकीकृत सेवाओं' का पैकेज है। इसके अंतर्गत उपलब्ध प्रमुख सेवाएं इस प्रकार हैं :

अ. पोषण

1. पूरक पोषाहार : हर राज्य में पौष्टिकता वाली चीजों का अंतर है पर आंगनवाड़ी में बने गरम आहार में प्रायः दालें, चावल/गेहूं, तेल, सब्जियां, चीनी, आयोडीन वाला नमक वगैरह होता है। कई बार तीन वर्ष से कम आयु के बच्चों को घर ले जाने वाला आहार भी दिया जाता है।

2. बच्चों के विकास की निगरानी और सहायता : तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों का महीने में एक बार वजन लिया जाता है। जिससे उसके स्वास्थ्य और पोषण पर नजर रखी जा सके। बड़े बच्चों का वजन हर तीन महीने में लिया जाता है। विकास में असमान्यता जानने के लिए बच्चों का 'ग्रोथ चार्ट' बनाया जाता है।

3. स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा : इसका उद्देश्य 15.45 वर्ष की लड़कियों/महिलाओं को उनकी स्वास्थ्य, सफाई और पोषण संबंधी जरूरतों को समझने में मदद करना है। प्रशिक्षित दाई/नर्सों द्वारा घर-घर जाकर, महिलाओं की छोटी टोलियों को बैठकर और कुछ चीजों के प्रयोग का तरीका बताकर इस बारे में जानकारियां दी जाती है। इनमें नवजात शिशुओं को स्तनपान कराना, आहार देना, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग और सफाई के बारे में जानकारियां दी जाती है।

ब. स्वास्थ्य

4. टीकाकरण : छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों के पोलियो, डिप्थीरिया, टेटनेस और पर्टिसुम-डीपीटी, खसरा और टीवी का टीका दिया जाता है जबकि गर्भवती औरतों को टेटनेस का टीका दिया जाता है। टीके देना स्वास्थ्य विभाग और एकीकृत बाल विकास सेवा योजना, दोनों की साझा जिम्मेवारी है। रिकार्ड रखने, मां-बाप को प्रेरित करने और टीकाकरण में स्वास्थ्यकर्मियों (मुख्यतः सहायक नर्स) की मदद करना आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की मुख्य जिम्मेवारी है।

5. स्वास्थ्य सेवाएं : छह वर्ष से कम आयु के बच्चों का चेकअप, गर्भवती महिलाओं की प्रसव पूर्व देखरेख, लरकोरी औरतों की देखरेख, बच्चों के स्वास्थ्य का रिकार्ड रखना, अल्पपोषण पर ध्यान देना और छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता के माध्यम से कराने की योजना।

6. गंभीर परेशानियों में मदद : बीमार या अल्प पोषित बच्चों के साथ-साथ विक्लांगता के शिकार बच्चों की सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली से मदद कराना भी इस योजना का हिस्सा है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ऐसे मामलों को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के डाक्टर के पास भेजती है।

स. स्कूल- पूर्व शिक्षा

7. स्कूल पूर्व शिक्षा : इस योजना का उद्देश्य 3-6 वर्ष की उम्र के बच्चों को सीखने लायक वातावरण उपलब्ध कराना है। बच्चों में सामाजिक, भावनात्मक, कलात्मक, शारीरिक और संज्ञान वाली चेतना को खेल-खेल में बढ़ाना तथा प्राथमिक स्कूल की पढाई के लिए तैयार करना इस योजना का उद्देश्य है।

1975 में शुरुआत करने के बाद से एकीकृत बाल विकास सेवाओं का दायरा धीरे-धीरे बढ़ता गया है। आज यह योजना देश के लगभग सभी प्रखंडों में लागू है और देश में 7 लाख से ज्यादा आंगन वाड़ियां हैं। पर एकीकृत बाल विकास सेवाओं का प्रभावी कवरेज अभी भी काफी सीमित है : छह वर्ष से कम आयु वर्ग के सिर्फ एक चौथाई बच्चे ही अभी पूरक पोषण आहार कार्यक्रम के दायरे में आ पाए हैं। सबको टीकाकरण उपलब्ध कराना अभी सपना ही बना हुआ है और स्तरीय सेवाएं देना तो बहुत दूर की चीज़ लगती है।

3.2 वित्तीय आवंटन*

जैसाकि हमने अध्याय एक में देखा था, भारत की सार्वजनिक नीतियों और लोकतांत्रिक राजनीति में बच्चों के कल्याण और अधिकारों पर खास ध्यान नहीं दिया जाता, और इस स्थिति का एक पक्का प्रमाण सार्वजनिक खर्च के एक बहुत ही छोटे हिस्से को बच्चों से संबंधित कार्यक्रमों पर लगाना है। हाल के एक अनुमान के अनुसार केंद्र सरकार के खर्च का 5 फीसदी से भी कम हिस्सा बच्चों सें संबंधित कार्यक्रमों पर जाता है (हक, 2006)।

इतना ही नहीं, इस कम धन का भी एक बहुत छोटा हिस्सा ही छह वर्ष से कम आयु के बच्चों पर खर्च होता है। इस उम्र के लिए एकीकृत बाल विकास सेवा ही एकमात्र बड़ा कार्यक्रम है। इस योजना पर 2004-05 का केन्द्रीय आवंटन 1600 करोड़ रुपए का था जो भारत के सकल घरेलू उत्पाद के एक फीसदी के

* रिपोर्ट का यह हिस्सा 'राइट टू फूड' वाले मुकदमें में सुप्रीम कोर्ट के आदेश को लागू कराने के लिए नियुक्त आयुक्तों की हाल की रिपोर्टों पर आधारित है। ये रिपोर्ट www.righttofoodindia.org पर अनेक दूसरी सामग्रियों के साथ उपलब्ध हैं।

बाक्स 3.2. बाल विकास सेवा : मुख्य कार्यकर्त्ता

एकीकृत बाल विकास सेवा योजना को लागू कराने में काफी सारे लोग लगे हुए हैं। इन्हीं मुख्य कार्यकर्त्ता लोगों के काम और आपसी तालमेल पर इस योजन की सफलता निर्भर करती है। ऐसे मुख्य कार्यकर्त्ता हैं :

आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता : यही महिला कार्यकर्त्ता इस योजना का मुख्य स्तंभ है। उसी को आंगनवाड़ी के हर काम को संचालित करना होता है जिसमें आसपास के सारे परिवारों का सर्वेक्षण, योग्य बच्चों का पंजीकरण, हर दिन समय पर भोजन बांटने का इंतजाम देखना, स्कूल पूर्व शिक्षा देना, सहायक नर्सों के साथ टीकाकरण कैंप लगाना, गर्भवती औरतों के घर का दौरा करना जैसे काफी सारे काम शामिल है।

आंगनवाड़ी सहायक : इस योजना को लागू करने में आंगनवाड़ी सहायक की भूमिका भी केंद्रीय है। उसे हर काम में आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता को मदद करनी होती है। उसका मुख्य काम बच्चों को आंगनवाड़ी केंद्र पर लाना, उनके लिए खाना बनाना और केंद्र को साफ-सुथरा रखना है।

बाल विकास परियोजना अधिकारी : एकीकृत बाल विकास सेवा योजना कई 'परियोजनाओं' को जोड़कर बनी है। आम तौर पर एक परियोजना में एक लाख की आबादी और 100 आंगनवाड़ियां आती है। प्रत्येक परियोजना के लिए एक अधिकारी होता है। उसका दफ्तर इस परियोजना के मुख्यालय जैसा होता है।

सुपरवाइजर : परियोजना अधिकारी की मदद सुपरवाइजर करते हैं जिनका काम आंगनवाड़ियों का नियमित दौरा करना है। उन्हें रजिस्टरों की जांच, परिसरों का निरीक्षण, आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता को सलाह देने, उसकी समस्याओं का पता करने जैसे काम करने होते हैं। पर दुर्भाग्यवश ज्यादातर सुपरवाइजर रजिस्टर जांचने का काम करते हैं।

सहायक नर्स मिडवाइफ : एकीकृत बाल विकास सेवाओं और स्वास्थ्य सेवाओं के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी सहायक नर्स है। इस योजना के संदर्भ में उसका मुख्य काम टीकाकरण अभियान चलाना है जिसमें आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता भी साथ होती है। वह आंगनवाड़ी में बुनियादी स्वास्थ्य सेवाएं भी उपलब्ध कराती है।

मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता : राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ने स्वैच्छिक महिला कार्यकर्त्ता तैयार करने का लक्ष्य रखा हे। गांव स्तर पर तैयार होने वाली इन कार्यकर्त्ताओं को सहायक नर्स और आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता के साथ मिलकर औरतों और बच्चों के स्वास्थ्य एवं पोषण में सुधार के काम करना है।

गैर सरकारी संगठन : कई इलाकों में गैर सरकारी संगठन भी इन सेवाओं को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, बल्कि कई जगह तो पूरी 'परियोजना' ही किसी एक गैर सरकारी संगठन के हवाले रहता है। साथ ही 'केयर' और 'यूनिसेफ' जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं भी एकीकृत बाल सेवा योजना के कुछ कामों में मदद करती है। जैसे 'केयर' पूरक पोषाहार कार्यक्रम के लिए आहार उपलब्ध कराता था तो यूनिसेफ मेडिकल किट की आपूर्ति में मदद करता है।

स्थानीय समुदाय : इस योजना में स्थानीय समुदाय की भागीदारी को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आंगनवाड़ी के कामकाज को प्रभावी बनने में स्थानीय लोगों की सक्रियता बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इन केंद्रों में दान से सुविधाएं जमा करने, समय पर इनका संचालन सुनिश्चित करने और लरकोरी औरतों को इनके कार्यक्रमों में जाने के लिए प्रोत्साहित करने में स्थानीय समाज की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। दुर्भाग्य से अभी स्थानीय समाज की भागीदारी काफी कम है और कुछ ही इलाकों में है।

दसवें हिस्से से भी कम था। इसके विपरीत उसी वर्ष केन्द्र सरकार ने रक्षा के मद पर 77,000 करोड़ रुपए दिए थे।

एकीकृत बाल विकास सेवाओं पर हाल के वर्षों में धीरे-धीरे धन बढ़ाया जाने लगा है। (देखें बाक्स 3.3)। दिलचस्प तथ्य यह है कि सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई और 'भोजन का अधिकार' अभियान के बाद से ही सन 2002 के आसपास से यह बढ़ोत्तरी शुरू हुई है। और एक उत्साहजनक संकेत है कि लोगों की चेतना और सक्रियता बढ़ने से सरकारी नज़रिए पर प्रभाव पड़ रहा है। इतना कहने के बावजूद ही स्वीकार करना होगा कि एकीकृत बाल विकास सेवाओं पर खर्च अभी भी काफी कम है – खासकर सबको अच्छी सेवाएं देने के लक्ष्य के हिसाब से। पिछले केंद्रीय बजट, सन 2006-07 में एकीकृत बाल विकास सेवाओं का बजट 4,000 करोड़ था जो प्रति बच्चा प्रति दिन एक रुपया से भी काफी कम था।

सिर्फ कुल बजट ही नहीं विभिन्न पदों के प्रावधान भी काफी सारी कमियों को उजागर करते हैं। जैसे हर आंगनवाड़ी को हर माह किराए के नाम पर 150 रुपए मिलते हैं। इस बजट में किसी गांव में भी आंगनवाड़ी के लिए उपयुक्त जगह पा लेना नामुमकिन सा है, शहरों में तो खैर इतने पैसों में कुछ होगा ही नहीं। इसी प्रकार कुछेक राज्यों के आंगनवाड़ियों में 'चिकित्सा बक्सा' देने का इंतजाम किया है। सुप्रीम कोर्ट के आयुक्तों को हाल में राज्य सरकारों ने जो रिपोर्ट सौंपी हैं उनके अनुसार सिर्फ सात राज्यों ने आंगनवाड़ियों में "चिकित्सा बक्सा' उपलब्ध कराया है। कई राज्यों (जैसे झारखंड, राजस्थान और पश्चिम बंगाल) में तो किसी भी एक आंगनवाड़ी

को चिकित्सा के एक भी उपकरण की सुविधा उपलब्ध नहीं कराई गई है।

धन की कमी का इस योजना के पूरक पोषाहार कार्यक्रम पर भी प्रभाव पड़ा है। दिसंबर 2004 तक इस कार्यक्रम पर केंद्र सरकार प्रति व्यक्ति प्रति दिन एक रुपया खर्च का प्रावधान करती थी जो वैसे ही काफी कम है। इसमें बच्चों के आहार का दाम, ईंधन, मसालों, ढुलाई-यातायात और प्रशासन पर होने वाला सारा खर्च शामिल था। इस मानक में 1991 से कोई संशोधन नहीं हुआ है। जैसाकि चार्ट 3.1 से जाहिर होता है, कई राज्यों के पूरक पोषाहार पर असम में एक रुपए रोज़ से भी काफी कम खर्च किया। जिन 12 राज्यों के आंकड़े उपलब्ध हैं उनमें आधे ने 2002-03 में पूरक पोषाहार पर प्रति बच्चा प्रति दिन 50 पैसे से भी कम खर्च किया। बिहार में तो प्रति बच्चा प्रति दिन औसत 15 पैसे ही खर्च हुए। इसके उलट तमिलनाडु में स्थिति बहुत अच्छी थी। वहां छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों पर प्रति दिन औसत 1.20 रुपए और गर्भवती महिला तथा लरकोरी औरतों पर 2.08 रुपए खर्च किए गए और इसमें कर्मचारियों के वेतन, व्यवस्था के खर्च और ऊपरी

बाक्स 3.3. छह वर्ष से कम उम्र के बच्चे और बजट

0-6 वर्ष के बच्चों को पूरा ध्यान चाहिए। इस उम्र समूह के बच्चों के लिए जो-जो काम जरूरी है उन्हें शिशु देखरेख और शिक्षा या बाल कल्याण और विकास कहा जाता है। जनगणना 2001 का अनुमान है कि इस उम्र वर्ग के बच्चों की संख्या करीब 16.4 करोड़ अर्थात देश की आबादी का 16 फीसदी है। बच्चों की कुल आबादी में नवजातों (एक वर्ष से कम के) का अनुपात 6 फीसदी, शिशुओं (1-2 वर्ष) का अनुमान 12 फीसदी और स्कूल पूर्वउम्र (3-5 वर्ष) के बच्चों का अनुपात 22 फीसदी है। शेष 60 फीसदी बच्चे 6 से 14 वर्ष उम्र के हैं।

दसवीं योजना में सरकार ने पहले तीन समूह के बच्चों पर विशेष ध्यान देने का महत्व स्वीकार किया। इन बच्चों की जरूरतें खास है, यह एहसास नया नहीं है पर इन्हें पूरा करने का काम अभी तक अपर्याप्त ही है। माना जाता है कि इस उम्र के बच्चों पर खर्च करना समाज के लिए, उन बच्चों और उनके परिवार के लिए बहुत लाभदायक है, पर बजट में इनके लिए बहुत कम प्रावधान है। यूनेस्को का अनुमान है कि इन बच्चों पर खर्च होने वाले प्रत्येक डालर से चार डालर का लाभ मिलता है।

पर क्या भारत इस उम्र समूह के बच्चों पर पर्याप्त खर्च कर रहा है? क्या उनके लिए आवंटित राशि पर्याप्त है? बाल अधिकार केंद्र, हक द्वारा किए गए विश्लेषण से स्पष्ट है कि यह राशि अपर्याप्त है। वर्ष 2000-2005 के बीच विभिन्न सरकारी योजनाओं में प्रति बच्चा खर्च 208 रुपए था। अभी सरकार छह वर्ष से कम के बच्चों के लिए सात योजनाएं चला रही है : एकीकृत बाल विकास सेवाएं, शिशु शिक्षा, राष्ट्रीय राजीव गांधी बालवाड़ी योजना, राष्ट्रीय पोषण मिशन, प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य, राष्ट्रीय टीकाकरण और पोलियो उन्मूलन अभियान और शिशु अंगीकरण। 2000-2001 में इन सातों योजनाओं पर मात्र 2476 करोड़ रुपए खर्च था जो प्रति शिशु मात्र 151 रुपए हुआ। पिछले कुछ वर्षों में इन योजनाओं पर खर्च बढ़ है पर यह अभी भी काफी कम है। वर्ष 2004-2005 में सरकार ने इन योजनाओं पर 4724 करोड़ रुपए खर्च किए जो प्रति शिशु 288 रुपए पड़ा।

जब हम इस धन का हिसाब बजट के कुल खर्च के संदर्भ में देखते हैं जब सरकार की प्राथमिकता में बच्चों का स्थान नीचे होने की बात ज्यादा स्पष्ट होती है। 2006-2007 में कुल बजट का मात्र 1.66 फीसदी हिस्सा ही इन योजनाओं को दिया गया, वर्ष 2000-01 में तो यह मात्र 0.88 फीसदी ही था। यह बजट प्रावधान है और आमतौर पर खर्च इससे कम ही होता है। वर्ष 2004-2005 में बजट का मात्र 0.95 फीसदी हिस्सा ही छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए चलने वाले कार्यक्रमों पर खर्च हुआ।

एकीकृत बाल विकास सेवा योजना सरकार की सबसे प्रमुख योजना है। बच्चों के लिए उसकी कितनी चिंता है यह इस योजना पर आवंटन से साफ होता है। वर्ष 2005-06 में इस पर 3315 करोड़ और वर्ष 2006-07 में 4543 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान था। वैसे तो यह वृद्धि काफी अच्छी लगती है पर सभी बच्चों और सभी बस्तियों में कार्यक्रम चलाने के लिए यह एकदम अपर्याप्त रकम है। अभी तो 7 लाख आंगनवाड़ियों के माध्यम से मात्र 4 करोड़ बच्चों को ही ये सेवाएं मिल रही है। 17 लाख बस्तियां और 16 करोड़ बच्चों की संख्या के साथ इस आंकड़े की तुलना स्थिति को एकदम स्पष्ट कर देता है।

शिशुओं की स्थिति उनकी माताओं की स्थिति से जुड़ी है। अगर पर्याप्त समर्थन न हो तो मजदूर, घरेलू कामों और मां की जिम्मेदारियां निभाना एक औरत के लिए मुश्किल हो जाता है और ऐसे में महत्वपूर्ण वर्षों में बच्चों के अधिकार औरत के मातृत्व लाभ और शिशु पालन वाले प्रावधानों की उपलब्धता के साथ सीधा जुड़ा है। राजीव गांधी बालवाड़ी योजना के अनुसार अभी मात्र 23,834 बालवाड़ियां चल रही हैं जबकि जरूरत 8,00,000 बालवाड़ियों की है। ऐसे में आवंटन भी पर्याप्त है। इस योजना के लिए वर्ष 2005-06 का आवंटन पर 41 करोड़ था जो वर्ष 2006-07 में बढ़कर 103 करोड़ रुपए हो गया पर जरूरत और उपलब्धता के बीच काफी बड़ा फासला बना हुआ है।

सहयोग – हक : बाल अधिकार केंद्र

चार्ट : 3.1. पूरक पोषाहार कार्यक्रम के लिए राज्यों को आवंटन, 2002-03

राज्य	कुल आवंटन (करोड़ रुपये में)	प्रतिव्यक्ति प्रति दिन का आवंटन[a] (रुपये में)
आन्ध्र प्रदेश	85	0.57
हरियाणा	9	0.22
हिमाचल प्रदेश	10	0.48
झारखंड	7	0.42
कर्नाटक	39	0.33
मध्य प्रदेश	59	0.49
महाराष्ट्र	45	0.35
नागालैंड	6	0.87
उड़िसा	85	0.87
तमिलनाडु	152	1.69
उत्तर प्रदेश	85	0.51
पश्चिम बंगाल	56	0.98

[a] मुख्यत: बच्चे पर इसमें गर्भवती और लरकोरी औरतों का हिस्सा भी शामिल था।
स्रोत : सुप्रीम कोर्ट के आयुक्तों की पांचवीं रिपोर्ट (www.righttofoodindia.org पर उपलब्ध)

खर्च शामिल नहीं हैं।

सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद पूरक पोषाहार के मानकों को दो गुना कर दिया गया। पर प्रति बच्चा प्रति दिन दो रुपए का खाना भी पर्याप्त नहीं है, और इतने में हरी सब्ज़ियों और अन्य पौष्टिक चीज़ों को नहीं खिलाया जा सकता। फिर भी अभी अनेक राज्यों में यह संशोधित मानक लागू नहीं हुए हैं।

कम बजट अगर इस योजना के लिए सबसे बड़ी परेशानी है तो कई राज्यों में इस मद का पूरा पैसा इस्तेमाल ही नहीं हो पाता। केंद्र सरकार की सहायता राशि का पूरा उपयोग न हो यह आम समस्या है। जैसा कि चार्ट 3.2 दिखाता है जिन राज्यों के आंकड़े उपलब्ध है उनमें से अधिकांश में इसका पूरा उपयोग नहीं हुआ है : बल्कि औसत उपयोग 50 फीसदी से भी कम का है। कुछ राज्य, जैसे झारखंड और बिहार का रिकार्ड इस मामले में भी सबसे खराब है। जैसे झारखंड में तो वर्ष 2003-04 में प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के तहत पूरक पोषाहार के लिए आवंटित 37 करोड़ रुपए में एक भी पैसा जारी ही नहीं किया जा सका। राज्य में पोषक आहार की आपूर्ति करने पाली संस्था 'केयर' के जुलाई 2002 में हटने के बाद से वैकल्पिक व्यवस्था करने में पूरा एक वर्ष लग गया। परिणामस्वरूप पूरे प्रदेश की किसी भी आंगनवाड़ी में मई से दिसंबर 2003 के बीच एक भी बच्चे को एक भी दाना नसीब नहीं हुआ, बिहार की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है और 2002-04 में इसके अपने आवंटन का 24 करोड़

चार्ट : 3.2. पूरक पोषाहार कार्यक्रम पर धन का आवंटन और उपयोग, 2003-04

राज्य	आवंटन (करोड़ रु. में)	खर्च का औसत दिया गया (करोड़ रु. में)	खर्च नहीं हुआ (आवंटित धन का प्रतिशत)
बिहार	67	21	31
झारखंड	55	3	5
महाराष्ट्र	223	133	60
उत्तरांचल	23	6	26
तमिलनाडु[a]	35	25	72
कुल (5 राज्य)	403	188	47

[a] तमिलनाडु के आंकड़ों में प्रधानमंत्री ग्रामीण योजना का आवंटन और खर्च का हिसाब शामिल नहीं है। उसके आंकड़ें उपलब्ध न थे। अन्य राज्यों के आंकड़े में राज्य कोष (गैर-योजना) और प्रधानमंत्री ग्रामीण योजनाओं (पोषण) कोष का मिलाजुला हिसाब दिया गया है।

स्रोत : सुप्रीम कोर्ट के आयुक्तों की पांचवीं रिपोर्ट (www.righttofoodindia.org पर उपलब्ध) ऊपर दिए गए राज्यों के आयुक्तों के पूछने पर जानकारियां उपलब्ध कराईं।

रुपया वापस लौटा दिया। राज्य सरकार ने माना कि व्यवस्था संबंधी गड़बड़ी के चलते शुरुआत के कुछ महीनों तक बच्चों को कोई खाना नहीं दिया जा सका।

संक्षेप में तो एकीकृत बाल विकास सेवा के दायरे में कमी होने के साथ ही वित्तीय आवंटन की कमी और आवंटित राशि का उपयोग करने में कमी जैसी परेशानियां इस योजना का अपेक्षित लाभ नहीं मिल पा रहा है। इन कमियों को दूर करके ही बेहतर क्वालिटी के साथ इस योजना के दायरे में सबको लाने का लक्ष्य पाया जा सकता है।

3.3 सुप्रीम कोर्ट के आदेश

अप्रैल 2001 में *पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज* (पीयूसीएल, राजस्थान) ने सुप्रीम कोर्ट में भोजन के अधिकार को लागू कराने की अर्जी दी। उसका तर्क था कि भोजन का अधिकार संविधान द्वारा धारा 21 के तहत प्रदत्त जीने के अधिकार का ही एक हिस्सा है। निस्संदेह, सुप्रीम कोर्ट ने कई बार यह व्यवस्था दी है कि जीने के अधिकार के 'मानवीय गरिमा से जीने' का अधिकार माना जाना चाहिए और इसमें भोजन और अन्य बुनियादी सुविधाओं का अधिकार भी शामिल है। इस जनहित याचिका को 'पीयूसीएल बनाम भारत सरकार एवं अन्य, जनहित याचिका (सिविल) 196, 2001 के नाम से जाना जाता है। इस पर फैसला अभी आना है लेकिन इस बीच सुप्रीम कोर्ट ने भोजन के अधिकार के विभिन्न पहलुओं के लिए 'क्षेत्रीय आदेशों' की एक पूरी श्रृंखला जारी की है।

अपने पहले महत्वपूर्ण आदेश में 28 नवंबर 2001 को अदालत ने सरकार को निर्देश दिया कि वह सरकारी दिशा निर्देशों के अनुरूप भोजन से संबंधित नौ योजनाओं (जिनमें एकीकृत बाल विकास सेवा भी है) को पूरी तरह लागू करे। एकीकृत बाल विकास सेवा के मामले में आदेश और भी आगे तक गया और उसने मौजूदा फायदों को वैधानिक हक में बदल दिया।* इसने सरकार को यह निर्देश भी दिया कि इस योजना के दायरे में सभी बच्चों को ले आया जाए। इसका मतलब है कि हर बस्ती में एक काम करती आंगनवाड़ी ज़रूर हो और एकीकृत बाल विकास सेवाओं के दायरे में हर एक बच्चे, हर गर्भवती औरत, हर लरकोरी महिला और हर किशोरी को ले आया जाए।

पर इस आदेश पर कई वर्ष तक धूल ही पड़ी रही। अप्रैल और अक्टूबर 2004 तक इसे लागू करने के लिए लगभग कुछ भी नहीं किया गया। इस समय जब एकीकृत बाल विकास सेवाओं से जुड़े कई मामलों की जब सुनवाई हुई तब सुप्रीम कोर्ट ने आदेश जारी किए गए। जैसे, सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट रूप से सरकार को निर्देश दिया कि वह आंगनवाड़ियों की संख्या 6 लाख से बढ़ाकर 14 लाख करे और यह इंतज़ाम करे कि हर बस्ती इसके दायरे में आ जाए।

अप्रैल और अक्टूबर 2004 से सुप्रीम कार्ट के आदेशों ने सरकार को झकझोर कर जगा दिया। मई 2004 में जब संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार बनी तो उसके न्यूनतम साझा कार्यक्रम में एकीकृत बाल विकास सेवाओं का लाभ हर बच्चे के लिए उपलब्ध कराने का लक्ष्य भी जोड़ा गया। अक्टूबर 2004 में राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने सबको स्तरीय सेवाएं देने के बारे में विस्तृत सुझाव सौंपे और फरवरी 2005 में इस पर अनुपूरक सुझाव भी दिए। इस सबसे इतना फर्क पड़ा कि 2005-06 में केंद्रीय बजट में एकीकृत बाल विकास सेवाओं के लिए प्रावधान लगभग दोगुना हो गया।

पर ज़मीनी स्तर पर अपेक्षाकृत कम प्रगति हुई है। एकीकृत बाल विकास सेवाओं के विस्तार की रफ्तार काफी कम है। और अधिकांश राज्यों में सेवाओं की क्वालिटी में सुधार होने के संकेत नहीं दिखते। इससे स्पष्ट होता है कि सिर्फ अदालती आदेशों और बजट प्रावधानों पर से ज़्यादा कुछ नहीं होगा। असम में इन सेवाओं को हर किसी को उपलब्ध कराने तथा इनकी क्वालिटी में सुधार के लिए एक लायक आंदोलन का दबाव भी बनना चाहिए- सिर्फ सरकारी पक्ष से ही नहीं लोगों की तरफ से भी। इसी आंदोलन के पक्ष में हवा बनाने, और इसमें आपकी भागीदारी बनाने के लिए ही यह रिपोर्ट तैयार की गई है।

3.4 सबको स्तरीय सेवा

बच्चों के मुद्दों पर सही नज़रिए की चर्चा अध्याय 1 में हो चुकी है। इस नज़रिए से एकीकृत बाल विकास सेवा एक कल्याण योजना पर न होकर छह

---

* ये योजनाएं हैं : सार्वजनिक वितरण प्रणाली, अंत्योदय अन्न योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना, दोपहर का भोजन योजना, एकीकृत बाल विकास सेवाएं : अन्नापूर्ण, राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय मातृ लाभ योजना और राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना. सुप्रीम कोर्ट के आदेशों और इस जनहित मामले के विस्तार के लिए देखें सुप्रीम कोर्ट आर्डर्स ऑन राइट टू फूड www.righttofoodindia.org

बाक्स 3.4. एकीकृत बाल विकास सेवाओं पर सुप्रीम कोर्ट के आदेश

हाल के वर्षों में एकीकृत बाल विकास सेवा योजना पर लोगों का पर्याप्त ध्यान गया है। इसका एक कारण तो 'राइट टू फूड केस' का सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए आदेश है। भारत सरकार बनाम पीयूसीएल का यह मुकदमा अभी सर्वोच्च न्यायलय के पास विचाराधीन है। अदालत का मानना है कि 'भोजन के अधिकार' का उल्लंघन 'जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता' के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है जो धारा 21 के माध्यम से संविधान सबको उपल्बध कराता है। उसके बाद से एकीकृत बाल विकास सेवाओं को शिशुओं (छह वर्ष उम्र तक), गर्भवती और लरकोरी औरतों तथा किशोरियों के 'भोजन के अधिकार' की रक्षा के लिए केंद्रीय महत्व का करना जाने लगा है।

28 नवंबर का आदेश

- 6 वर्ष तक के हर बच्चे को 300 कैलोरी और 8-10 ग्राम प्रोटीन मिलना चाहिए।
- प्रत्येक किशोरी को 500कैलोरी और 20-25 ग्राम प्रोटीन मिलना चाहिए।
- प्रत्येक गर्भवती और लरकोरी औरत को 500 कैलोरी और 20-25 ग्राम प्रोटीन मिलना चाहिए।
- प्रत्येक कुपोषित बच्चे को 600 कैलोरी और 16-25 ग्राम प्रोटीन मिलना चाहिए।

29 अप्रैल 2004 का आदेश

- 0-6 के बच्चों, किशोरियों, गर्भवती और लरकोरी औरतों को साल में 300 दिनों का पूरक पोषाहार मिलना चाहिए।

7 अक्टूबर 2004 का आदेश

- आंगनवाड़ियों की संख्या 8 लाख से बढ़कार 14 लाख करनी चाहिए।
- प्रति बच्चा प्रति दिन पूरक पोषाहार का खर्च बढ़ाकर 2 रुपए करना चाहिए।
- सारी स्वीकृत आंगनवाड़ियों में काम शुरू होना चाहिए।
- सभी अनुसूचित जाति/जनजाति बस्तियों में जल्दी से जल्दी आंगनवाड़ियों बन जानी चाहिए। ज्यादा दलित/ आदिवासी आबादी वाली बस्तियों को आंगनवाड़ी बनाने में प्राथमिकता मिलनी चाहिए।
- सभी झुग्गी बस्तियों में आंगनवाड़ी होनी चाहिए।
- पूरक पोषाहार देने का काम ठेकेदारों पर नहीं होना चाहिए।
- स्थानीय महिला मंडलों और स्व-रोजगार समूहों को पूरक पोषाहार आपूर्तिकरने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। वे स्थानीय स्तर पर कच्चे सामान की खरीद करने वहीं खाना तैयार करें और बांटे।
- केंद्र और राज्य सरकारें आवंटित धनराशि को समय से मंजूर करने के लिए चौकस रखें जिससे बच्चों को भोजन बांटने में किसी तरह का गड़बड़ न हो।
- सभी राज्य सरकारें/केंद्र शासित प्रदेश सरकारें अपने बेवसाइट पर इस योजना के सारे विवरण उपलब्ध कराएं जिनमें आंगनवाड़ी केंद्रों की अवस्थिति, कुल धन राशि, लाभ पाने वालों की संख्या वगैरह हों।
- इनमें से कई आदेशों को अभी केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा पूरी तरह लागू किया जाना है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण आदेश, 0-6 वर्ष के सभी बच्चों, गर्भवती और लरकोरी औरतों तथा किशोरियों को इन सेवाओं के दायरे में लाना और पूरक पोषाहार देना तथा दलित/आदिवासी बस्तियों में आंगनवाड़ी बनाने के बारे में है।

नोट: इस विषय को और विस्तार से जानने के लिए देखें, सुप्रीम कोर्ट आर्डर्स आन राइट टू फूड ए टूल फार एक्शन, यह पुस्तक राइट टू फूड अभियान के सचिवालय में उपलब्ध है।

सहयोग – नंदिनी नायक

वर्ष के कम आयु के बच्चों के अधिकारों – जिसमें पोषक आहार, स्वास्थ्य सेवा और आनंददायक ढंग से सीखने के अधिकार शामिल हैं – की रक्षा का उपकरण भी है। इसी सोच को आगे बढ़ाते हुए तैयार की गई इस रिपोर्ट को इसी बुनियाद पर ही बनाया गया है कि छह वर्ष से कम उम्र के सभी बच्चों को ये सेवाएं मिलनी चाहिए, और इन सेवाओं के स्तर में काफी सुधार होना चाहिए। इस बड़े लक्ष्य को 'सबको ठोस स्तर पर बात करें तो 'सबको स्तरीय सेवा' का मतलब क्या है? इसका अनिवार्यतः निम्नलिखित अर्थ है : (1) हर बस्ती में एक सक्रिय और सक्षम आंगनवाड़ी हो; (2) छह वर्ष से कम उम्र के सभी बच्चों (और सुपात्र महिलाओं) को इन सेवाओं के दायरे में ले आया जाए; और (3) इन सेवाओं के दायरे और क्वालिटी में भारी सुधार किया जाए। (4) इस प्रक्रिया में कमज़ोर तबकों को प्राथमिकता दी जाए। इस रिपोर्ट में *'सबको स्तरीय सेवा'* इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

जैसा कि पहले कहा गया है, इन सेवाओं को सार्वभौमिक करने की मांग का बुनियादी आधार यह मान्यता है, कि प्रत्येक बच्चे को पोषक आहार, स्वास्थ्य, स्कूल पूर्व शिक्षा और संबंधित अवसर पाने का अधिकार है। आंगनवाड़ी इन अधिकारों की रक्षा का संस्थागत माध्यम है, या कम से कम उन्हें वास्तविक रूप

देने वाला माध्यम है। सार्वभौमिक के पक्ष में कम से कम चार और बुनियादी तर्क हैं : कानूनी तर्क, राजनैतिक तर्क, आर्थिक तर्क और समता का तर्क।

कानूनी तर्क यह है कि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के चलते एकीकृत बाल विकास सेवाओं का सार्वभौमीकरण वैधानिक रूप से ज़रूरी है। दरअसल 7 अक्टूबर 2004 के अपने आंतरिक आदेश में सुप्रीम कोर्ट के केंद्र सरकार को निर्देश दिया था कि वह हर बस्ती में सक्रिय आंगनवाड़ी की व्यवस्था होने का स्पष्ट समय वाला कार्यक्रम अदालत को बताए। पर, सरकार ने इस बारे में अभी अपना मन भी नहीं बनाया है।

राजनैतिक तर्क यह है कि इन सेवाओं को सार्वभौमिक बनाना इस संप्रग सरकार का बुनियादी वादा है। इसके साझा न्यूनतम कार्यक्रम में स्पष्ट कहा गया है, "संप्रग हर बस्ती में सक्रिय आंगनवाड़ी बनाकर और सभी बच्चों को एकीकृत बाल विकास सेवाओं के दायरे में लाकर इस योजना का सार्वभौमीकरण करेगा।" इसलिए इस चीज़ का महत्व अपनी जगह है, पर, इस मसले पर सरकार अपने वायदे से बंधी हुई भी है। इसी भावना के तहत राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने इस योजना के बारे में विस्तृत सुझाव दिए हैं, जो साझा न्यूनतम कार्यक्रम की भावना के अनुकूल हैं।

आर्थिक तर्क यह है कि अपने शिशुओं को स्वास्थ्य और पोषाहार की सेवाएं उपलब्ध कराकर आप अपने बेहतर भविष्य के लिए अच्छा निवेश कर रहे हैं। हाल के अनेक अध्ययनों से यह बात साबित हुई है कि बाल पोषाहार कार्यक्रमों पर हुआ खर्च काफी लाभकर होता है या हो सकता है। आर्थिक लाभ वाले अनुमान के लिए जो पैमाने इस्तेमाल किए जा रहे हैं उनकी सीमाएं हैं और ये नतीजे भी मात्र एक संकेत देते हैं। इतना ही नहीं इस क्षेत्र की हर सार्वजनिक नीति को सिर्फ लाभ-घाटे के पैमाने से मापने का काम भी नहीं होना चाहिए। फिर भी ये अध्ययन यही बताते हैं कि बाल विकास सेवाओं का तेज़ी से और व्यापक पैमाने पर फैलाव होना चाहिए।

सार्वभौमीकरण का आखिरी लेकिन पर्याप्त दमदार तर्क समता का भी है। निश्चित रूप से इस योजना के सार्वभौमीकरण से, सामाजिक असमानता में पीढ़ी दर पीढ़ी जो वृद्धि होती जा रही है वह पलटेगी। शुरुआत में ही हर बच्चे के विकास और आगे बढ़ने के लिए ज़्यादा समान अवसर देने से यह काम आसानी से होगा। बच्चे जब जाति, धर्म और लिंग के भेदभाव को जाने बगैर एक साथ खाने, खेलने और पढ़ने की शुरुआत करेंगे, तो इससे सामाजिक समता की राह भी आसान होगी। हमारे जैसे सामाजिक भिन्नताओं से भरे मुल्क में, इस सेवा योजना का सामाजीकरण वाला पहलू भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

इन सभी तर्कों को जब हम एक साथ देखते हैं, तो एकीकृत बाल विकास सेवाओं के सार्वभौमीकरण की दलील काफी मज़बूत हो जाती है। इसके खिलाफ किए जाने वाले दो तर्कों की भी हल्की चर्चा कर लेनी चाहिए। एक तर्क यह है, कि यह योजना कारगर नहीं है और न हो सकती है। कुछ बेकार पड़ी आंगनवाड़ियों या खाने में गड़बड़ियों के ही उदाहरण देकर इस दावे के पक्ष में कुछ बातें कहना आसान है। पर खाने में गड़बड़ वाले उदाहरण असल में इस योजना की आज की सामान्य स्थिति को ही दर्शाते हैं, और इस प्रकार इसमें सुधार की जल्द ज़रूरत की मांग भी करते हैं। बल्कि हाल के अध्ययनों में यह बात सामने आ रही है कि अनेक राज्यों में यह योजना बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगी है और इन उपलब्धियों को आगे बढ़ाने की काफी गुंजाइश अभी भी है। *'फोकस'* सर्वेक्षण का भी यही एक मुख्य संदेश है जिस पर अगले अध्याय में चर्चा होगी।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अनेक राज्यों में इन सेवाओं के स्तर में तत्काल सुधार लाने की जरूरत है। पर सुधार की ज़रूरत मानना और इस पूरी योजना को ही खारिज करने में फर्क है। *'फोकस'* का सर्वेक्षण इस पलायनवादी तर्क को कहीं से भी मज़बूत नहीं करता। इसके उलट, इसमें इस योजना की अपार संभावनाओं की तरफ ध्यान दिलाया गया है। ये संभावनाएं तमिलनाडु (और केरल में भी) में ज़मीन पर उतर कर अपना रंग दिखा भी रही हैं, क्योंकि इन राज्यों में यह राजनैतिक प्राथमिकता बन गया है। अच्छा तरीका यह है कि योजना अब तक के आधार को इस्तेमाल करते हुए इसकी संभावनाओं का बेहतर इस्तेमाल किया जाए और देश भर में इसी अच्छे ढंग से इसे लागू किया जाय। इस बात को थोड़े अलग ढंग से कहना हो तो कहेंगे कि कुछ राज्यों में कभी कभार होनेवाली गड़बड़ के आधार पर अगर इस योजना के सार्वभौमीकरण का विरोध करना है तो, फिर उसी तर्क से यह भी कहा जा सकता है कि बिहार या कालाहांडी में प्राथमिक स्कूल ठीक से काम नहीं

बाक्स 3.5. 'निवेश' के तौर पर बाल विकास

यह धारणा प्रबल है कि विकासशील देशों के कम संसाधनो को आर्थिक विकास पर ही खर्च करना सबसे अच्छा है। बाल स्वास्थ्य और पोषण के सुधार का आर्थिक आय पर जबरदस्त असर देखने में आता है। अनुभवजन्य अध्ययनों का निष्कर्ष है कि यह बात सही है पर यह काम काफी कम रफ्तार से होता है (हद्दाद, 2002)। इस अध्ययन का सुझाव है कि सिर्फ आर्थिक विकास पर भरोसा करने की जगह बच्चों के स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी जरूरतों को सीधे ही पूरा किया जाना चाहिए। इसी संदर्भ में हाल में हुए अध्ययनों का निष्कर्ष है कि बाल स्वास्थ्य एवं पोषण को एक अलग क्षेत्र मानने की जगह आर्थिक विकास के माध्यम के रूप में मानकर खर्च करना सार्वजनिक संसाधनों का सबसे उत्पादक इस्तेमाल है (एल्डामैन 2004)।

इस अध्ययनों का दावा है कि बच्चे सबसे अच्छा निवेश हैं। आज बच्चों की ऊर्जा और प्रोटीन संबंधी कमियों को पूरा करने से भविष्य में बहुत अच्छे आर्थिक नतीजे मिलेंगे। ऐसा किस तरह होता है? ये लाभ तीन तरह से मिलते हैं। बच्चों के काम करने की शारीरिक क्षमता बढ़ने का सीधा नतीजा मिलता है। उनके ज्ञान और शिक्षा में वृद्धि का परिणाम थोड़े अप्रत्यक्ष ढंग से फिलता है। दूसरा, लाभ खर्च घटने से संसाधनों की बचत होती है। यह चीज शिशु मृत्यु दर घटाने, उनकी बीमारियां रोकने औार उनके स्वास्थ्य की देखरेख पर ध्यान देने से होता है। तीसरा लाभ, अगली पीढ़ियों को होता है क्योंकि आज के स्वास्थ्य और योग्य बच्चे ही कल के स्वस्थ और योग्य मां-बाप बनेंगे।

ये लाभ हैं, इसमें कोई शक नहीं है – बल्कि कई तो एकदम स्पष्ट हैं – पर इनके फायदों का सही आकार प्रकार अस्पष्ट है और इनका अंदाजा या हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। यह काम उन धारणाओं से भी बाधित होगा जिनको अक्सर चुनौती दी जाती है। इन मुश्किलों और सवालों के बावजूद इन अध्ययनों से महत्वपूर्ण चीजों की तरफ इशारा होता है, महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती है।

जैसे बेहराम, एल्डरमैन और होड्डीनाट (2004) का हिसाब है कि जन्म के समय शिशु का वजन कम न होने देने के हरेक मामले से मुल्क को करीब 580 डालर का आर्थिक लाभ होता है। कुल लाभों के उत्पादकता में वृद्धि से 58 फीसदी, संसाधनों की बचत से 18 फीसदी, शिशु मृत्यु दर घटने से 16 फीसदी और अंतर-पीढ़ी लाभ से 8 फीसदी फायदा होता है।

लाभ के तीन क्षेत्रों में से उत्पादकता वाला माध्यम सबसे ज्यादा प्रभावशाली लगता है। बाल पोषण और उत्पादकता का यही संबंध सारे अनुभवजन्य अध्ययनों के स्थापित हो रहा है। जैसे, अगर वयस्क की ऊंचाई 1 फीसदी कम हो तो उसकी उत्पादकता पर 1.4 फीसदी का असर पड़ता है (हंट, 2005) और उसकी आमदनी 2. 2.4 फीसदी का असर पड़ता है (थामस और स्ट्रास, 1997)। संज्ञान और शिक्षा के माध्यम से उत्पादकता पर पड़ने वाला असर और लाभ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। खराब पोषण वाला बच्चा देर से पढ़ाई शुरू करता है। धीमे सीखता है, स्कूल में उसकी उपस्थिति कम रहती है। फिलीपीन्स के अपने अध्ययन में ग्लेन, जैकोबी और किंग (2001) ने पाया कि अच्छे पोषण वाले बच्चे जल्दी पढ़ाई शुरू करते हैं और फेल होने के चलते कक्षा दोहराने के मामले भी उनके साथ कम होते हैं। स्कूली शिक्षा पूरी करने की उनकी दर भी बेहतर होती है। (डेनियल्स और एडेर, 2004)। स्कूली पढ़ाई का कमाई से सीधा रिश्ता लगता है। जांबिया में, कुपोषण के चलते पूरी उम्र की कमाई में औसत 12 फीसदी की कमी पाई गई। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का भी कमाई पर ऐसा ही असर पाया गया है। मोटे अनुमान के अनुसार भी उत्पादकता का नुकसान (सिर्फ शारीरिक श्रम के मामले में) सकल राष्ट्रीय उत्पादन के 2.95 फीसदी था (हर्टन, 1999)। ऐसा छोटी कद काठी, बौनापन, आयोडीन और लोहे की कमी के चलते था।

'संसाधनों की बचत' के लिए ऐसे प्रमाण बहुत कम है और ज्यादातर विकसित देशों से संबंधित ही है। जैसे अमेरिका का आंकड़ा है कि जन्म के समय वजन के एक पौंड की कमी के चलते अतिरिक मेडिकल खर्च 5-5.6 अरब डालर हो जाता है जो शिशु काल के कुल स्वास्थ्य खर्च का 75 फीसदी है। (लेविट, 1975)। स्वास्थ्य खर्च के अनुमान पर आधारित ये आंकड़े इसी अनुपात में विकासशील देशों पर लागू नहीं होते। पर उनका हिसाब भी छोटा नहीं होगा।

जहां तक अगली पीढ़ी या पीढ़ियों तक लाभ की बात हैं तो यह पूरी तरह वयस्क और कुपोषित लड़की या महिला के साथ जुड़ी चीज है। कुपोषित और कम ऊंचाई वाली ऐसी महिला सामान्य से कम वजन के बच्चे को जन्म देगी, गर्भावस्था और प्रसव के दौरान उसकी और बच्चे की जान को ज्यादा खतरा होगा (रामकृष्णन, 1999)। इसलिए स्पष्ट है कि पोषण के सवाल को ठीक से हल करने न करने का असर पीढ़ियों पर पड़ना है। इसमें हुई कमी की बाद से वर्षो में भरपाई नहीं हो सकती पर इसने लाभ काफी समय तक मिलेंगे।

लागत-लाभ के हिसाब से जब हम बच्चों पर खर्च को देखते हैं तो सिर्फ उत्पादन लाभ ही सारे खर्च को उचित बताने के लिए काफी हैं (बेहराम, एल्डरमैन और होड्डीनाट, 2004)। अगर हम अन्य फायदों – मृत्यु दर घटने, मेडिकल खर्च कम होने और अगली पीढ़ी के लाभ – को देखते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि स्वास्थ्य और पोषण पर होने वाला खर्च कई गुना लाभ लेकर आता है। जैसे, एकीकृत बाल कल्याण कार्यक्रम पर खर्च और मुनाफे का अनुपात 9-16 गुना माना जाता है; 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को विटामिन ए का पूरक आहार देने का लाभ 4 से 43 गुना माना जाता है।

अनुभवजन्य प्रमाण एक ओर इसी बात की पुष्टि करते हैं। इसलिए बच्चे सिर्फ निवेश भर नहीं है, विकासशील देशों के लिए वे सबमें 'उत्पादक' निवेश भी हैं।

सहयोग – सुधा नारायणन

करते इसलिए सारे प्राथमिक स्कूलों को ही बंद कर देना चाहिए।

सार्वभौमीकरण के खिलाफ दूसरा तर्क है कि यह गैर जरूरी है और इस पर साधन बर्बाद करना बेमतलब है। इसकी जगह गरीब और वंचित बच्चों को लक्षित करके खास कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। यह सलाह लक्षित सामाजिक सेवाओं के परिचित अनुभव के आधार पर दी जाती है : लक्षित कार्यक्रम खर्च के हिसाब से ज़्यादा प्रभावी होते हैं और इनसे असमानता कम हो जाती है।

अन्य संदर्भों में इस तर्क में चाहे जितना दम हो पर एकीकृत बाल विकास सेवाओं के सार्वभौमीकरण को खारिज करने के लिए इसके उपयोग में कोई दम नहीं है। गर्भस्थ शिशु से लेकर छह वर्ष की उम्र तक बच्चों में से, जो कुपोषण और बीमारियों का शिकार बनते रहते हैं, उनको लक्षित करके कार्यक्रमों को चलाने का कोई विश्वसनीय तरीका नहीं है। कुपोषित बच्चे हर सामाजिक-आर्थिक समूह में मिल जाते हैं। दूसरे पहलू से देखें तो पाएंगे कि कुपोषण और कमज़ोर स्वास्थ्य के कारण बहुत अलग-अलग हैं और ये वंचनाएं बहुत ज़ाहिर भी नहीं होती जिससे इनको 'लक्षित' करना कोई आसान बात हो। इस प्रकार कोई भी 'लक्षित' कार्यक्रम काफी सारे बीमार, बदहाल और कुपोषित बच्चों को अपने दायरे से बाहर छोड़ देगा। और ऐसा करना इस योजना को 'दागो और भागो' की चुटकुलेबाज़ी वाला रूप दे देगा। भारत में पोषण, स्वास्थ्य और स्कूल पूर्व की शिक्षा हर बच्चे का मौलिक अधिकार है, सो इस तरह का कार्यक्रम इस बुनियादी अधिकार का उल्लंघन करा देगा।

4. ज़मीनी हक़ीक़त

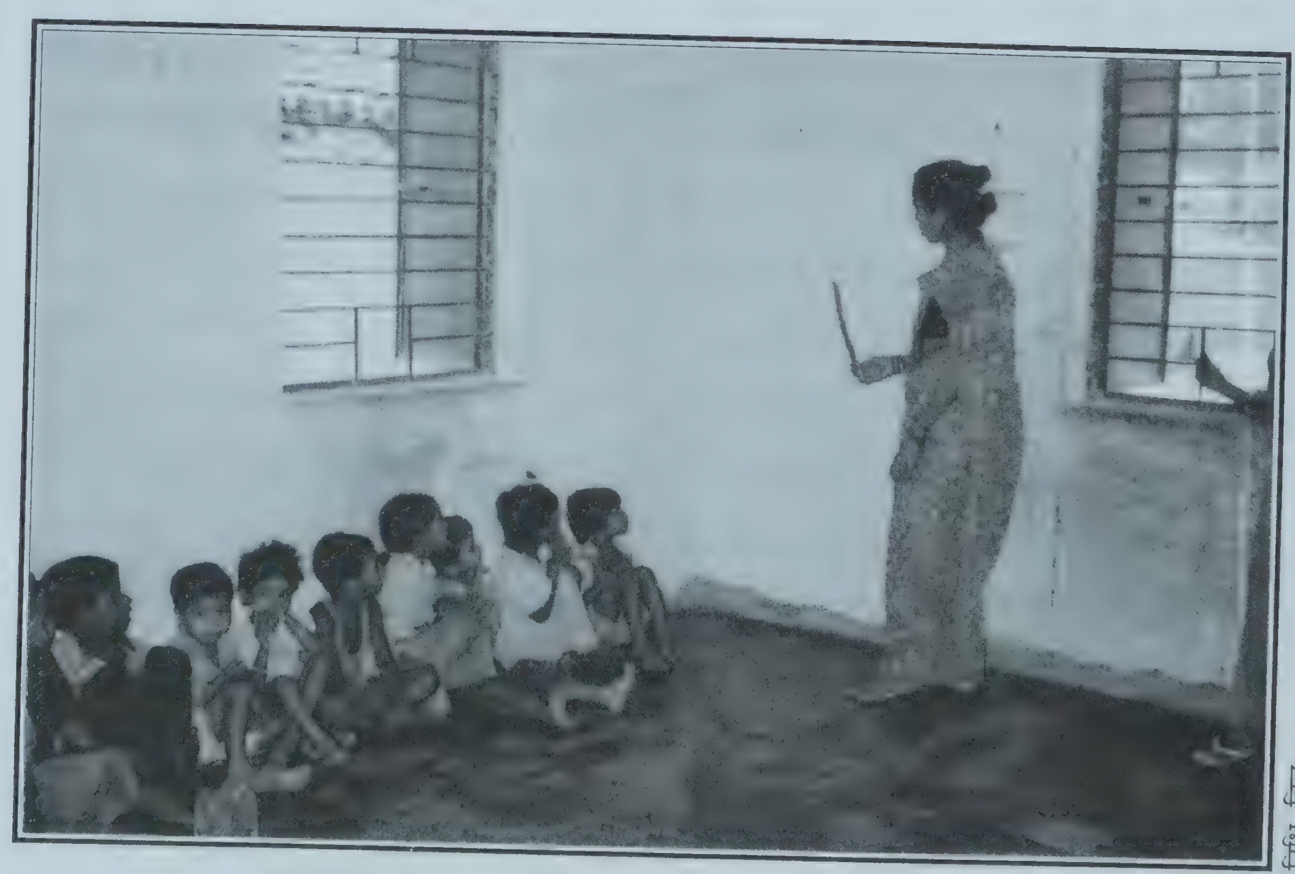

निधि विज

एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के अपने लिए बहुत ऊंचे-ऊंचे लक्ष्य तय किए हैं और ये सही दिशा में सोच से निकले भी हैं। पर यहां भी विकास की अन्य योजनाओं की तरह सिद्धांत और व्यवहार में काफी अंतर है। इस अध्याय में इस योजना की ज़मीनी हक़ीक़तों पर चर्चा की जाएगी, जो मई-जून 2004 में हुए एक फील्ड सर्वे फोकस सर्वेक्षण पर आधारित है।

4.1 फोकस सर्वेक्षण

फोकस सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य एकीकृत बाल विकास सेवा के कार्यान्वयन की जांच करना था। और इस तरह का यह पहला अध्ययन नहीं था। 1975 में इस कार्यक्रम के शुरू होने के बाद से ऐसी सैकड़ों रिपोर्ट तैयार की गई हैं। पर दुर्भाग्य से ऐसी ज़्यादातर रिपोर्टों से अधिक उपयोगी सूचनाएं नहीं

मिल पातीं। फिर जो सरकारी आंकड़ों पर आधारित हैं उनपर एक दम से पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि सरकारी रिपोर्टिंग प्रणाली की कमियां भी इससे जुड़ी हैं। जैसे, हम जानते हैं कि आंगनवाड़ी की कार्यकर्ता कुपोषण के गंभीर मामलों को उससे हल्का करके बताए (जैसे ग्रेड 4 को ग्रेड तीन का कुपोषण बताना) तो ये चीज़ उसके हक में जाती है, क्योंकि फिर उस पर कोई दोष नहीं आएगा या कम दोष आएगा। दूसरी तरफ स्वतंत्र सर्वेक्षण करने वालों को इस योजना के बारे में राज्यों से आंकड़े पाने में खासी मुश्किलें आईं। जैसे जब किसी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता से पूछा गया कि आप बच्चों को क्या-क्या सेवाएं उपलब्ध कराती हैं तो अक्सर वे वर्तमान में चलने वाली सेवाओं की जगह आने वाली सेवाओं की गिनती भी करवा देती थीं। उधर लरकोरी औरतों या माताओं को अक्सर पता भी नहीं होता कि आंगनवाड़ी में क्या-क्या होता है, खासकर उन राज्यों में ऐसा ज़्यादा है जहां साक्षरता की दर कम है। और फिर बच्चे तो इतनी कम उम्र के हैं ही, कि वे भरोसोमंद ढंग से कुछ बता सकें।

फोकस सर्वेक्षण में हमने इस समस्या को दो स्तरों पर निपटाने का प्रयास किया। पहला तरीका था विभिन्न लोगों आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, सहायिका, परियोजना अधिकारी, बच्चों की माताओं वगैरह) से लगभग एक ही तरह के सवाल पूछे जिससे उनके जवाबों से सच्चाई की दोहरी-तिहरी पुष्टि हो जाती थी या गलती वहीं पकड़ में आ जाती थी। फिर सेवाओं को कार्य रूप में देखकर उनके बारे में मूल्यांकन करने वाले सर्वेक्षण कर्त्ताओं की टोली को प्रशिक्षित करके बड़े पैमाने पर उनसे सर्वेक्षण कराया गया। जैसे, उनसे यह लंबी-लंबी टिप्पणी लिखवाई गई जब वे किसी आंगनवाड़ी पर पंहुचे तो उन्होंने वहां क्या-क्या होते हुए देखा। फिर उनसे कहा गया कि वे आंगनवाड़ी में उस समय बिना पूर्व सूचना के पंहुचें जब वहां काम चल रहा हो। इससे आंगनवाड़ियों के रोज़मर्रा के कामकाज की ज़्यादा पक्की तस्वीर सामने आई।

फोकस सर्वेक्षण बहुत ही कम पैसों में हुआ और इसके लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद ने थोड़ा अनुदान दिया था। चूंकि हमारे पास राष्ट्रीय सर्वेक्षण करने लायक साधन न थे इसलिए हमने सिर्फ छह राज्यों (जिन्हें आगे फोकस राज्य कहा जाएगा) पर ही ध्यान केंद्रित किया : छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु। योजना की सफलता असफलता के नमूने और विभिन्न इलाकों के बीच संतुलन के हिसाब से इनको अनौपचारिक ढंग से ही चुना गया था। हर राज्य में इन्हीं आधारों पर तीन-तीन जिलों का चुनाव किया गया और फिर रैंडम प्रणाली से हर जिले के 12-12 गांवों को चुना गया। इस प्रकार फोकस सर्वेक्षण में छह राज्यों से 36-36 नमूना गांव चुनकर कुल 216 गांवों का सर्वेक्षण किया गया।

हर गांव में सर्वेक्षण की शुरुआत बिना बताए आंगनवाड़ी में जाने से हुई – अक्सर उसके खुलने के पहले घंटे के अंदर ही वहां पंहुचने की कोशिश की गई पर हर बार यह संभव नहीं हुआ। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिका से लंबे-लंबे इंटरव्यू लिए गए। आधे नमूना गांवों में आंगनवाड़ी जाने वाले बच्चों में से 12 की माताओं के नाम रैंडम प्रणाली से निकाले गए और फिर उनसे लंबी लंबी बातचीत की गई। इसके अलावा सर्वेक्षण करने वालों ने अपनी आँखों से देखी स्थिति और अपने समूह में चर्चा के बाद निकले निष्कर्षों के नोट बनाए। परियोजना अधिकारियों और प्रखंड स्तर के अधिकारियों से भी छोटे-छोटे इंटरव्यू लिए गए। सर्वेक्षण की कार्यप्रणाली और विवरण अनुलग्नक में दिए गए हैं।

अब तक आप इन ब्यौरों से ऊब चुके होंगे। और यह सर्वेक्षण कैसा था, इसका अंदाज़ा बताने के लिए अब हम एक सर्वेक्षणकर्त्ता के ब्यौरे का कुछ अंश देकर इस हिस्से को समाप्त करते हैं।

4.2 एकीकृत बाल विकास सेवाओं का हाल क्या है?

इस सवाल का छोटा सा जबाव यही हो, "सब तरह का है।" पहला मामला तो इसी बात पर निर्भर करेगा कि आप किस प्रदेश में योजना का हाल जानना चाहते हैं। एक तरफ तमिलनाडु है जो इस मामले में बहुत ही अच्छा प्रदर्शन कर रहा है। वहां आंगनवाड़ियां साल भर चलती हैं, हर दिन पौष्टिक आहार दिया जाता है, अधिकांश बच्चों को सारे टीके लगा दिए जाते हैं और स्कूल-पूर्व के कार्यक्रम भी ठीक ठाक ढंग से चलते हैं। दूसरे सिरे पर उत्तर प्रदेश है जहां यह एक छोटे कर्मकांड जैसे हाल में ही चल रहा है। यहां की आंगनवाड़ियों में अनियमित ढंग से बच्चों को 'पंजीरी' बांट दी जाती है और रजिस्टरों पर सारी खानापूरी जैसे-तैसे कर दी जाती है। इन दो अतियों के बीच सफलता-असफलता

फोकस सर्वेक्षण में शामिल जिले

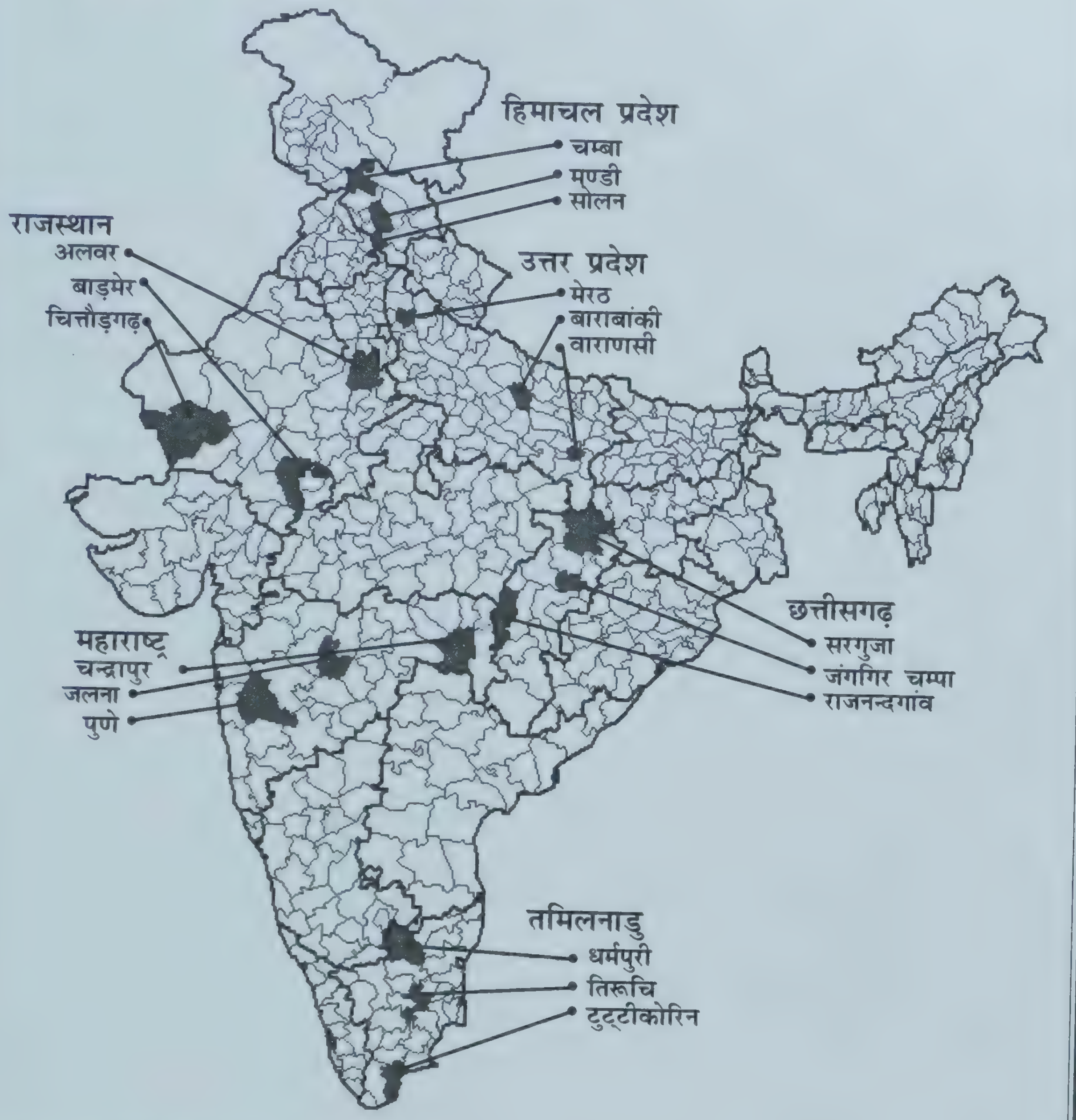

Credit : Christian Oldiges

के कई और रंग हैं।

योजना की सफलता-असफलता के विरोधाभास के साथ इस काम पर भी गौर करना ज़रूरी है कि इन अनुभवों से इस योजना के कामकाज के बारे में भी राय बनाई जा सकती है, यह कैसे कारगर होती है इसे भी जाना जा सकता है। बच्चों की तरह ही यह योजना उस जगह तो फल-फूल रही है जहां इस पर ध्यान दिया जाता है: पर्याप्त साधन, नियमित प्रशिक्षण, ढंग की सुविधाएं, निगरानी, जबावदेह प्रशासन, कल्पनाशील योजना वगैरह के मिलते ही यह योजना ज़बरदस्त लाभ देने लगती है। जहां ये चीज़ें नदारद हैं, वहां आंगनवाड़ी भी सूनी पड़ जाती है। एकीकृत बाल विकास सेवा की सफलता के लिए ये स्थितियां बनाना मुख्यत: एक राजनैतिक मसला बन गया है – लोकतांत्रिक राजनीति में अपनी पसंद का मसला।

फोकस सर्वेक्षण में आए राज्यों को दो समूहों – सक्रिय और निष्क्रिय में बांटा जा सकता है। हिमाचल प्रदेश, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में सक्रिय सामाजिक नीतियां हैं, सामाजिक विकास के अच्छे संकेत हैं और अच्छी प्रभावी सार्वजनिक सेवाएं हैं। उन्होंने बाल विकास सेवाओं को प्रभावी बनाने के लिए भी काम किया है। छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश और राजस्थान इन सेवाओं के मामले में निष्क्रिय रहे हैं। उन्होंने काम चलाने भर के लिए केन्द्रीय निर्देश मान लिए हैं। इन योजनाओं पर साधन, समय, ऊर्जा और सरोकार का खर्च नहीं किया है।

इसी बड़े मसले पर इस रिपोर्ट में अलग-अलग पहलुओं से विचार किया जाएगा। चार्ट 4.1 इस योजना के बारे में लरकोरी महिलाओं के नज़रिए को बताता है। पहले स्तंभ में फोकस सर्वेक्षण में आए सभी छह राज्यों के पूरे सर्वेक्षण के आंकड़े हैं। दूसरे स्तंभ में तमिलनाडु के आंकड़े हैं जो यह अंदाजा देता है कि 'क्या किया जा सकता है- जिस राज्य में इस योजना पर निरंतर ध्यान दिया गया है वहां नतीजे कैसे आए हैं इन पहले दो स्तंभों से एक बड़ा संदेश मिलता है कि सिर्फ तमिलनाडु में ही नहीं हर कहीं आंगनवाड़ियाँ नियमित रूप से खुल रही हैं, और पूरक पोषाहार कार्यक्रम चल रहा है – एकमात्र अपवाद उत्तर प्रदेश है। जैसे कि हम देख सकते हैं, अलग-अलग राज्यों में इस कार्यक्रम की गुणवत्ता में काफी फर्क है। फिर भी यह उत्साहवर्द्धक तथ्य है, कि यह एक काम करने वाली योजना है – और यह बात ग्रामीण विकास के अनेक दूसरे कार्यक्रमों के बारे में कह पाना आसान नहीं है।

चार्ट 4.1 के अन्य हिस्सों पर गौर करने पर हमें योजना की कुछ वास्तविक उपलब्धियों के साथ-साथ चिंता के अनेक

बाक्स 4.1. फोकस में नृशास्त्री

एक नृशास्त्री के तौर पर मेरे अंदर नए इलाकों, खासकर दूर दराज के और काफी भारी सामाजिक परेशानियों से भरे, में जाने की इच्छा रहती है। 2004 में एकीकृत बाल विकास सेवा योजना का सर्वेक्षण तीन चरणों में हुआ और यह चीजों को वहां जाकर विस्तार से देखने की मेरी इच्छा को पूरा करने का बहुत अच्छा अवसर था। और इस सर्वेक्षण के दौरान हिमाचल के सिरमौर : छत्तीसगढ़ के अकलतारा, लुंधरा और बैढ़न; तथा उत्तर प्रदेश के हस्तिनापुर और बाराबंकी में मुझे जो कुछ देखने को मिला वह मेरी स्मृतियों में सबसे ऊपर है।

इस सर्वेक्षण के दौरान हमारा मुख्य उद्येश्य इन इलाकों में चलने वाली आंगनवाड़ियों के कामकाज को देखना था। साथ ही यह भी जानना था कि ग्रामीणों के कल्याण के लिए उनसे जो अपेक्षाएं थीं वे पूरी हो रही है या नहीं। इन चीजों को जानने के लिए हमें चुने हुए गांवों के लोगों से कुछ सवाल पूछने थे, बातचीत करनी थी। यह कोई आसान काम नहीं था क्योंकि कई जगह तो लोगों ने जिद या अज्ञानता के चलते हमारे सवालों का जवाब भी नहीं दिया। लेकिन चुने हुए तीन राज्यों के लोगों ने हमारे (एकीकृत बाल विकास योजना) प्रति अलग व्यवहार प्रदर्शित किया।

मैं फरवरी 2006 में तीन सदस्यीय टोली का सदस्य होकर सिरमौर, हिमाचल प्रदेश पंहुचा था। हमें एक प्रखंड की आंगनवाड़ियों का सर्वेक्षण करना था। गांव दूर-दूर तक बिखरे थे और कुछ काफी ऊंचाई पर बसे थे और वहां जाने का कोई साधन न था। सिर्फ पहाड़ चढ़कर ही वहां पंहुचा जा सकता था। तटीय इलाके में पैदा-पले, मेरी तरह के आदमी के लिए उन गांवों में पंहुचना और भी मुश्किल काम था। पहाड़ चढ़ते हुए मेरी शक्ति कई बार जवाब दे जाती थी और इच्छा होती थी सीधे लुढ़क जाया जाए। पर किसी-किसी तरह मैंने इस मुश्किल काम को पूरा किया। लोग मिलनसार थे और गांवों में भी जातियों के लोग थे। उनके यहां पुरुष जेष्ठाधिकार वाली बहुपति प्रथा थी पर यह बात ज्यादा प्रचारित न थी। परिवारों की बनावट मोटे तौर पर पुरुष प्रधान ही है पर किसी न किसी तरह से फैसलों में महिलाओं की ज्यादा चलती है। लेकिन इस चलते अनिवार्यतः उनको समाज में ऊंचा दर्जा मिलता हो ऐसा नहीं है। ऐसे में इस सर्वेक्षण टोली का पुरुष सदस्य होने पर भी मुझे लरकोरी और गर्भवती औरतों के बात करने और सवाल पूछने में काई परेशानी नहीं हुई। दोपहर का भोजन कार्यक्रम में मुझे जाति आधारित भेदभाव दिखा, ऊंची जाति के बच्चे अपने साथ घर से बरतन ले आए थे, पर उन्होंने भी छोटी जाति के बच्चों के साथ ही बैठकर भोजन किया। यह सर्वेक्षण सात दिनों तक चला और इतनी ऊंचाई पर रहने का आनंददायक अनुभव मुझे पहली बार हुआ।

सर्वेक्षण का अगला दौरा छत्तीसगढ़ के तीन आदिवासी प्रखंडों का था। हमारा पहला प्रखंड था अकलतारा। मध्य गर्मी का समय था और दोपहर में हालत खराब हो जाती थी। हम सुबह-सुबह ही सर्वेक्षण के लिए निकल पड़ते थे। एक बार ऐसी ही मात्रा के दौरान हमारा एक साथी बेहोश हो गया और उसे डाक्टर के पास ले जाना पड़ा, अब चार लोगों की हमारी टोली में तीन लोग ही रह गए। इसके चलते काम का दवाब बढ़ गया। पर हम समय पर काम पूरा कर लेने में सफल रहे। हमारा अगला प्रखंड था लुंधरा और मुझे यह जगह सबसे ज्यादा पसंद आई। परिवहन की सुविधा लगभग नदारद थी पर लोग बहुत ही अच्छे थे। हमने एक रैन बसेरे (प्रखंड मुख्यालय के गेस्ट हाउस) में डेरा डाला। यहां न बिजली थी, न शौचालय-स्नान घर। पुरुष होने के चलते मुझे तो सड़क के किनारे चापाकल पर स्नान करने में कोई परेशानी नहीं हुई पर टोली की महिलाओं के लिए तो यह एक दुःस्वप्न सा था। पर लोग इतने भले थे कि हम अपनी सारी तकलीफें भूल गए। ज्यादातर आदिवासी लोग थे और हर गांव में कई-कई कबीलों के आदिवासी थे। अपने बच्चों को आंगनवाड़ी और स्कूल भेजने की उनकी तत्परता हैरान कराने वाली थी। उन्होंने उससे भी बड़े प्रेम से बातें की। पर यात्रा परिवहन की तकलीफों ने हमारे सर्वेक्षण के अनुभव को ज्यादा आनंद वाला नहीं रहने दिया। लक्षित गांवों तक पंहुचने के लिए उसे साइकिलों से लगभग 72 किमी की मात्रा करनी पड़ी। हमारे डेरे और चुने हुए गांवों के बीच आने जाने के लिए सिर्फ एक ही बस थी पर उसके समय का भी कोई भरोसा न था। सो वहां तक जाने का तरीका यही था कि पैदल जाया जाए या साइकिल से। लुंधरा इलाके में नक्सली बहुत ज्यादा सक्रिय हैं और एक बार मुझसे और निधि से लोगों ने यह पूछा कि कहीं हम भी तो नक्सली विचारधारा वाले नहीं है? हमने काले कपड़े पहने थे, यही देखकर लोगों ने यह सवाल पूछा भर। लुंधरा के बाद हम बैढ़न गए जो काफी कुछ उसकी तरह का ही था। वहां भी लक्षित आंगनवाड़ियां बहुत दूरी पर स्थित थी और परिवहन की हालत भी वैसी ही थी। सिर्फ पैदल ही वहां तक जाया जा सकता था। पर गंगा दा की मौजूदगी ने छत्तीसगढ़ के हमारे सर्वेक्षण को यादगार बना दिया। आज तक मेरी यादों में छत्तीसगढ़ का अनुभव बसा हुआ है।

मुख्य सर्वेक्षण के दूसरे दौर में मेरी टोली के सदस्य बदल गए और नए सदस्य आ गए। हमें उत्तर प्रदेश से दो जिलों को कवर करना था। पहला जिला था मेरठ जिसके हस्तिनापुर प्रखंड को कवर करना था। दूसरा जिला था बाराबंकी। उत्तर प्रदेश में सारी सुविधाएं उपलब्ध होने के बावजूद उन दो राज्यों जैसा आनंद नहीं आया। जहां जाति और संप्रदाय के झगड़े रोजाना के जीवन का अंग हैं। लोगों की सोच एकदम पुरुष प्रधान है। आंगनवाडी परियोजनाओं में भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद देखने के लिए ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं है। ठाकुर, ब्राह्मण और संख्या बल से मजबूत यादव ही गांवों की सामाजिक संरचना के कर्त्ताधर्ता हैं। पुरुष होने के चलते उन्होंने मुझे कभी भी किसी औरत से सवाल नहीं पूछने दिया। लोग हर जगह हमसे हमारी जात पूछ रहे थे और संभवतः यह जानकारी चाहते थे कि हम उनके साथ बैठ पाने की जातिगत योग्यता रखते हैं या नहीं। ऊंची जाति के लोगों में यह हिसाब कुछ ज्यादा ही था। अनेक आंगनवाड़ियों में कोई काम नहीं होता और दोपहर के भोजन की आपूर्ति भी अनियमित है। आंगनवाडी कार्यकर्त्ता और सहायक की भर्ती में खूब राजनीति और भाई भतीजावाद था।

सहयोग – अंतु साहा

कारण भी दिखाई देते हैं। जैसे यह तथ्य तो उत्साहजनक है कि अधिकांश 72 फीसदी माताएं आंगनवाड़ियों को अपने बच्चों के लिए 'महत्वपूर्ण' मानती हैं। सर्वेक्षण में आई दो तिहाई माताओं ने कहा कि उनके बच्चे नियमित रूप से आंगनवाड़ी जाते हैं और लगभग इतनी ही माताओं ने यह भी बताया कि आंगनवाड़ी में उनके बच्चों का वज़न नियमित रूप से लिया जाता है। अब वज़न लेना अपने आप में कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है (अगर यह पता न चले कि वजन लेकर क्या किया जाता है) और इस पर हम अगले अध्याय में गौर करेंगे। लेकिन यहां भी मुख्य संदेश यही निकलता है कि आंगनवाड़ियों में कुछ महत्वपूर्ण हो रहा है, और इसमें क्या-क्या संभवनाएं हैं, यह तमिलनाडु में दिखाई दे रहा है। दूसरी ओर एकीकृत बाल विकास सेवाओं में से कुछ सेवाएं बहुत बदहाल हैं। सर्वेक्षण में आई सिर्फ करीब आधी माताओं ने ही कहा कि आंगनवाड़ी में उनके बच्चों को कुछ पढ़ाया- लिखाया-सिखाया भी जाता है। संभव है कुछ मामलों में यह इस कार्यक्रम की गड़बड़ न हो और कम पढ़ी लिखी या बेपरवाह माताओं को ही पूरी जानकारी न हो। पर सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने आंगनवाड़ियों में जाकर काम काज की जो रिपोर्ट दी हैं उनमें भी यह कहा गया है कि अधिकांश आंगनवाड़ियों में – तमिलनाडु के अपवाद को छोड़कर – पढ़ाने-सिखाने का काम बहुत कम होता है।

एक राज्य के अंदर भी अलग-अलग इलाकों और अलग-अलग आंगनवाड़ियों के काम के स्तर में काफी फर्क था। और इसके लिए सबसे ज़्यादा आंगनवाड़ी की कार्यकर्ता और सहायिका की अपनी लगन, समझ और मेहनत ही सबसे ज़्यादा जिम्मेदार है। पर इस चीज़ को सिर्फ ईश्वर का दिया हुआ मानना गलत होगा। कार्यकर्ताओं का चुनाव, प्रशिक्षण, देखरेख और उनके काम काज का माहौल जैसे कारकों से भी उनकी क्षमता पर असर पड़ता है। फिर स्थानीय समुदाय जितनी मदद करता है या जितना तत्पर होता है उससे काफी फर्क पड़ जाता है। इस मुद्दे पर इस अध्याय 6 में बात करेंगे।

4.3 सर्वेक्षण में क्या दिखा

इस हिस्से में हम इस भोजन के विभिन्न पहलुओं पर अलग अलग इलाकों में दिखे अंतर पर गहराई से विचार करेंगे – पर चर्चा के बाद भी आगे उन पर बातें हैं भी।

भौतिक बुनियादी सुविधाएं : आंगनवाड़ी चलाने के लिए जो बुनियादी भौतिक सुविधाएं उपलब्ध कराई गई हैं उनमें भी अलग-अलग राज्यों और इलाकों में काफी फर्क है (चार्ट 4.2)। तमिलनाडु में अगर आम तौर पर पक्के मकान, बच्चों के खेलने-कूदने की खुली जगह, भोजन सामग्री रखने और पकाने के अलग अलग कमरे का इंतज़ाम किया गया है तो उत्तर प्रदेश में काम चलाऊ और खस्ताहाल एक कमरा भी सबको नसीब नहीं है। छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश मैं आमतौर पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ता या सहायिका के मकान में ही आंगनवाड़ी चलती है। यह बहुत ही गड़बड़ व्यवस्था है और कार्यकर्ता/सहायिका अक्सर यहां का काम छोड़-छोड़ कर घर के काम में लग जाते हैं और जाति-समुदाय के भेदभाव के चलते ऐसे घरों में सभी बच्चे नहीं आ पाते। उत्तर भारत के राज्यों के विपरीत तमिलनाडु और महाराष्ट्र में अधिकांश आंगनवाड़ियों प्राथमिक स्कूल के पास बनी स्वतंत्र इमारतों में चलती हैं जहां साफ पानी और दूसरी बुनियादी सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। इन अधिकांश केंद्रों पर कुर्सी टेबल से लेकर बर्तन-भांडे, भोजन समग्री भंडारण के साधन, खिलौने, चार्ट और अन्य उपकरण हैं।

"हमने पाया कि मुख्य परेशानी आंगनवाड़ी की अपनी जगह न होने से है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को अपना पूरा साजो-सामान लेकर प्राथमिक स्कूल के परिसर में जाना होता था। लेकिन वहां भी परेशानी होती थी, क्योंकि शिक्षक लोग उसे सारा सामान रखने की जगह नहीं दे रहे थे, आंगनवाड़ी की अपनी इमारत हो तो कार्यकर्ता को बच्चों के खेलने, पढ़ाई सीखने के साथ ही पोषाहार वगैरह को रखने में सुविधा होती है। गांव के लिए उनका काम बहुत उपयोगी है, इस बात के एहसास को भी यह इमारत मजबूत करती।"

मानव संसाधन : फोकस सर्वेक्षण में आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के चुनाव, प्रशिक्षण, कामकाज, ज़िम्मेदारियों, निगरानी, पारिश्रमिक, समर्थन और सशक्तिकरण के बारे में काफी सारे मसलों को उठाया गया है। राजस्थान के बीकानेर जिले की आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को सबसे बदहाल, कमजोर और अप्रभावी पाया गया। इनमें से अधिकांश ने कभी भी स्कूल का मुंह

चार्ट : 4.1. फोकस सर्वेक्षण : माताओं की योजना के बारे में धारणा

	तमिलनाडु	"सक्रिय राज्य"	"निष्क्रिय राज्य"[a]	उत्तर प्रदेश	फोकस स्टेट्स[a]
प्रतिशत माताओं का कहना था कि :					
आंगनवाड़ी नियमित रूप से खुलती है।	100	99	90	87	94
बच्चों को पूरक पोषाहार मिलता है।	93	94	93	94	94
उनका बच्चा नियमित रूप से आंगनवाड़ी जाता है।[b]	86	75	52	57	63
आंगनवाड़ी में नियमित रूप से वजन लिया जाता है।	87	82	47	40	64
आंगनवाड़ी में टीकाकरण सेंवाए उपलब्ध हैं।	63[c]	72[c]	49[c]	44[c]	60[c]
आंगनवाड़ी में स्कूल पूर्व शिक्षा दी जाती है।[b]	89	55	41	36	47
आंगनवाडी वाली बहन जी बच्चों से स्नेह रखती हैं।	84	82	74	77	78
यह योजना उनके बच्चों के लिए महत्वपूर्ण हैं।	95	88	57	59	72

[a] "छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश"

[b] उन माताओं से सवाल जिनका बच्च 3-6 वर्ष का था।

[c] ये आंकड़े असलियत से कम हो सकते हैं।

स्रोत : फोकस सर्वक्षण 2004. रेन्डम विधि से चुनी हुई औरतों से पूछे गए सवालों पर आधारित आंकड़े। छह कम से कम उम्र के ऐस बच्चों की मां से सवाल पूछे गए जितना कम से कम एक बच्चा आंगनवाड़ी जाता हो।

चार्ट : 4.2. फोकस सर्वेक्षण : सर्वेक्षणकर्ताओं की राय

	तमिलनाडु	"सक्रिय राज्य"	"निष्क्रिय राज्य"[a]	उत्तर प्रदेश	फोकस स्टेट्स[a]
आंगनवाड़ियों का प्रतिशत:[b]					
जिन्हें सर्वेक्षण टीके ने 'खराब' या 'बहुत खराब' माना	13	28	41	42	35
सर्वेक्षण के समय पूरक आहार नहीं बंट रहा था।	0	7	12	25	10
बच्चों के टीकों का असर 'कम' या 'बहुत कम' था।	12	6	41	44	25
प्रतिशत गांव जहाँ:[b]					
आंगनवाड़ी में अपने बच्चों को भेजने की प्रेरणा 'अच्छी' या 'बहुत अच्छी' थी।	60	51	27	23	39
माताएं आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को परिवार में स्वास्थ्य और पोषण की मुश्किल के समय मददगर के रूप में देखती हैं।	52	51	11	10	30

*[a] **सक्रिय राज्य** : हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, **निष्क्रिय राज्य** : छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, **फोकस राज्य** : सभी छह राज्य फोकस राज्य हैं।*

[b] उन माताओं से सवाल जिनका बच्च 3-6 वर्ष का था।

[c] ये आंकड़े असलियत से कम हो सकते हैं।

स्रोत : फोकस सर्वक्षण 2004. रेन्डम विधि से चुनी हुई औरतों से पूछे गए सवालों पर आधारित आंकड़े। छह कम से कम उम्र के ऐस बच्चों की मां से सवाल पूछे गए जितना कम से कम एक बच्चा आंगनवाड़ी जाता हो।

नहीं देखा और योजना से संबंधित रजिस्टरों को भरने के लिए अपने पति, पुत्र या भाई पर निर्भर थीं। बच्चों को स्कूल पूर्व की शिक्षा देने की बात कौन करे, वे उनके 'विकास चार्ट' को भरने और उस पर नज़र रखने में भी अक्षम थी। साथ ही बाड़मेर (और अन्य जगहों पर भी) में आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की नियुक्ति में राजनैतिक दखलअंदाज़ी बहुत थी। इसका परिणाम यह था उनमें स्वतः ढंग से कुछ कर दिखाने की प्रेरणा दिखती ही नहीं थी। लेकिन औसत आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ऐसे नहीं हैं। जिन राज्यों में सर्वेक्षण हुआ उनमें काफी सारी ऐसी कार्यकर्ताएं सामने आईं जो अपने समुदाय के बच्चों और ज़रूरतमंद औरतों के स्वास्थ्य और पोषाहार के मामले में बहुत कुछ करने में सक्षम थीं, बस उन्हें साथ और समर्थन उपलब्ध कराने की ज़रूरत थी। मुख्य मुद्दा उनके काम लायक स्थितियां पैदा करने की थी जिससे उनकी क्षमता उभरकर सामने आए। तमिलनाडु और महाराष्ट्र में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता आम तौर पर काफी पढी लिखी, प्रशिक्षित, काफी उत्साहित थीं और उनके काम काज की व्यवस्थित देखरेख का काफी इंतज़ाम था। उनका कामकाज भी काफी उपयोगी था पर उनको अक्सर कई तरह की परेशानियां भी उठानी होती थीं – जैसे नई ज़िम्मेदारियों का बोझ, इस योजना से इतर कामों की जिम्मेदारी भी मिलना और वेतन मिलने में देरी।

पूरक पोषाहार : किसी भी आंगनवाड़ी की सफलता के लिए यह ज़रूरी है कि उसे नियमित रूप से पौष्टिक खाने की आपूर्ति होती रहे। अगर खाना न हो, या वह बेस्वाद और खराब हो बच्चे आएंगे ही नहीं और खेल–कूद और पढ़ाई तो दूर की चीज़ हो जाएगी। दुर्भाग्य से उत्तर भारत की अनेक आंगनवाड़ियां इस पहली परीक्षा में ही फेल हो गईं। उत्तर प्रदेश में पूरक पोषाहार की आपूर्ति अक्सर बाधित होती है। और जब यह उपलब्ध हो तो प्रायः 'पंजीरी' ही बंटती है जो बंटने के दिन तक बासी हो गई रहती है। ऐसी पजीरी खाकर कई बार बच्चों के बीमार होने के मामले भी सामने आए। राजस्थान में खाने के सामान की आपूर्ति अपेक्षाकृत बेहतर थी पर सभी उम्र के सभी बच्चों को सिर्फ मुरमुरे ही दिए जाते हैं। अनेक लोगों का, जिनके बच्चे आंगनवाड़ियों में जाते थे, मानना था कि खाने में अलग–अलग चीज़ें न मिलने से कम बच्चे आते हैं। इसके उलट हिमाचल में खिचड़ी, दलिया और चना मिलता है जो सप्ताह में अलग अलग दिन क्रम बदलकर दिया जाता है, और मुश्किल भौगोलिक बनावट के बावजूद सामान की आपूर्ति में बाधा नहीं आती। तमिलनाडु भोजन की पौष्टिकता और विविधता, दोनों मामलों में आगे है। वहां आंगनवाड़ी में दो तरह के भोजन मिलते हैं – दो वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए आधा–तैयार 'हेल्थ पाउडर' मिलता है। जिसे गर्म पानी या दूध डालकर बच्चों को दिया जाता है। दो वर्ष से अधिक उम्र के बच्चों को गरम दाल, चावल और तेल–मसालों में बनी सब्जी दी जाती है, और हफ्ते में एक दिन उबला अंडा भी दिया जाता है। इतना ही नहीं सर्वेक्षण में तमिलनाडु में कभी भी पोषाहार की आपूर्ति में बाधा नहीं पाई गई – ऐसा ही महाराष्ट्र में भी था।

टीकाकरण और अन्य स्वास्थ्य सेवाएं

एकीकृत बाल विकास सेवाओं में राज्यों के प्रदर्शन में सबसे ज़्यादा स्पष्ट अंतर स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं में है। महाराष्ट्र में सर्वेक्षण के दायरे में आए अधिकांश बच्चों को सभी रोगों के टीके लग चुके थे। आंगनवाड़ियों में नाम दर्ज सभी बच्चों का वज़न नियमित रूप से लिया जाता था और उसका 'विकास चार्ट' ठीक से भरा जाता था। जिन बच्चों का वजन सामान्य से कम होता था, प्रायः उनको पूरक आहार दिया जाता था। प्राथमिक स्वास्थ्य के मामले में तमिलनाडु भी उससे ज्यादा पीछे नहीं पाया गया। वहां आंगनवाड़ियों में ग्रामीण स्वास्थ्य नर्सों का दौरा अपने तय दिन पर होता था। इन दोनों ही राज्यों में टीका लगाने, स्वास्थ्य की जांच और वज़न लेने का काम महीने में एक बार ज़रूर होता था और इसमें स्वास्थ्य कर्मचारियों के साथ आंगनवाड़ी के लोग भी होते थे। इनके उलट छत्तीसगढ़, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में भी 'विकास चार्ट' ही नदारद थे या उनमें जैसे–तैसे मनमानी सूचनाएं भर दी गई थीं। अधिकांश मामलों में सूचनाएं वक्त के हिसाब से भी नहीं भरी गई थीं और अधिकांश जगहों पर बुनियादी टीकाकरण का काम भी ढंग से नहीं पाया गया। यह करने के बाद भी इस तथ्य का उल्लेख ज़रूरी है कि प्रायः हर राज्य के स्वास्थ्य संबंधी सारे कार्यक्रम नहीं चल रहे थे – जैसे मुश्किल मामलों को बड़े अस्पताल भेजना, घर जाकर शिशु–लरकोरी या गर्भवती महिलाओं को देखने और "पोषण व तथा स्वास्थ्य शिक्षण" का काम प्रायः छूटा हुआ ही मिला। महाराष्ट्र और

बाक्स 4.2. एकीकृत बाल विकास सेवाओं में मानवीय कारक

एकीकृत बाल विकास सेवाओं में 'मानवीय कारक' धनात्मक और ऋणात्मक दोनों तरह का काफी असर डाल सकते हैं। अप्रैल 2004 में बांसवाड़ा (राजस्थान) और शाहगढ़ (उत्तर प्रदेश) में इस योजना में मानवीय कारक के धनात्मक प्रभाव का प्रमाण मिला। इन प्रदेशों में इन दो प्रखंडों का काम-काज सामान्य से बेहतर था।

संभवत: मानवीय कारक का सबसे महत्वपूर्ण पहलू आंगनवाडी कार्यकर्त्ता है – खासकर उसकी शिक्षा का स्तर, उसकी जाति और समुदाय के प्रति निष्ठा, उसकी नेतृत्व क्षमता और ऊर्जा तथा उसकी स्थानीयता। राजस्थान के राज्य निदेशालय के अनुसार अगर सही लोगों का चुनाव हो जाए तो आधी लड़ाई तो वैसे ही जीत ली जाती है।

आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता की पढ़ाई का स्तर महत्वपूर्ण है पर हमने पाया कि कम कई पढ़ी लिखी या अनपढ़ कार्यकर्त्ता भी अपने काम के प्रति पूर्ण तत्पर थीं। प्रशिक्षण और प्रेरणा से भी फर्क पड़ता है। पर कार्यकर्त्ता में अपनी प्रेरणा या इच्छा न हो तो इन प्रशिक्षणों का खास फर्क नहीं पड़ता। सर्वेक्षण के दौरान हमें ऊंची जाति प्रभावशली परिवारों की ऐसी आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ताएं भी मिलीं जिनकी अपने काम में कोई रुचि न थी। जैसे उत्तर प्रदेश में, जहां विभिन्न जातियों के बीच संसाधनों को हथियाने की होड़ है, वहां आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता की जाति और समुदाय के हिसाब से ही काम होता है। चीजें बंटती है। अगर कार्यकर्त्ता अगड़ी जाति या पिछड़ी जाति का है तो वह दूसरे समाजिक समूह की तरल मुंह भी करने से बचती है। ऐसे में दलित बच्चों की सबसे ज्यादा उपेक्षा हो जाती है। उन्हें अपनी जोड़ तोड़ की ताकत पर भरोसा होता है और लगता है कि उनका कोई कुछ बिगाड नहीं सकता। राजस्थान में ऊंची जाति के ताकतवर लोग सार्वजनिक आहार वाले कार्यक्रमों से बचते हैं, पर उत्तर प्रदेश में गरीबों के लिए आए संसाधनों को भी बटोरने में जुटे होते हैं। अध्ययन के दौरान शोधकर्त्ता पूरक पोषाहार में मुफ्त बंटने आई चीजों को बाजार से खरीदते थे।

बच्चों की उपस्थिति अच्छी रहे इसमें आंगनवाड़ी सहायिका बहुत महत्वपूर्ण कारक होती है। मजदूरी करने या जंगल से ईंधन, चारा वगैरह लाने निकली महिलाओं के लिए अपने बच्चों को आंगनवाड़ी केंद्र पर छोड़ना मुश्किल होता है। ऐसे में बच्चों की उपस्थिति आंगनवाड़ी सहायिका के प्रयासों पर काफी कुछ निर्भर होती है।

फिर इस योजना का राष्ट्रीय उद्येश्य जिस तरह तय होता हे और राज्य सरकारें जिस तरह से कार्यक्रम तय करती हैं उसका कार्यक्रम के नतीजों पर काफी असर पड़ता है। राजस्थान में कार्यक्रम को बच्चों का पोषण और स्वास्थ्य सुधारने की तरफ मोड़ा गया है। परिणामस्वरूप पूरक पोषाहार की नियमित खरीद और वितरण पर जोर दिया गया। इसे 'सर्वोच्च प्राथमिकता' दी गई। इसके बाद महीने में एक बार 'स्वास्थ्य दिवस' आयोजित करने पर ध्यान दिया गया। इसमें स्वास्थ्य विभाग के लोग भी जुटते है। राज्य नेतृत्व का मानना है कि यह कार्यक्रम गरीब बच्चों के लिए है और ऐसा है भी। परिणाम स्वरूप इस कार्यक्रम को लक्षित करने के काम में काफी गंभीरता बरती गई। पिछले पांच वर्षों में सरकारी आदेश आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता के 'उचित चयन' और लाभ पाने वालों की 'सही पहचान' पर ही जोर देते हैं। राज्य सरकार द्वारा तय दिशा निर्देशों में बच्चों की पहचान घर-घर के सर्वेक्षण के आधार पर और उनके वजन के आधार पर करने पर जोर है जिससे उनके कुपोषित होने की स्थिति का पता चला सके। इन बच्चों को प्राथमिकता के आधार पंजीकृत किया जाना है।

उत्तर प्रदेश की स्थिति एकदम अलग है। राज्य नेतृत्व से बात करने पर कार्यक्रम के उद्देश्यों के बारे में ही काफी अस्पष्टता दिखी। अधिकारी मानते हैं कि पोषण और स्वास्थ्य महत्वपूर्ण पक्ष है। पर वे स्कूल पूर्व शिक्षा को सबसे ज्यादा प्राथमिकता देते हैं। असल में यह स्थिति राज्य की प्रशासनिक और राजनैतिक वातावरण का परिणाम है। पिछले कुछ वर्षों में यहां जितनी राजनैतिक अस्थिरता रही है उसका असर आहार की खरीद और आपूर्ति की निविदाओं के बंटवारे पर भी दिखां परिणाम यह है कि बच्चों को उचित मात्रा में नियमित आहार देने का काम कभी भी व्यवस्थित ढंग से नहीं चला है।

एकीकृत बाल विकास सेवा कार्यक्रम से प्रबंधन में जिला और प्रखंड स्तर के अधिकारियों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। इस मामले में भी दोनों राज्यों की स्थिति एकदम भिन्न है। उत्तर प्रदेश में सहायक परियोजना अधिकारी के पास दौरे करने के लिए वाहन न था। इसके वाबजूद उस महिला अधिकारी ने गांव जाना जारी रखा। पर उदाहरण अपवाद ही है और वे काम न करने वाले अधिकारियों की फौज के बीच सिर्फ अपनी प्रेरणा से ही काम कर रही थीं।

कार्यक्रम चलाने के लिए जरूरी वातावरण बनाने और सख्त निगरानी का काम जिला और प्रखंड के अधिकारी करते हैं। राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में अपेक्षाकृत अच्छा काम हो की वजह संभवत: यही थी। वहां के परियोजना अधिकारी पूरी लगन से लगे थे और प्रखंड के अधिकारियों से उनका निकट संपर्क था। उन्होंने काफी सारी आंगनवाड़ियों का (दूर दराज वालों का नहीं) दौरा भी किया था। वे बारी बारी से राज्य स्तरीय तिमाही बैठकों में भी जाते थे। इन्हीं तिमाही बैठकों में दिशा निर्देश, प्रशिक्षण और कामकाज की परेशानियों संबंधी जरूरी जानकारियां मिलती है।

जाहिर है 'मानवीय कारक' बहुत महत्वपूर्ण है। जो आंगनवाड़ियां अच्छा काम कर रही थी उनमें यह कारक सबसे बड़ा था।

सहयोग – विमला रामचंद्रन

चार्ट : 4.3. आंगनवाड़ियों में बुनियादी सुविधाएं

	नमूना आंगनवाड़ियों में सुविधाएं				
	अपना भवन	रसोई	भंडार की सुविधा	पेय जल	शौचालय
प्रतिशत आंगनवाड़ी नमूनों के साथ :					
तमिलनाडु	88	85	88	68	44
सक्रिय राज्य	44	48	57	65	20
निष्क्रिय राज्य	22	29	55	70	20
उत्तर प्रदेश	13	13	39	58	32
फोकस राज्य	33	39	56	68	20

सक्रिय राज्य *- हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु*

निष्क्रिय राज्य *– छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, फोकस राज्य सभी छह राज्य हैं।*

स्रोत *– फोकस सर्वेक्षण 2004.*

तमिलनाडु में स्वास्थ्य की जांच वाले दिन ही खुराक और स्वास्थ्य संबंधी शिक्षण का कार्यक्रम रखा हुआ था लेकिन लगता है कि यह काम नियमित और व्यवस्थित रूप से नहीं चलता – कभी कभार या कहीं कहीं ही यह हो पाता है। राजस्थान और उत्तरप्रदेश में तो अधिकांश माताओं और गर्भवती महिलाओं को इस बात का भान भी नहीं है कि ऐसी सेवाएं चल रही है और वे आंगनवाड़ी कार्यकत्ताओं को इस दृष्टि से देखती भी नहीं कि वह उनकी स्वास्थ्य और खुराक संबंधी कोई मदद करेंगी।

स्कूल पूर्व की पढ़ाई : एकीकृत बाल विकास सेवाओं में स्कूल पूर्व की शिक्षा देना संभवत: सबसे मुश्किल काम है, और इसकी एक मुश्किल तो यही है, कि इसकी देखरेख और निगरानी संभव नहीं है। फोकस सर्वेक्षण से पता चलता है कि स्कूल पूर्व की शिक्षा की मांग प्राय: हर जगह के मां-बाप कर रहे हैं (खासकर उन इलाकों में जहां मां-बाप में पढ़ाई लिखाई की औसत दर ज़्यादा है)। पर जब मां बाप निरक्षर हो या कम पढ़े लिखे हों तो उनको इस बात की ज्यादा चिंता नहीं रहती कि आंगनवाड़ी जाकर बच्चा कुछ पढ़ना-लिखना भी सीख ले। इसका मतलब है, कि आंगनवाड़ी में पढ़ाई के सवाल पर जहां के समाज में चौकसी है वहां के परिणाम बेहतर होंगे वरना नहीं। एक और समस्या यह है कि स्वयं आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ही ज़्यादा शिक्षित और प्रशिक्षित नहीं होती। इसीलिए सर्वेक्षण के दायरे में आई ज्यादातर आंगनवाड़ियों में पढ़ाई वाला काम कमज़ोर ही मिला और छत्तीसगढ़, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में यह काम लगभग नहीं होता था। पर एक सुखद अपवाद तमिलनाडु है, जहां अधिकांश आंगनवाड़ियों में बच्चों को गीत, तुकबंदियां, छोटी कविताएं दस तक गिनती याद कराने के साथ रंगों और आकारों की पहचान कराने जैसे काम धड़ल्ले से चल रहे हैं। भाषा, चीज़ों की पहचान और तुलना वगैरह के जरिए नन्हें लड़के-लड़कियों को खेल-खेल में पढ़ाने का कार्यक्रम बहुत अच्छे ढंग से बना है और उसे ढंग से चलाया भी जाता है। हर साल बच्चों के खेलने और खेल के साथ पढ़ाई वाले उपकरण आंगनवाड़ियों को मिलते हैं। फिर आंगनवाड़ी की कार्यकर्ताओं को स्थानीय स्तर पर उपलब्ध साधनों से खिलौने और पढ़ाई के काम आने वाले खेल की सामग्री तैयार करने का प्रशिक्षण भी दिया गया है।

सामुदायिक समर्थन : एकीकृत बाल विकास सेवा कार्यक्रम तमिलनाडु और महाराष्ट्र के समाज में काफ़ी लोकप्रिय लगते हैं। आंगनवाड़ियों में बच्चों की उपस्थिति की दर काफी ऊंची है – खासकर जब हम सर्वेक्षण में आए अन्य

राज्यों से तुलना करते हैं। तब आंगनवाड़ी के बच्चों के लिए आकर्षक और जीवंत बनाने में अनेक गांवों के लोग स्वयं भी मदद करते हैं। जैसे आंगनवाड़ी के भवन की रंगाई-पुताई या कुर्सी-टेबल वगैरह खरीदने, बिजली का पंखा या बच्चों के खिलौने खरीदने में गांव के लोग चंदा दे देते हैं – सरकारी पैसा आने के भरोसे नहीं रहते। पर अन्य राज्यों में स्थानीय समुदाय भी किसी किस्म की दिलचस्पी लेता है, इसका पता नहीं चलता – हां, कुछ जगहों पर पंचायतों ने आंगनवाड़ियों के लिए अपने यहां जगह उपलब्ध करा दी है।

हमें उम्मीद है कि मुख्य मामलों की स्थिति संबंधी ये मोटी-मोटी बातें आपके फोकस सर्वेक्षण के बारे में अंदाज़ा दे देगी। अधिक विस्तृत निष्कर्ष आगे के अध्यायों में है। संक्षेप में कहें तो ये निष्कर्ष इस योजना के लिए एक सावधान करने की सीटी भर है। निश्चित रूप से इस कार्यक्रम में अपार संभावनाएं हैं और छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों के कल्याण और अधिकारों के मामले में यह बहुत कुछ कर सकता है। पर इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यह संभावना हर स्तर की उपेक्षा के चलते अक्सर बेकार ही रह जाती है। (और स्पष्ट है कि बच्चे इस सवाल पर आवाज़ उठा ही नहीं सकते – जैसाकि पहले अध्याय में कहा गया है) उत्तरी राज्यों में इस कार्यक्रम की हालत खास तौर से चिंताजनक है। पर अच्छी बात यह है कि फोकस सर्वेक्षण के बाद भी कई राज्यों में इस कार्यक्रम के मामले में महत्वपूर्ण फैसले लिए गए। और इसका एक बड़ा कारण है सुप्रीम कोर्ट के आदेश से हुआ बदलाव (देखें अध्याय 3) इस मसले की चर्चा हम अध्याय 8 में करेंगे।

4.4 सामाजिक भेदभाव

विभिन्न तरह की सामाजिक बाधाएं भी बच्चों को इस कार्यक्रम में भाग लेने से रोकती हैं। जैसे, अनेक दलित बच्चे सिर्फ इसलिए आंगनबाड़ियों में नहीं आ पाते क्योंकि वे ऊंची जाति के मुहल्लों में स्थित हैं और दलितों के घर से उनकी दूरी बहुत ज़्यादा है। फिर शारीरिक विकलांगता वाले बच्चों से उचित व्यवहार नहीं होता। उनको आंगनवाड़ी तक आने में जो अतिरिक्त परेशानी उठानी पड़ती है उसके ऊपर उन्हें लगे क वे बोझ बन गए हैं तो वे जाना बंद कर देते हैं। फिर प्रवासी मज़दूर परिवारों के बच्चों को इस एकीकृत बाल विकास सेवा से किसी किस्म का लाभ नहीं पहुँचाता क्योंकि उनको शामिल करने का कोई विशेष प्रावधान ही नहीं बना है। सामाजिक भेदभाव के अनेक दूसरे मामले भी हैं।

भेदभाव दो किस्म का हो सकता है : प्रकट या सक्रिय और अप्रकट। प्रकट भेदभाव तो दलित या आदिवासी बच्चों को दूर रखने का है, या वे स्वयं भेदभाव और अपमान के डर से नहीं आते। पर अप्रकट भेदभाव कई तरह से बच्चों को आंगनवाड़ी के कार्यक्रमों में भाग लेने और अन्य बच्चों से मेलजोल करने से रोकता है। विकलांग बच्चों पर छींटाकशी इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। कई बार प्रकट और अप्रकट भेदभाव के बीच बहुत बारीक विभाजन रेखा होती है, लेकिन यह फर्क हमको यह याद दिलाने के हिसाब से उपयोगी है कि हमें इस समस्या के दोनों ही पहलुओं पर गौर करना पड़ेगा।

प्रकट भेदभाव कायदे से तो बीते ज़माने की चीज़ होनी चाहिए पर फोकस सर्वेक्षण में इसके उदाहरण सामने आए। जैसे कई आंगनवाड़ियों में भोजन के समय दलित बच्चों को अलग पांत में बैठाने के मामले सामने आए थे, उन्हें अलग रखे बरतनों में ही खाने को दिया गया। मांडी जिले (हिमाचल प्रदेश) के मरहदा गांव में दलित बच्चों को कटोरों में खाना दिया गया जबकि बाकी बच्चों को थाली में। इसी प्रकार हमने पाया कि अगर खाना बनाने, परोसने या पानी पिलाने के काम में दलित सहायक था तब कई जगह अगड़ी जाति के लोगों ने इसका विरोध किया। जाति आधारित भेदभाव के सारे ही मामले सिर्फ ऊपर के राज्यों में पाए गए – महाराष्ट्र और तमिलनाडु में ऐसा एक भी मामला सामने नहीं आया।

पर कुल मिलाकर इन योजनाआं में प्रकट भेदभाव के उदाहरण बहुत ही कम मिले। फोकस के सर्वेक्षण में बहुत ही कम मां-बाप ने, जिसमें दलित मां-बाप भी शामिल हैं – इस तरह के भेदभाव का ज़िक्र किया। 'क्या आंगनवाड़ी में आपके बच्चे को उसकी जाति के चलते किसी भेदभाव का शिकार होना पड़ता है? इस सवाल के जवाब में 98 फीसदी दलित माताओं ने भी कहा कि ऐसा कुछ भी नहीं होता। संभव है कि कुछ लोग इस सवाल का जवाब देने में हिचक रहे हों। यह भी हो सकता है कि 'भेदभाव' का अर्थ भी कुछ लोग ठीक से न समझ पाएं क्योंकि उन्हें जातिगत

बाक्स 4.3. कर्मचारियों का नज़रिया बाधक बना

एकीकृत बाल विकास सेवा योजना में लगे काफी सारे लोग गरीबों को इस बात का रोक देते हैं कि वे अपने कर्मों से कुपोषित होते हैं और जब सरकार इतनी उदारता से ये सेवाएं चला रही है तब भी इसका लाभ लेने नहीं आते। यह आरोप तक और कठोर हो जाता है जब इन कर्मचारियों को गरीब महिलाओं, खासकर दलित और आदिवासी महिलाओं तक ये सेवाएं पंहुचानी होती है। उन्हें कहा जाता है कि सरकार उनकी मदद के लिए इतनी कोशिशें कर रही है पर तुम्हीं लोग नालायक और कृतघ्न हो। उनको आलसी, गंदा और अंधविश्वासी बताने के साथ-साथ अपने बच्चों की बदहाली के लिए भी जिम्मेवार बताया जाता है। जाने-अनजाने अधिकांश कर्मचारियों का नजरिया यही रहता है। और यह बात इस पूरे कार्यक्रम से जुड़े लोगों के मन में इस तरह बैठ गई है कि इसमें आने वाले नए दलित और आदिवासी परिवार के लोग में महीने-दो महीने बाद यही नजरिया अपना लेते हैं।

आदिवासी मामले में इस नजरिए से काफी नुकसान होता है। इससे उनके स्वाभिमान को ठेस पंहुचती है और वे कार्यक्रम से मुंह फेर लेते हैं, कर्मचारियों के पास जाते ही नहीं। शिशुओं को दुग्धपान कराने वाले मामलों में तो सारा किया-धारा खत्म हो जाता है। जब आप उन्हीं महिलाओं को दोषी मानेंगे जिन्हें आम कुछ नई चीजें सिखा रहे हैं तो सारा परामर्श बेमानी हो जाता है। छत्तीसगढ़ के कोडिया जिले के महेंद्रगढ प्रखंड के 29 सर्वेक्षण वाले गांवों में से 23 के लोगों ने इस नजरिए की शिकायत की। जैसे, उनसे कहा गया कि जरा साफ रहा करो। आदिवासी अपना घर, कपड़े और शरीर बहुत साफ रखते हैं, सो यह टिप्पणी उन्हें अखरी। बाल पोषाहार संबंधी स्टाफ के नजरिए की इस धारणा ने परेशानियां पैदा की है, इससे इन सेवाओं की लोकप्रियता प्रभावित हुई है।

सहयोग – समीर गर्ग

ईपीडब्लू, 26 अगस्त 2006 में छपे लेख *'ग्रास रूट्स मोबिलाइजेशन फॉर चिल्ड्रेन्स न्यूट्रीशन राइट्स इन छत्तीसगढ़'* के अंश

अलगाव को समाज व्यवस्था का हिस्सा मानने की आदत हो गई हो।

पर यह स्पष्ट लगता है कि मुख्य समस्या प्रकट भेदभाव न होकर अप्रकट भेदभाव की है। सर्वेक्षण में गए लोगों का मानना है कि अप्रकट भेदभाव के उदाहरण काफी हैं। पर मुश्किल यह है कि इस बात को बताना आसान नहीं है। जैसे, जब आप किसी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता से पूछते हैं कि वह दलित बस्तियों में क्यों नहीं जाती तो वह भले ही जातिगत पूर्वाग्रहों के चलते न जाती हो पर कह देगी कि दलितों के मुहल्ले दूर हैं, और जाना मुश्किल है। इसी प्रकार गांव का सरपंच यह ठीक जवाब नहीं देगा, कि आंगनवाड़ी दलित मुहल्ले को छोड़कर 'मुख्य' बस्ती में क्यों बनी है।

सर्वेक्षण के सामान्य आंकड़ों से इस तरह के अप्रकट भेदभाव को समझा भी नहीं जा सकता। जैसे, आंगनवाड़ी की अवस्थिति पर ही गौर करें। चार्ट 4.4 में सर्वेक्षण में आए गांवों की सभी बस्तियों -टोलों को उसमें संख्या के हिसाब से ज़्यादा रहने वालों का नाम दे दिया गया

चार्ट : 4.4. सामाजिक भेदभाव का अनुभव

आंगनवाड़ियों में सभी जाति के बच्चों के आने पर आपत्ति करने वाली माताओं का अनुपात (प्रतिशत)	2
अनुसूचित जाति / जनजाति की माताओं द्वारा आंगनवाड़ी जातिगत भेदभाव का अनुभव करने वालों का अनुपात (प्रतिशत)	1
जांच करने वालों द्वारा जातिगत भेदभाव का अनुभव करने वाले गांवों का अनुपात	16

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण, 2004

है (अनूसूचित जाति, जन जाति मुसलमान वगैरह)। चार्ट में आई हर श्रेणी के टोले से नजदीक के आंगनवाड़ी की दूरी दी गई है। इससे पता चलता है कि सामान्य श्रेणी के लोगों की बस्ती के पास स्थित आंगनवाड़ियों का अनुपात 34 फीसदी है तो दलित बस्तियाँ के पास 25 फीसदी आंगनवाड़ियां ही स्थित है। पर यह भी होता है कि सामान्य जातियों की बस्तियों भी आंगनवाड़ी से एक किलोमीटर से ज़्यादा दूरी पर हों। इस चार्ट पर नज़र डालने से कोई बहुत साफ प्रवृति दिखाई नहीं देती : आंगनवाड़ी से बस्तियों की दूरी वाला पैमाना कुछ ज़्यादा नहीं बता पता। पर इस तथ्य के साथ ही इस योजना के उद्देश्यों को भी याद करना चाहिए कि इसका कार्यक्रम में अनुसूचित जाति/जनजातियों और मुसलमानों को प्राथमिकता देना है। चार्ट 4.4 से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इन समूहों को प्राथमिकता नहीं मिल रही है। और अकेले इसी तथ्य के चलते अनेक तरह के प्रकट और अप्रकट भेदभाव प्रभावी हो गए हैं।

विशेष चार्ट 4.1. : एकीकृत बाल विकास सेवाओं में जातिगत भेदभाव : सर्वेक्षणकर्ताओं के अनुभव

"आंगनवाड़ी कार्यकर्ता हरिजन बस्ती के बच्चों का नाम नहीं लिखती।"

(कोटवा गाँव, बाराबांकी जिला, उत्तर प्रदेश)

"यह एक मुसलमान बहुल गाँव है पर इस समुदाय के एक भी बच्चे का नाम आंगनवाड़ी में दर्ज नहीं है।"

(सुवादा गाँव, बाड़मेर, राजस्थान)

"आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ब्राह्मण है और मौर्य (अनुसूचित जाति) बस्ती में दौरे नहीं करती।"

(कोइरीपुरी, गाँव, वाराणसी जिला, उत्तर प्रदेश)

"आंगनवाड़ी आने वाले बच्चों की माताओं की शिकायत है कि तैयार पूरक पोषाहार बांटने में जाति के आधार पर भेदभाव होता है।"

(वालिदपुर गांव, मेरठ जिला, उत्तर प्रदेश)

"जाति आधारित भेदभाव अभी भी जारी है। सरपंच 'सामान्य' श्रेणी का है और अनुसूचित जाति के बच्चों को आंगनवाड़ी सेवाओं का लाभ देने के पक्ष में नहीं है।"

(गनीसपुर गांव, मेरठ जिला, उत्तर प्रदेश)

"आंगनवाड़ी कार्यकर्ता हरिजन है इसलिए बड़ी जाति वाले अपने बच्चों को आंगनवाड़ी नहीं भेजते और प्रधान भी कामकाज में दखल देते हैं।"

(नंदनपुर गांव, मेरठ जिला, उत्तर प्रदेश)

चार्ट : 4.5. विभिन्न सामाजिक समूहों की आंगनवाड़ी तक पहुंच

बस्तियों की श्रेणी (उस बस्ती के सबसे ज्यादा लोगों की जाति पहचान)	आंगनवाड़ी में दूरी का प्रतिशत वितरण (हर श्रेणी में) [a]				
	0[b]	1-100 मीटर	101-300 मीटर	301-999 मीटर	1 किमी या ज्यादा
सामान्य[c]	34	6	6	22	32
पिछड़ा	28	19	14	19	20
अनु. जाति	25	14	18	26	17
मुस्लिम	20	10	10	32	28
अनु. जनजाति	25	0	13	50	12
अन्य	30	10	10	10	40
सभी बस्तियां	27	13	12	24	24

[a] प्रत्येक श्रेणी का जोड़ 100

[b] बस्ती के अदर ही आंगनवाड़ी

[c] हिन्दू लेकिन पिछड़ा/अनुसूचित जाति/जनजाति नहीं। स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004

जब हम इस योजना के तहत बच्चों की सूची पर गौर करते हैं तब भी हम ऐसे सवालों/मुद्दों से दो चार होते हैं। जैसा कि चार्ट 4.5 से ज़ाहिर होता है कि नमूना वाली आंगनवाडियों में दर्ज नामों के हिसाब से उनमें आनेवाले बच्चों में अनुसूचित जाति/जनजाति के बच्चों का अनुपात करीब 40 फीसदी है जो ज़िले में उनकी आबादी (27 फीसदी) से काफी अधिक है। पर यह तथ्य भी भेदभाव वाली बात को समाप्त नहीं करता क्योंकि योजना के उद्देश्यों में अनुसूचित जाति/जनजाति के बच्चों को प्राथमिकता देना प्रमुख है।

जातिगत भेदभाव के बारे में पक्की जानकारी पाने की मुश्किलें हाल में प्राथमिक स्कूलों में दोपहर के भोजन के संदर्भ में हुए अध्ययनों में अच्छी तरह ज़ाहिर हुईं। मानक साक्षात्कार वाली विधि से जब 2003 में दोपहर के भोजन संबंधी सामान्य सर्वेक्षण कराया गया तो जातिगत भेदभाव का (और प्रकट भेदभाव का) शायद ही कोई मामला सामने आया – कुछ-कुछ जगह दलितों को रसोइया बनाने पर ज़रूर आपत्ति हुई थी। पर बाद में जब सर्वेक्षणकर्त्ताओं में दलितों को भी हिस्सा दिया गया और भागीदारी वाला तरीका अपनाया गया तो दोपहर का भोजन योजना में प्रकट और अप्रकट भेदभाव के काफी सारे मामले सामने आ गए। (देखें बाक्स 4.5)

एकीकृत बाल विकास सेवा योजना में भी कुछ ऐसा हो रहा होगा। फोकस सर्वेक्षण में जातिगत भेदभाव का सवाल कुछ अस्पष्ट-सा ही है : इसमें प्रकट भेदभाव के मामले अपेक्षाकृत कम मिले पर इसमें अप्रकट भेदभाव पर भी ज्यादा रोशनी नहीं पड़ी इसे अधिक हाल का सर्वेक्षण, जो सामाजिक भेदभाव पर ही केंद्रित था, बताता है कि अप्रकट भेदभाव काफी बड़े पैमाने पर है (देखें बाक्स 4. 1)। जैसे, इस अध्ययन में (जिसमें आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तर प्रदेश के 14 गांवों का विस्तार में सर्वेक्षण हुआ है) पाया गया कि मिश्रित आबादी वाले जिन गांवों को अध्ययन में शामिल किया गया उनमें से किसी में भी आंगनवाड़ी दलित बस्ती में नहीं थी। सर्वेक्षण में आंगनवाड़ियों के रोज़मर्रा के कामकाज में जातिगत भेदभाव के भरपूर प्रमाण पाए गए। इसमें कहा गया है :

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिका द्वारा अलग अलग जाति और आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चों के साथ अलग-अलग तरह का व्यवहार कमज़ोर जातियों के बच्चों की भागीदारी को हतोत्साहित करता है। सहायिका पिछड़ी जातियों की बस्तियों से बच्चों को नहीं बुला ले जाती और उनके मां-बाप को भी यह डर लगता है कि अगर उनके बच्चों ने वहां जाकर पखाना-पेशाब कर दिया या शरारत की तो पता नहीं इस योजना का स्टाफ कैसा व्यवहार करेगा। बेहतर पृष्ठभूमि से आए बच्चों के मन में कोई डर नहीं होता।

इस अध्ययन में और भी किस्म के प्रकट और अप्रकट भेदभावों को पकड़ा गया था। दलित बच्चों की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता या सहायिका द्वारा उपेक्षा; विशेष सेवाओं के मामले में अच्छे घरों के बच्चों को प्राथमिकता देना और कमज़ोर लोगों को जानबूझकर योजना के लाभों के बारे में जानकारियां न देना।

पर एकीकृत बाल विकास सेवा योजना का एक अर्थ जातिगत भेदभाव और सामाजिक भेदभाव के पारंपरिक तरीकों से लड़ना और उन्हें दूर करना भी है। भारतीय गांवों के सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों की तुलना में आंगनवाड़ियों में सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों की तुलना में आंगनवाड़ियों में सामाजिक एकता और मेलजोल अपेक्षाकृत अधिक है। यह एक ऐसी जगह बनाई गई है जहां अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि के बच्चे साथ आते हैं, बैठते हैं, खेलते हैं, खाते हैं। जैसाकि हमने अध्याय में

चार्ट : 4.6. एकीकृत बाल विकास योजना में अनु. जाति/जनजाति की भागीदारी

आयु वर्ग	आंगनवाड़ी में पंजीकृत बच्चों में अनु. जाति/जनजाति के बच्चों का अनुपात (प्रतिशत)[a]	
	लड़कियां	लड़के
उम्र समूह : 0-3 वर्ष	43	42
उम्र समूह : 3-6 वर्ष	44	44

[a] *नमूना वाले जिलों में अनुसूचित जाति/जनजाति की आबादी का अनुपात प्रतिशत*

स्रोत : फोक्स सर्वेक्षण 2004.

बाक्स 4.4. भारत में बिसरे वनवासी बच्चे

जुलाई 2004 में एक नियमित अंतराल से ओडिसा के डोंगरीगुडा (नवरंगपुर जिला) में 11 आदिवासी बच्चे भुखमरी का शिकार हुए। डोंगरीगुडा छत्तीगढ़ से लगे, तेमेरा आरक्षित वन के अंदर बसी एक आदिवासी बस्ती है। ऐसी मौतों के खंडन के आम सरकारी चलन के विपरीत राज्य के महिला और बाल विकास सचिव ने तत्काल जांच के आदेश दिए। इससे यह बात सामने आई कि वन विभाग ने बस्ती के पास आंगनवाड़ी चलाने की अनुमति नहीं दी। वे इसे 'अवैध कब्जा' (इंक्रोचमेंट) होने के डर से खोलने देना नही चाहते थे।

अखबारों की रिपोर्टों के अनुसार डोंगरीगुडा भी ऐसे ही 'अवैध कब्जे' से बसी 200 बस्तियों में हैं। आदिवासियों के पास कोई भी जगह न होने या कल्याण के कोई काम न होने से ऐसे 'इंक्रोचमेंट' की घटनाएं होती हैं। पर्यावरण मंत्रालय के अनुसार वनों की 13.43 लाख हेक्टेयर जमीन भी इस तरह के अवैध कब्जे में है। एक मोटे अनुमान के अनुसार यदि प्रति परिवार एक हेक्टेयर जमीन भी इस तरह से ली जाये तो करीब 15 लाख आदिवासी परिवार अर्थात करीब 75 लाख लोगों, जिनमें बच्चे भी शामिल हैं, का जीवन इसी तरह चल रहा है। पर जानकार मानते हैं कि इस तरह जबरन बसने के सरकारी अनुमान वास्तविकता से कम होंगे क्योंकि ओडिसा जैसे राज्यों में काफी सारे लोग इस तरह की बस्तियों में रहते हैं। इन्हीं सरकारी आंकड़ों के अनुसार मई 2002 से मई 2004 के बीच 1.5-2 लाख हेक्टेयर ऐसी जमीन छुड़ाई गई। दरअसल ज्यादातर आदिवासी अपने बाप-दादा की जिस जमीन पर रहते हैं उसे जंगल विभाग ने 'अपना' घोषित करके इन सबके बसने को अवैध करार दिया है – यह उनकी समस्याओं को और भी बढ़ाता है। अनुसूची V के अनुसार आदिवासी इलाके को सरकारी वन घोषित करने से ये परेशानियां और बढ़ी हैं। सरकारी अधिसूचना जारी होने के पहले जमीन की मिल्कियत के बारे में किसी किस्म का सर्वेक्षण नहीं किया गया जबकि कानून के अनुसार ऐसा करना जरूरी है। यह हुआ उसी संसद में जहाँ वन अधिकार विधेयक भी आदिवासियों के साथ हुए उसकी उत्पत्ति की इसी ऐतिहासिक भूल से जुड़ी है।

डोंगरीगुडा के हादसे और उसकी जांच का आदेश एक बड़े मामले से सीधे टकराने का प्रयास था। प्रधान सचिव वन एवं पर्यावरण से चर्चा के बाद उन्होंने जो आदेश दिया वह कुछ इस प्रकार का था।

"स्पष्ट रूप से यह कहना चाहूंगा कि एकीकृत बाल विभाग सेवा योजना की भौगोलिक सीमा में रहने वाले बच्चे और गर्भवती/लरकोरी औरतों का इस परियोजन में शामिल किया जाना है और अगर वे जरूरी मानक पर खरा उतरते हैं तो उन्हें पूरक पोषाहार जैसे कार्यक्रमों का लाभ दिया जाएगा, वह बस्ती राजस्व गांव का हिस्सा है या नहीं, पहले से वन में बसे गांव का हिस्सा है या नहीं, क्या वह 1980 से पहले या 1980 के बाद के दौर में वह जंगल के जमीन पर अवैध ढंग से बसा है, ये चीजें एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के संदर्भ में कोई-कोई मतलब नहीं रखतीं।"

प्रधान सचिव, वन एवं पर्यावरण ने भी अपने विभाग के कर्मचारियों-अधिकारियों को निर्देश दिया कि वे आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता और सहायक नर्सों को इस योजना से जुड़े काम इन बस्तियों में करने में, इसके बाद मुख्य सचिव ने सभी 'की.बी.के.' जिलों के कलक्टरों से को पूरक पोषाहार, खाद्य सुरक्षा और स्वास्थ्य संबंधी सभी सरकारी कार्यक्रमों को मुस्तैदी से चलाने का आदेश दिया।

ये आदेश निश्चित रूप से प्रशासन के नजरिए में स्वागत योग्य बदलाव को बताते हैं पर ये भारत के आदिवासी बच्चों की मदद करने के आंशिक उपाय भर हैं। दरअसल वन विभाग द्वारा बसाए गए 'जंगल के गांवों ' के बाशिंदों को भी निवास प्रमाण नहीं मिलता। यह प्रमाण पत्र राजस्व (लगान) विभाग देता है जिसका जंगल की जमीन से कोई लेना देना नहीं होता। इसक परिणाम यह है कि इन लोगों को अनुसूचित जाति/जनजाति प्रमाणपत्र नहीं मिल पाता जो आरक्षण और अन्य सुविधाओं का लाभ लेने के लिए जरूरी है।

सरकारी आदेश के बावजूद जंगल की जमीन पर 'अवैध बसे' लोगों को दूसरी कल्याणकारी सेवाओं और जीविका के अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है। जैसे वन विभाग ने डोंगरीगुडा में पेयजल की सुविधा के लिए ट्यूबवेल गाड़ने की इजाजत कलक्टर को भी नहीं दीं क्योंकि वह इस बस्ती को 'अवैध कब्जा' मानता है। वन विभाग को छोड़कर बाकी कोई भी विभाग ऐसी जगह पर किसी किस्म का निर्माण नहीं कर सकता परिणामस्वरूप ऐसी अनेक बस्तियों में न स्कूल है, न प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, न आंगनवाड़ी। अगर वन विभाग खुद से उन्हें बनाने का जिम्मा लेता है तभी आदिवासियों को ये सुविधाएं नसीब हो पाती है। चूंकि रहने वालों के पास जमीन की मिल्कियत का कागज नहीं होता इसलिए उन्हें इंदिरा आवास योजना का लाभ भी नहीं मिल पाता। जंगली जानवरों या सूखें द्वारा फसल का नुकसान या पालतु पशुओं की मौत पर उन्हें किसी तरह की क्षतिपूर्ती नहीं मिल पाती।

वन्य जीव अभयारणय और राष्ट्रीय अभ्यारणों में स्थिति और भी गड़बड़ है क्योंकि वहां लागु वन्य जीव संरक्षण कानून वहां रहने वालों को संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का लाभ भी नहीं लेने देता। कुपोषण, बच्चों को काम पर लगाना, पलायन करना और भुखमरी का शिकार हो जाना ऐसे इलाकों में रोज होने वाली चीजें हैं और जब तक इन लोगों के अधिकारों को मंजूरी नहीं मिलती यह स्थिति जारी रहेगी।

सहयोग – मधु सरीन

बाक्स 4.5. दोपहर के भोजन में जातिगत भेदभाव

2003 में राजस्थान, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु के 301 गांवों में दलितों के बीच एक सर्वेक्षण हुआ, इसका उद्देश्य 'दोपहर के भोजन' में जातिगत भेदभाव के स्वरूप, आकार और तरीकों को जानना था। इस योजना तक दलितों की पंहुच और भागीदारी के स्तर के हिसाब से यह चीज देखने की कोशिश की गई।

पहला मानक तो योजना तक पंहुच का ही था। इसे तीन तरह से देखा गया। इस योजना में आने वाले गांवों का अनुमान देखना पहला तरीका था, सर्वेक्षण वाले 98 फीसदी गांवों में यह योजनाचल रही थी। स्पष्ट है कि इन राज्यों में इस योजना को सभी जगह पंहुचाने के शुरूआती कदमों में राज्य सरकारें सफल थीं।

दूसरा तरीका मंदिरों में दलित बच्चों की पंहुच और स्कूल की इमारत में पंहुच की तुलना का था। जिन गांवों के स्कूलों में दोपहर का भोजन मिलता था उनमें से 93 फीसदी में बच्चों को वहीं खिलाया भी जाता था। बाकी गांवों में बच्चों को 'दूसरी' सार्वजनिक जगह पर खाना खिलाया जाता था और वहां दलित बच्चों से भेदभाव होता था। तमिलनाडु के दो गांवों में मंदिर परिसर में खाना खिलाया जाता था पर वहां दलित बच्चे भी साथ खाते थे जबकि परंपरागत रूप से उन्हें बैठने भी नहीं दिया जाता था।

फिर यह देखने का प्रयास किया गया कि कितने ऐसे गांव हैं जहां दोपहर का भोजन दलित मुहल्ले में मिलता है – किसी अगड़ी जाति वाले मुहल्ले में नहीं। योजना में कामकाज का भौतिक ढांचा तो महत्वपूर्ण है ही उसकी उपस्थिति वाली बस्ती का चुनाव भी उतना ही महत्वपूर्ण है। तमिलनाडु और राजस्थान में भोजन कराने वाले अधिकांश स्थान प्रभावशाली जाति के लोगों के मुहल्ले में थे। इन दोनों राज्य में क्रमशः 19 और 19 फीसदी दलित बस्तियों में ही भोजन खिलाने का काम होता था। दलित बच्चों की भागीदारी तो इससे सुनिश्चित होती ही है साथ ही प्रभावशाली जातियों के लोगों का पूर्वाग्रह भी इससे खत्म होने में मदद मिलेगी। पर जब दलित बच्चा ऊंची जातिवालों की बस्ती में जाता है तो वह पहले से भी ज्यादा दब्बू बनता है।

दूसरा मानक दलितों की भागीदारी और मिल्कियत के हिसाब वाला था। इसे जानने के लिए यह चीज देखी गई कि कितने गांवों में दलितों को भोजन बनाने और दोपहर का भोजन योजना चलाने का काम सौंपा गया है। राजस्थान में दलित रसोइया बहुत कम मिले, सिर्फ 8 फीसदी, और कार्यक्रम संचालन का जिम्मा किसी दलित को नहीं दिया गया था, तमिलनाडु में दलितों का अनुपात अपेक्षाकृत अच्छा था पर वे अल्पसंख्यक ही थे। वहां खाना बनाने वालों में 31 फीसदी दलित थे जबकि योजना चलाने वालों में 27 फीसदी । इस मामले में आंध्र प्रदेश सबसे आगे था जहां के 49 फीसदी रसोइए और 45 फीसदी संचालक दलित थे।

तीसरा मानक समुदाय के तौर पर इस योजना तक दलितों की पंहुच का था। इस विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि किसी न किसी तरह का भेदभाव और छंटनी के काफी मामले थे। इन तीन राज्यों में, जिन गांवों का सर्वेक्षण हुआ उनमें से 37 फीसदी ने इस योजना में जातिगत भेदभाव के अनुभव की बात बताई। राजस्थान में ऐसा अनुभव 52 फीसदी, आंध्र में 24 फीसदी और तमिलनाडु में 36 फीसदी ने किया था।

इन आंकड़ों में भेदभाव और छंटनी, दोनों मामले शामिल हैं और उन्हें 'भेदभाव वाला व्यवहार' के दायरे में ही ले लिया गया है। एकदम से किसी दलित बच्चे को भगा देने के मामले बहुत कम मिले पर वे हैरान करने वाले भी थे। छह गांवों में प्रभावी जाति के लोगों ने दलित बच्चों को दोपहर का भोजन लेने ही नहीं दिया। लगभग 50 फीसदी मामले दलित द्वारा खाना बनाने पर ऊंची जाति के विरोध का था। दूसरा सबसे बड़ा भेदभाव दलित बच्चों को अलग बैठाने का था जो शिकायतों का 37 फीसदी है। 9.2 फीसदी मामले से अलग-अलग खाना खिलाने के थे। लगभग इतने ही मामले शिक्षकों द्वारा दलित बच्चों को कम या खराब खाना देने के थे।

इन मामलों से कुछ साफ सबक मिलते हैं। दोपहर का भोजन वाले केंद्र, दलित बस्तियों में या जातिगत बंटवारे से अलग स्थान पर हों, इसके लिए राज्य सरकारों को दलित महिला समूहों और इनके बीच काम करने वाले गैरसरकारी संस्थानों की मदद से चलाना चाहिए, आंध्र प्रदेश में खाना बनाने, बंटवाने और खाने का केंद्र तय करने में दलितों की हिस्सेदारी सबसे अच्छी है। वहां भेदभाव की शिकायतें भी सबसे कम मिलीं जबकि तमिलनाडु की बीच वाली स्थिति है। अब बहुत साफ है नफा-नुकसान का हिसाब आसान नहीं है, पर स्पष्ट लगता है कि योजना में दलितों की भागीदारी बढ़ने से भेदभाव घटा है। आंध्र प्रदेश की सफलता में सरकार द्वारा इस योजना में स्थानीय महिला समूहों की भागीदारी सुनिश्चित करने का भी योगदान है। दलित महिला समूहों के माध्यम से कार्यक्रम चलाने उनके सशक्तिकरण, प्रभाविता और भागीदारी सभी में वृद्धि होती है। इससे उनके बच्चे भोजन और शिक्षा के अधिकार में ही नहीं रोजगार के अधिकार के मामले में भी बेहतर भागीदारी करते हैं। दलित सशक्तिकरण को इस तरह मदद देकर सरकार भेदभाव मिटाने, पंहुच बढ़ाने और दलितों के लिए भोजन के अधिकार को एक वास्तविकता बनाने में उपकरण बना सकती है।

सहयोग – सुखदेव थोराट और जोएँल ली.

CH-100
15663 D06

बाक्स 4.6. एकीकृत बाल विकास सेवाएं और विकलांग बच्चे

चार राज्यों आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तर प्रदेश के 14 गांवों में एकीकृत बाल विकास सेवाओं में 'सामाजिक निषेध' का पता करने के लिए विस्तृत अध्ययन किया गया, उसमें यह हैरान करने वाला नतीजा सामने आया कि सर्वेक्षण वाले गांवों की आंगनवाड़ियों में एक भी विकलांग बच्चा नहीं आता था।

छत्तीसगढ़ ने ढाका और गुदरदेही गांव के सर्वेक्षणकर्त्ताओं के तीन विकलांग बच्चों (जो छह साल से बड़े लगते थे) की पहचान की पर उन्होंने कभी भी आंगनवाड़ी सेवाओं का लाभ पाने की बात नहीं स्वीकार की। झारखंड के बरही गांव में एकमात्र विकलांग बच्ची सुबाला का नाम अभी-अभी आंगनवाड़ी में दर्ज हुआ था। सुबाला की उम्र 18 साल है और वह जन्म से गुंगी-बहरी है। उसके मां-बाप की मौत हो चुकी है और वह अपने मामा के यहां रहती है। शुरू में वह स्कूल जाती थी पर बच्चों ने उसे बहुत चिढ़ाया और अध्यापकों ने भी सहयोग देने की जगह अपमानित ही किया। होम वर्क पूरा न करने पर अध्यापक ने एक दिन उसका नाम कक्षा के रजिस्टर से काट दिया और कहा कि उसे पढ़ना-लिखना नहीं आता। इसके बाद उसका नाम आंगनवाड़ी के रजिस्टर में दर्ज हुआ। वह इशारों से ही बात कर पाती है। उसने सिलाई केंद्र में भी नाम लिखवाया है और वहां सबसे तेजी से काम सीखने वालों में वह भी है। उसके मामा उसे पढ़ाना चाहते हैं पर गूंगों या विशेष जरूरत वाले बच्चों का स्कूल आसपास न होने से वे ऐसा नहीं कर पाते। उसे सिर्फ एकीकृत बाल विकास सेवा जैसी सरकारी योजना से कोई लाभ मिल सकता है।

ढाका, गुंदरदेही और सारंडा गांवों में सर्वेक्षण टोली छह वर्ष से कम उम्र के किसी विकलांग बच्चे से बातचीत नहीं कर पाई। पर बड़े विकलांग बच्चों और उनके मां-बाप से बात करने पर इस बात की पुष्टि हुई कि उन्हें कभी भी आंगनवाड़ी नहीं भेजा गया था। हाथकोंगड़ा गांव के अभिभावकों का तो मानना था कि यह योजना विकलांग बच्चों के लिए है ही नहीं। मानसिक रूप से बीमार बच्चों को उनके मां-बाप घर से भी बाहर नहीं जाने देते क्योंकि उन्हें डर होता है कि दूसरे बच्चे और बड़े लोग उन्हें परेशान करेंगे। झारखंड के बिल्ला गांव के दो विकलांग बच्चों को किसी भी एकीकृत बाल विकास सेवा का लाभ नहीं मिल पा रहा था क्योंकि उनके मजदूर मां बाप उन्हें आंगनवाड़ी केंद्र तक नहीं ले जा सकते थे। यही वक्त उनके काम का होता है। अधिकांश गांवों के अभिभावकों का मानना था कि आंगनवाड़ी उनके विकलांग बच्चों के लिए अच्छी जगह नहीं है, हां उन सबको भी यह लगता था कि अगर उनके बच्चों को भी दाखिला मिलता या वे अन्य बच्चों के साथ घुलते मिलते तो अच्छा होता।

उत्तर प्रदेश के हरदोई गांव की कहानी भी यही थी – वहां की आंगनवाड़ी में एक भी विकलांग बच्चा नहीं आता था। यहां भी अभिभावकों का मानना था कि यह कार्यक्रम विकलांग बच्चों के लिए है ही नहीं।

पांच वर्ष का प्रियांशु अपने पांवों से नहीं चल पाता और उसने आंगनवाड़ी देखी ही नहीं है। उसकी मां को इस योजना का पता है पर वह उसे वहां नहीं भेज सकती क्योंकि "भगवान ने ही इसे अलग बना दिया है।" आंगनवाड़ी से पंजीरी पाने वाले एक बच्चे की मां ने पूछा, "आंगनवाड़ी में वे सब क्या करते हैं?" पर प्रियांशु की मां की इच्छा है कि उसका बेटा भी वहां जाए, पंजीरी खाए, कविताएं याद करे, बच्चों से दोस्ती करे।

यह बात हैरान करने वाली है कि विकलांगता जो एक दोष माना जाता है – भले ही विकलांग बच्चा प्रभावी जात का ही क्यों न हो। जैसे, गांव के सरपंच की मानसिक रूप से बीमार बीमार बेटी को एकमात्र अतिरिक्त लाभ यही था कि वहां गांव में आजादी के घूम सकती थी। सर्वेक्षण टोली की गांव की पूरी यात्रा के समय वह उसके साथ-साथ रही पर लगातार उसके साथ लोग टोका-टोकी करते रहे, उस पर हंसते रहे। कई बार वह गालियां देने लगती थी और सरपंच की बेटी होने के चलते लोग उसकी गालियां बर्दाश्त कर लेते थे।

अधिकांश गांवों में बहिष्कृत जातियों के लोगों का मुहल्ला कुछ दूर होता है और वहां रहने वाले विकलांग बच्चों की मुसीबतें और भी बढ़ जाती हैं। वैसे ही वे लोग गरीब, छोटी जाति के, कमजोर होने के चलते अलग किए गए होते हैं। ऐसा ही एक परिवार डाल्टेनगंज के शकूर मियां का था जो रिक्शा चलाते हैं। लंबी बिमारी से उनका एक पैर सुन्न पड़ गया और वे रिक्शा चलाने से असमर्थ हो गए। परिवार का पेट पालने के लिए भीख मांगने का ही विकल्प रह गया। पर उनके 18 महीने के बेटे या विकलांग और गर्भवती पत्नी को एकीकृत बाल विकास सेवाओं का कोई लाभ नहीं मिलता। वे गांव के बाहर रहते हैं।

ऐसा ही उदाहरण झारखंड के ही पोखराखुर्द गांव के सर्फुद्दीन अंसारी और उनकी पत्नी मेमन बीबी का है। दोनों ही विकलांग हैं। सर्फुद्दीन बिना सहारे के चल नहीं पाते और मेमन बीबी देख नहीं सकती। उन्हें दो साल की बच्ची है जिसे आंगनवाड़ी से कभी कोई भोजन नहीं मिला। मेमन को उनकी गर्भावस्था और लरकोरी रहने के दौरान किसी तरह की मदद नहीं मिली। सर्फुद्दीन दर्जी की दुकान पर काम करते हैं और रोज 20-25 रुपए कमा लेते हैं। वे भी गांव के सिवान के बाहर रहते हैं। उन्हें एकीकृत बाल विकास सेवाओं की कोई जानकारी नहीं है और ना ही उन्हें उसका कोई लाभ मिलता है।

सहयोग – कुमारन और हर्ष मंदर

बाक्स 4.7. प्रवासी और दिहाड़ी मजदूरों के बच्चे

आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तर प्रदेश के 14 गांवों का अध्ययन करे वालों ने पाया कि एकीकृत बाल विकास सेवा योजन से भूमिहीन मजदूर और छोटे किसान कम ही लाभ पाते हैं क्योंकि उन्हें काफी लंबे समय तक बाहर कमाने जाना पड़ता है। जैसे छत्तीसगढ़ के जिन चार गांवों का अध्ययन किया गया वहां की खेती पूरी तरह बारिश पर निर्भर करती है और खाली समय में काफी सारे लोग कमाने के लिए बाहर चले जाते हैं। आंध्र प्रदेश में भी से काफी सारे लोग ईंट भट्टों में काम करने चले जाते हैं। ऐसे 'प्रवासी' परिवारों के बच्चों को एकीकृत बाल विकास सेवाओं को उस अवधि में कोई लाभ नहीं मिलता जब वे बाहर चले जाते हैं जबकि उनका नाम स्थानीय आंगनवाडी में चलता रह सकता है।

झारखंड और उत्तर प्रदेश के सर्वेक्षण वाले गांवों में खेती का काम न रहने पर अपनी जीवन बचाने और पेट पालने के लिए मजदूरों का बाहर निकल जाना बहुत आम है। झारखंड, के रेजो गांव के भूमिहीन दलित परिवार खेती का काम करने के अलावा रिक्शा चलाने और हजामत का काम भी जानते हैं। औरतें रोज लगभग 10 रूपए और पुरुष 20 रुपए कमा पाते हैं। सो उन्हें कमाने के दूर-दराज के इलाकों में जाना होता है। जिससे पेट भरने के अलावा गांव के ताकतवर यादवों का कर्ज भी चुकाने लायक पैसे मिल सकें। रेजो गांव की आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता भी मानती है कि यहां के लोग काफी गरीब है। वे, घर में खाना न हों तो उन परिवारों को भी पूरक पोषाहार दे देती हैं भले ही उनके बच्चों का नाम आंगनवाड़ी न हो। सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के प्रति आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता की इतनी सहानुभूति पूर्ण व्यवहार कम ही जगहों पर देखने में आता है।

रेजो गांव से बाहर काम करने गए अधिकांश परिवारों के लोग एकीकृत बाल विकास सेवाओं से वंचित ही हैं। कामेश्वर दास का बेटा अशोक पंजाब कमाने जाता है। उसका दो साल का बेटा आंगनवाड़ी नहीं जाता इसलिए उसे पूरक पोषाहार नहीं मिलता। उसके परिवार को घर ले जाने वाले आहार, टीकाकरण या स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में सूचित नहीं किया गया है न ही उसके घर पर आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता परामर्श के लिए आती है। परिवार के लोग खुद से भी उससे मांगने या कहने नहीं जाते। उन्हें किसी भी सरकारी योजना से भोजन या जीविका की मदद नहीं मिलती और वे अपनी दिहाड़ी मजदूरी पर ही गुजर करते हैं। जब उनके इस तरह बाहर होने के बारे पूछा गया तो उनका जवाब था कि "हमारे नसीब में यही है।"

जब उसी गांव में या आसपास में रोजगार हों तब भी वहां काम करने वालों को इन सेवाओं का लाभ नहीं मिलता। ढाका (छत्तीसगढ़) के पास पत्थर खदान थी तो हाथकोंगडा (छत्तीसगढ़) में बीड़ी बनाने का काम होता था। ऐसे मामलों में लोग मजदूरी का नुकसान उठाकर इन सेवाओं का लाभ लेना होशियारी या फायदेमंद नहीं मानते। जहां मां-बाप दोनों मजदूरी करते हों वहां आम तौर पर पले बच्चों की देखरेख का काम अपेक्षाकृत बड़े बच्चों, खासकर लड़कियों पर छोड़ दिया जाता है। वे भी आंगनवाड़ी नहीं जा पातीं जबकि वे इसके लिए योग्य हैं। आंगनवाड़ी खुलने का समय भी मजदूरी के समय पर होता है। नौ से एक बजे तक आंगनवाड़ी खुलती है और यही वक्त काम का काम होता है।

कल्लू और उसके चार बच्चे झारखंड के पुलवारा में रहते हैं। वह बिहार – उत्तर प्रदेश सीमा पर रिक्शा चलाता है। वह भी लगातार बाहर जाता है और कभी महीने बाद तो कभी पखवाड़े बाद ही घर आता है। वह सारी सरकारी सेवाओं से वंचित हैं और उसके पास राशन कार्ड भी नहीं है। उसकी पत्नी अम्रता देवी लरकोरी है पर आंगनवाड़ी में उसका नाम दर्ज नहीं है। उसके यहां कभी आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता या सहायक नर्स नहीं नहीं आई। कल्लू रहता है कि उसके पास आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता या सहायक नर्स नहीं आई। कल्लू कहता है कि उसके पास आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से इस बारे में बात करने की भी फुरसत नहीं है।

झारखंड के बिल्ला गांव के भूमिहीन मजदूर एक या दो-दो महीने के लिए कमाने चले जाते हैं। हमने ऐसे दो परिवार देखें जिसके पुरुष कमाने चले गए पर घर में बच्चे थे, जो आंगनवाड़ी जाने की उम्र के थे, पर वे वहां नहीं जाते थे। प्रवासी होने के चलते उनके काम की जगह पर तो हर तरह की परेशानी और दबाव झेलना ही होता है, गांव में रहे उनके बीबी-बच्चों को भी सरकारी कार्यक्रमों से कोई लाभ नहीं मिलता।

इम्तियाज अंसारी डाल्टेनगंज शहर में रिक्शा चलता है। उसकी तीन साल की बेटी को आंगनवाड़ी से पूरक पोषाहार नहीं मिलता पर उसे आंगनवाड़ी वाली बहन जी ने ही टीके दिलवा दिए थे। दिलीप कुमार महतो उसी गांव का एक और भूमिहीन मजदूर है। छह साल से कम उम्र के उसके चार बच्चे हैं – उसकी बीबी सुशीला देवी और उसके बच्चों को आंगनवाड़ी केंद्र से कोई आहार नहीं मिलता। वे आंगनवाड़ी आने की फुरसत भी नहीं होती। वे दूसरे अनेक लोगों की तरह इस योजना और अन्य सरकारी सेवाओं से वंचित ही रहते हैं।

सहयोग – हर्ष मंदर और कुमारन

देखा है जाति, वर्ग और लिंग की पारंपरिक बंदिशों के ऊपर आकर एक दूसरे से मेल मिलाप को बढ़ावा देना इस योजना के 'समाजीकरण' वाले महत्वपूर्ण पक्ष को बताता है।

"विभिन्न जातियों में काफी जातिगत भेदभाव हैं, पर आंगनवाड़ी के कामकाज पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, हरिजन है, फिर भी बड़ी जाति के बच्चे आते हैं, यहां खाते-खेलते हैं।"

और अंत में अगर हम इस योजना से सामाजिक समता के मुख्य मुद्दे पर गौर करें तो पाएंगे कि पारंपरिक भेदभाव असल में इस योजना का ढंग से उपयोग न हो पाने के चलते ही आ जाते हैं। इस रोग को कई तरीकों से रोका जा सकता है और योजना के समाजीकरण वाले पहलू पर जोर देते हुए कमजोर वर्ग के बच्चों को सही अर्थों में प्राथमिकता दी जा सकती है। जैसाकि पहले कहा गया है इसका अंतिम लक्ष्य 'सबको स्तरीय सेवा' देना न होकर 'सबको समान और स्तरीय' सेवा देना है।

इन हिस्सों में हमने सामाजिक भेदभाव के मसले को मुख्यतः जाति के संदर्भ में ही देखा है। लेकिन यह बात याद रखने योग्य है कि सामाजिक भेदभाव अनेक रूपों में होता है और इसके शिकार कई तरह के लोग होते हैं : सिर्फ दलित या आदिवासी बच्चे ही नहीं विकलांग बच्चे, अप्रवासी बच्चे, सड़कों पर जीवन गुजारने वाले बच्चे वगैरह भी इसका शिकार होते हैं। हमने इस अध्याय में दिए गए बाक्सों में इनमें से कुछ कमजोर समूहों के बच्चों की आवाज को उठाने का प्रयास किया है।

5. आंगनवाड़ियों का हाल

निधि विज

इस अध्याय में हम एकीकृत बाल विकास सेवा योजना की खास सेवाओं पर जमीनी हकीकत जानने का क्रम जारी रखेंगे। 5. 1 और 5.1 अनुच्छेदों में हम पोषाहार सेवाओं पर नजर डालेंगे और 5.3 तथा 5.4 अनुच्छेदों में स्कूल पूर्व-शिक्षा पर। जैसा कि अध्याय तीन में कहा गया है अलग-अलग सेवाओं को एक दूसरे से जोड़ कर ही देखना चाहिए-एकदम अलग नहीं। ये सेवाएं एक दूसरे को मदद करती हैं और इनको सुगमता के साथ मिलना भी इस योजना का एक प्रमुख लक्ष्य है। फिर भी हर सेवा के साथ अपने खास मुद्दे जुड़े हैं और वे अपने पर ज्यादा ध्यान देने वाले प्रयासों की मांग भी करते हैं।

5.1 पूरक पोषाहार कार्यक्रम

प्रसिद्ध लेखक और कलाकार पिपटे मैक ओरलॉन के अनुसार, "मानवता सबसे

ज्यादा और सबसे पहले पेट ही है।" किसी को इस कथन से असहमति हो सकती है, पर यह निश्चित रूप से बच्चों और खासकर नन्हें शिशुओं पर लागू होती है। दरअसल फ्रांस में अपने बचपन के दौरान पड़े अकाल के अनुभवों के आधार पर ही सैम ओरलान ने यह बयान दिया था। निस्संदेह बहुत सारे भारतीय बच्चे भी ऐसा ही मानते हैं। बच्चों को भूख से बचाना उनके मौलिक अधिकारों की रक्षा का पहला कदम है।

घरेलू भोजन और पूरक पोषाहार*

बच्चों के स्वस्थ्य विकास के लिए पर्याप्त भोजन ही सबसे जरूरी चीज है। यह बात वैसे तो पूरे बचपन के लिए सही है, पर तीन वर्ष की उम्र तक उसका सबसे तेज विकास होता है और बच्चा भोजन के लिए मां और परिवार के ऊपर ही पूरी तरह निर्भर रहता है। अपर्याप्त खाने से सिर्फ उसका वजन ही कम नहीं होगा। उसके हर किस्म का विकास प्रभावित होगा। कमजोर बच्चे को बीमारियां और संक्रमण बहुत जल्दी लगता है।

बच्चे के खाने में सबसे ज्यादा ध्यान भोजन से जल्दी मिलने वाली ऊर्जा का होना चाहिए जिसकी गिनती आम तौर पर कैलोरी के हिसाब से होती है। बच्चे की सक्रियता और विकास दोनों के लिए ऊर्जा की जरूरत होती है और यही चीज़ उसे रोगों के संक्रमण से भी बचाती है। बच्चों का शरीर कितना ही छोटा हो उनको ज़्यादा ऊर्जा की ज़रूरत होती है। एक बच्चे को प्रति दिन अपने शरीर के वजन के प्रति किलो के लिए 120 कैलोरी ऊर्जा की जरूरत होती है। इसलिए आम तौर पर एक या दो साल के बच्चे को रोज 1000 कैलोरी ऊर्जा देने वाले आहार की जरूरत होती है। और दिलचस्प तथ्य यह है कि उनकी माताएं जो भोजन करती हैं यह उसको मिलने वाली ऊर्जा का आधा होता है। इतनी कैलोरी लेने के लिए बच्चे को बार-बार और उचित आहार देने की जरूरत होती है। काफी सारे बच्चों को उनकी जरूरत से कम आहार मिलता है क्योंकि उन्हें कितना आहार चाहिए इसका ठीक पता नहीं रहता या फिर उनको दिए जाने लायक आहार जुटा पाना माँ-बाप के बस में नहीं होता।

बच्चों के आहार में कैलोरी के अलावा पर्याप्त प्रोटीन, वसा, लवणों और विटामिनें की भी जरूरत होती है। (देखें बाक्स 5. 1) ये चीजें खाने-पीने की अलग अलग चीजों में पाई जाती है और कुछ तो सिर्फ एकाध खाद पदार्थों में ही पाई जाती हैं। जैसे हरी पत्तेदार सब्जियों में लोहा और विटामिन सी होता है पर कैल्शियम नहीं। इस लिए अच्छे पोषण और स्वास्थ्य के लिए जरूरी है, कि हम संतुलित आहार लें जिसमें सभी जरूरी चीजें शामिल हों। भारतीय लोगों की खुराक में सिर्फ कैलोरी की ही कमी नहीं होती उसमें अनेक पोषक तत्व भी काफी कम होते हैं। जैसे 4-6 वर्ष उम्र के बच्चों के भोजन में भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा तय मानक की तुलना में विटामिन ए में औसतन 16 फीसदी, लोहे की 35 फीसदी और कैल्शियम की लगभग 45 फीसदी कमी होती है।

एकीकृत बाल विकास सेवा का एक मुख्य हिस्सा है 'पूरक पोषाहार कार्यक्रम', अतिरिक्त पोषक भोजन की जरूरत के पीछे यह तथ्य है कि घर पर पर्याप्त पोषक भोजन मिलने की उम्मीद नहीं रहती। ऐसा गरीबी, समय की कमी, बच्चों के पोषण की जरूरतों के प्रति अज्ञानता और लापरवाही, खाने-पीने की गलत आदतों और (कुछ मामलों में) मां-बाप की उपेक्षा के कारण होता है। सो उन्हें पर्याप्त और अच्छा पूरक पोषाहार देना जरूरी रहता है: पहला हिस्सा तो सिर्फ कैलोरी का हिसाब बढ़ा देता है, पर दूसरा हिस्सा बच्चे के भोजन की क्वालिटी सुधारने और इसमें विविधता लाने से जुड़ा है। अगर क्वालिटी का ध्यान दिए बगैर सिर्फ मात्रा ही बढ़ा दी जाए तो इसका ज्यादा लाभ नहीं होता – बल्कि कई बार वह नुकसानदेह भी हो सकता है। जैसे, उत्तर प्रदेश की कई आंगनवाड़ियों में पाया गया कि बच्चे रोज-रोज वही बासी पंजीरी खाते थे। और अगर इससे उनकी भूख मर जाती थी और वे घर का ज्यादा पोषक खाना कम मात्रा में खा पाते हों तो जाहिर तौर से इससे लाभ की तुलना में ज्यादा घाटा ही हो गया। खराब खाद्य पदार्थों की आपूर्ति से मां-बाप को भी एक गलत संदेश जाता है, "बच्चे कुछ भी खा लेते हैं" और फिर उनकी पोषक जरूरतों का ख्याल नहीं रखा जाता।

पूरक आहार को कभी भी घर में प्रभावी खानपान का विकल्प नहीं बनने देना चाहिए। मां-बाप और खास तौर से माताएं ही अपने शिशुओं के खान-पान और पोषण संबंधी जरूरतों का सबसे अच्छा खयाल रखती हैं। उनमें ही सबसे ज्यादा तत्परता होती है कि उनके बच्चे स्वस्थ रहें और अच्छा खाएं पिएं। मां-बाप को ही बच्चों के अच्छे पालन पोषण लायक समर्थ बनाना ही बच्चों के अल्प पोषण और कुपोषण का सबसे अच्छा इलाज है। निश्चित रूप से भारत में हर जगह

खाने पीने की इतनी चीजें मिलती हैं कि बच्चों के पोषण संबंधी सारी जरूरतों स्थानीय स्तर पर पूरी हो सकती हैं। लेकिन जब तक ये चीजें हासिल नहीं हो जातीं तब तक इस पूरक पोषाहार योजना की एक महत्वपूर्ण भूमिका है लेकिन इसके चक्कर में हमें बच्चों के घर में उनके खान पान की स्थिति सुधारने के महत्व को नहीं भूलना चाहिए।

पूरक पोषण

एकीकृत बाल विकास सेवा के अधीन चलने वाले पूरक पोषाहार से कम से कम चार उद्देश्य पूरे होते हैं : पोषण का उद्देश्य, प्रोत्साहन का उद्देश्य, अच्छा लगने का उद्देश्य और समाजीकरण का उद्देश्य। पूर्ववर्त्ती हिस्से में पोषण वाले पहलू की चर्चा हो चुकी है। निश्चित रूप से इस कार्यक्रम का यही मुख्य उद्देश्य है। अनेक अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि अगर पूरक पोषाहार का

बाक्स 5.1. माँ का दूध पिलाओ, कुपोषण भगाओ

मां का दूध पाना बच्चे का अधिकार है। प्रत्येक बच्चे को जन्म के समय से ही कम से कम छह माह तक तो सिर्फ मां के दूध पर ही रखना चाहिए। जब प्रसव के बाद गर्भनाल कटा न हो और बच्चे को नहलाया भी नहीं गया हो तभी से दूध पिलाना शुरू हो जाए तो और भी उत्तम होता है। सामान्य तौर पर सभी माताएं अपने बच्चे को स्तनपान कराती हैं पर सिर्फ स्तनपान पर बच्चे को रखने का अनुपात अगर एक महीने के अंत में 72 फीसदी हो जाता है तो छह महीने के बाद 20 फीसदी ही। विश्व स्वास्थ्य संगठन पहले छह महीनों तो सिर्फ स्तनपान पर बच्चों को रखने का सुझाव देता है। काफी सारी माताएं पहले दिन का दूध यह सोचकर बाहर निकाल देती है कि इसे पिलाना बच्चे के लिए नुकसानदेह होगा।

निश्चित रूप से स्तनपान कराने की स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं है पर छह महीने के बाद बाहरी आहार देने की स्थिति तो और भी बदतर है। बच्चों में कुपोषण की स्थिति बहुत शुरू से ही बन जाती है। छह महीने के लगभग 12 फीसदी बच्चे अपेक्षित वजन से कम होते हैं। पर कुपोषण रोकने की असली उम्र जन्म से लेकर दो वर्ष तक की होती है। इसलिए कुपोषण रोकने का प्रयास घर के स्तर से ही शुरू हो जाना चाहिए। इन प्रयासों को एकीकृत बाल विकास सेवाओं और स्वास्थ्य सेवा के लोगों द्वारा समर्थन किया जाना चाहिए। इस काम में गांव - समाज की बुजुर्ग महिलाओं की मदद भी लेनी चाहिए जो बच्चे पालने का काफी अनुभव रहती हैं।

भारत में आम तौर पर अनाज और दाल मिलाकर खाने का चलन है। उतर में दाल-रोटी, मिस्सी-रोटी या चावल-दाल और दक्षिण में इडली, सांभर, डोसा या उपमा आम भोजन है। अनाज और दाल के मिलने से उनका कुछ पोषण मूल्य बढ़ जाता है। 'गरम' और 'ठंडा' खाना भी कोई पिछड़े सोच की निशानी नहीं है। यह जलवायु और चीजों की उपलब्धता के आधार पर बनी मान्यता है। पर भात खाना लीवर को नुकसान पंहुचाता है और केला खाने से खांसी होती है, जैसी मान्यताओं को सावधानी से खत्म करना होगा।

पहले छह महीने तक बच्चे को स्तनपान से ही पूरी खुराक, पूरी ऊर्जा मिलती है। छह महीने से एक साल के अंदर बच्चे को अतिरिक्त जरूरतों के साथ साथ आइरन, जिंक और विटामिन जैसे लवणों की जरूरत होती है। मां का दूध छूड़ाने वाले भोजन में कुछ खास गुण होने चाहिए; इन्हें ज्यादा ऊर्जा और पोषक तत्वों वाला, साफ और सुरक्षित, नरम और निगलने लायक तथा बनाने में सुविधा जनक होना चाहिए।

जब पहली बार ठोस आहार शुरू कराया जाए तो यह 2-3 चम्मच नहीं होना चाहिए। धीरे -धीरे मात्रा और भोजन देने की बारंबारता भी बढ़ाते जाना चाहिए। एक वर्ष के बच्चे को दिन में 4-5 बार खाना और साथ ही मां का दूध भी मिलना चाहिए। इसके साथ ही परिवार में बनने वाला सामान्य खाना भी थोड़ा-थोड़ा और मसलकर खिलाना चाहिए और ज्यादा मिर्च-मसाला बच्चे के मुंह में न जाए इसका ख्याल रखना चाहिए। विशेष आहार की जगह ऐसा भोजन ज्यादा झमेले वाला नहीं होता और इसमें ज्यादा पैसा भी नहीं लगता।

छह महीने के बच्चे को केला मसल कर, सूजी, पिसी हुई गाजी या चावल से बने आहार देने चाहिए। चीकू और पपीता जैसे मौसमी फल भी दिए जा सकते हैं। सेव और नाशपाती देनी हो तो थोड़ा उबाल देने से बच्चों को उन्हें पचाने में आसानी हो जाती है। दाल में खूब मसल कर भात या रोटी जैसी चीजें भी धीरे-धीरे देना शुरू करना चाहिए। इस उम्र के बच्चों को दिन में 3-4 बार आहार देना चाहिए।

जब बच्चा 9 महीने से बड़ा हो जाए तो घर में बनने वाली कई चीजें भी उसको मसलकर खिलाई जा सकती है। इनमें दाल, रोटी, दलिया, दही, उपमा, इडली, डोसा, दही, चावल वगैरह शामिल है : उबला अंडा भी दिया जा सकता है। साल भर का हो जाने के बाद से बच्चा घर में दूसरे लोगों के लिए बना भोजन खा सकता है। मांस, मुर्गा और मछली भी मसल कर खिलाया जा सकता है – अगर परिवार मांसाहारी हो तब।

अगर मां न हो तो दादी, चाची या कोई भी स्नेह करने वाली महिला बच्चे को खिलाने का काम कर सकती है। किशोरियां भी खाली समय में उनको खिला-पिला सकती हैं। बच्चे को उनके बरतन अलग देने चाहिए जिससे उसे दिए जाने वाले भोजन की मात्रा का अंदाजा ठीक रह सके। बच्चे और खिलाने वाले का हाथ साफ रहे यह बताने की जरूरत नहीं है। बच्चे को दिए जाने वाला भोजन न तो ज्यादा गर्म होना चाहिए न ठंडा और इसमें ज्यादा मिर्च-मसाला भी नहीं होना चाहिए, मां की तरफ से नहीं। बच्चे को ज्यादा खिलाने की कोशिश न करें। डांटना-फटकारना वह भी खाने के लिए तो एकदम नहीं होना चाहिए।

बच्चा और खिलाने वाले दोनों के लिए आहार का वक्त खुशी का समय होना चाहिए। कई बच्चों को खाते हुए लोरी सुनना या कहानी सुनने में मजा आता है। कई तस्वीरों वाले किताब देखना पसंद करते हैं। इन सबसे बच्चे को आहार देना मजेदार बन जाता है।

सहयोग – शांति घोष

बाक्स 5.2. अव्यक्त भूख और संभावित मदद

'अव्यक्त भूख' सामान्य भूख से अलग होती है। सामान्य भूख का मतलब है हर कुछ घंटे के बाद पेट भरने की जरूरत। अल्प-पोषित और कुपोषित बच्चों को पहली जरूरत तो इसी तरह के भोजन की होती है। पहले तो कैलोरी और प्रोटीन का हिसाब ही पूरा होना चाहिए।

दूसरी भूख है – अव्यक्त भूख जो सूक्ष्म पोषण तत्वों की कमी से होती है। विटामिन, लोहा, जिंक, कैल्शियम जैसे खनिज तत्वों की जरूरत शरीर को रहती है। पर बहुत अल्प मात्रा में। और इसके लिए कोई बच्चा या उसके मां-बाप आवाज लगाकर नहीं बताते हैं कि बड़ी भूख लगी है – खाने को दो। दरअसल इस भूख की पहचान भी खुद से काफी मुश्किल है। पर इनकी कमी सभी को और खासतौर से बच्चों को काफी मुश्किलों में डाल सकती है, उनके व्यवहार को बदल सकती है। जैसे अगर विटामिन ए की कमी हो रतौंधी से लेकर कमजोर होने जैसी कई गड़बड़ियां हो सकती हैं। सांस की तकलीफ भी हो सकती है। ज्यादा कमी तो पूर्ण अंधापन भी हो सकता है। रक्तलपता भारत की आम बीमारी है – खासकर लड़कियों और महिलाओं की। इससे मानसिक और शारीरिक चुस्ती-फुर्ती में कमी आती है, बच्चों की पढ़ाई लिखाई प्रभावित होती है। अगर आयोडीन कमी हो तो घेंघा निकल आता है, बोलना, सुनना और सोचना भी प्रभावित होता है। जिंक की कमी से बच्चे की लंबाई कम हो जाती है। विटामिन सी की कमी से स्कर्वी रोग विटामिन बी और नियासिन की कमी से पेलाग्रा या विटामिन ए की कमी से रतौंधी पहले बहुत आम थी, पर अब इन पर काफी हद तक काबू पा लिया गया है। पर अभी भी 'अप्रकट भूख' बहुत है और इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

लौह तत्व, विटामिन ए और आयोडीन की कमी दूर करने के लिए कई राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। पर एकीकृत बाल विकास सेवा के दोपहर का भोजन या अन्य सेवाओं के साथ मिलकर चलने का इनका रिकार्ड कोई बहुत अच्छा नहीं है।

एक से छह वर्ष की उम्र के बच्चों को रोग से बचने और अच्छे स्वास्थ्य के लिए रोज इन सूक्ष्म पोषक तत्वों की बहुत थोड़ी-थोड़ी मात्रा जरूरी होती है। और इसे पूरा करने का एक संभावित तरीका है सूक्ष्म पोषक तत्वों के कम मूल्य वाले पैकेज तैयार करना। लगभग दो ग्राम वजन और दो रुपए मूल्य की पुड़िया के रूप में इसे उपलब्ध कराना सस्ता, सुविधाजनक होगा। ऐसे पोषक तत्वों को बच्चों के आहार, मांजी या रोटी में मिलाकर भी खिलाया जा सकता हे। बार्ली-माल्ट (जौ के आहार) की एक ग्राम मात्रा को इस पुड़िया में मिलाकर सामन्य भोजन में लेने से पोषक तत्व पूरे का पूरा मिलता है। इसे आंगनवाड़ियों में, पान या पंसारी का दूकानों पर, दवा की दूकान पर या सुपर मार्केट में वैसे ही बेचा जाता है जैसे पान मसाला या अन्य काफी चीजें बेची जा रही हैं। इसे लाना ले जाना समस्या नहीं है और ना ही यह जल्दी खराब होता है।

ऐसी पुड़िया को इस सेवायोजना के दायरे के सार्वभौमिकरण में, बांटा भी जा सकता है। अगर उस सेवाओं को सबके लिए लागु किया गया तो कुछ और सूक्ष्म पोषक तत्वों को उसमें शामिल किया जा सकता है। इस बारे में कुछ सुझाव यहाँ दिये गये हैं। सबसे पहले तो दो वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए दूध और अन्य शिशु आहारों को बिना ऐसे सूक्षम पोषक तत्वों के बेचने पर रोक लगाई जाए। इन तत्वों को जोड़ने से ऐसे पदार्थों की कीमत में 1-4 फीसदी की ही वृद्धि होगी। पर ऐसे डिब्बाबंद आहार मंहगे हैं। जैसे आयोडीन युक्त नमक बनते समय एक रुपए किलो का होता है पर घर की रसोई तब आते-आते इसकी कीमत 7 से 10 रुपए हो जाती है। इसीलिए केंद्र और राज्य सरकारों को ऐसे काम में अनुदान देना चाहिए।

दूसरा तरीका है पेट के कीड़े मारने की दवा, विटामिन ए, आइरन की गोलियां और आयोडीन नमक का 'एक में चार' पैकेट तैयार करके स्कूलों में बांटने का है। ऐसा पैकेट 3 करोड़ से ज्यादा स्कूली बच्चों को बांटने का काम किया भी जा चुका है। गुजरात में 35 लाख, कर्नाटक में 1.1 करोड़, तमिलनाडु में एक करोड़ और आंध्र प्रदेश में 75 लाख बच्चों को ऐसे पैकेट दिए गए हैं। ऐसी पहल को दोपहर का भोजन के साथ जोड़ा जा सकता है। अभी दोपहर का भोजन सामान्य भूख को मिटाने का प्रयास करता है, अप्रकट भूख को नहीं। ऐसा पैकेट उन संस्थानों में भी उपलब्ध कराया जा सकता है जहां लोग बड़ी संख्या में होते हैं, जैसे होटल, आंगनवाड़ी, अस्पताल, दफ्तर, कारखाने, बागान वगैरह।

तीसरा काम आयोडीन नमक कार्यक्रम पर और जोर देने का है।

आखिरी काम डाक्टरों, मीडिया और आम लोगों के लिए सूचनाएं देने, परामर्श देने, कुछ चीजों को प्रदर्शित करके दिखाने का है। प्रचार के लिए टीवी और रेडियो जैसे माध्यमों की मदद भी ली जा सकती है।

सहयोग – तारा गोपालदास

चुनाव ढंग से किया जाए तो यह बच्चों के कुपोषण को कम करने में बहुत मददगार होता है। जैसे ... इससे भी बड़ी बात यह है कि इस योजना से ऐसे समुदाय के बच्चों को भुखमरी से बचाया जा सकता है, जिनके यहां भोजन का हिसाब भी ढंग से नहीं चलता (जैसे मुसहर या सहरिया)।

प्रोत्साहन वाले उद्देश्य का मतलब, इस आहार के आकर्षण से बच्चों का आंगनवाड़ी आना बढ़ा है। आप, सोच सकते हैं कि बच्चों को तो अपने मन से वहां आना चाहिए, उनको गरम खाने की सुगंध की 'घूस' देने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। पर यह सोचना नादानी या लड़कपन ही होगा कि इतनी कम उम्र के बच्चों या उनसे मां-बाप को आंगनवाड़ी का महत्व समझ में आ

जाएगा और वे उसी समझ से वहां आने लगेंगे। ऐसे में अगर अच्छी चीज खाने को मिले तो बच्चों को आंगनवाड़ी नियमित रूप से आने का प्रोत्साहन मिलेगा। इतना ही नहीं, मुफ्त भोजन का आकर्षण कैसा और कितना होता है यह हर स्थितियों में भारत में और हर कहीं दिख चुका है। जैसे कई अध्ययनें से यह स्पष्ट हुआ है कि जब से प्राथमिक स्कूलों में दोपहर का पका हुआ भोजन मिलने लगा है, वहां उपस्थिति का स्तर काफी बढ़ गया है (खेड़ा, 2006)

अच्छा लगने वाले उद्देश्य का मतलब बच्चों को आंगनवाड़ी तक आकर्षित करना ही नहीं, वहां पंहुचना, उनको अच्छा लगे यह भी है। वहां कुछ अच्छा खाने को मिलता है, यह भावना उस जगह को ज्यादा सुखद और दोस्ताना बनाती है। अगर गांव वाले किसी आयोजन या त्यौहार में बच्चों के लिए कुछ खास खाना बनवाते हैं तो इसका उद्देश्य कैलोरी की गिनती बढ़ाना या हाजिरी बढ़वाना नहीं होता। इसका मतलब बच्चों को मस्ती कराना, उनको खुश करना होता है। अच्छा लगने वाले उद्देश्य का यही मतलब है।

फिर सामाजीकरण का उद्देश्य भारतीय बच्चों के मन में जाति, वर्ग और लिंग के भेदभाव को समाप्त करना है। बच्चों के मन में जातिगत पूर्वाग्रह बनाने में खाने-पीने पर रोक टोक की बहुत बड़ी भूमिका होती है। सो शिशु वय में ही बच्चों के मन में इस चीज़ को समाप्त करने से सामाजिक समानता के मामले में बहुत लाभ होता है। बच्चों के लिए जाति का कोई मतलब नहीं होता और जब वे दूसरी जाति वालों के साथ मिल-जुलकर खाने-पीने लगेंगे तो इस बात की ज्यादा संभावना है, कि बड़े होने पर भी उनके मन में कोई भेदभाव नहीं आएगा। और कुछ आंगनवाड़ियों में (देखें अध्याय-4) ऊंची जाति के मां-बाप द्वारा अपने बच्चों को दलितों या नीची जाति वालों के साथ खाने से रोकने का प्रयास करना यही बताता है, आंगनवाड़ियों का यह प्रयोग सत्ता के पारंपरिक ढांचे को तोड़ रहा है।

यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि पूरक पोषाहार का यह कार्यक्रम इन उद्देश्यों में किस हद तक सफल होता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि कितने

चार्ट : 5.1. एकीकृत बाल विकास सेवा में क्वालिटी का अंतर : पूरक पोषाहार कार्यक्रम

	तमिलनाडु	"सक्रिय राज्य"[a]	"निष्क्रिय राज्य"[a]	उत्तर प्रदेश	फोकस स्टेटस[a]
प्रतिशत माताओं का जवाब था कि :					
स्थानीय आंगनवाड़ी में पूरक पोषाहार मिलता है	93	94	93	94	94
नियमित रूप से आहर बंटता है[b]	100	95	72	54	83
आंगनवाड़ी के बच्चों का 'पूरक आहर मिलता है'[b]	100	87	48	32	68
प्रतिशत जवाब देनेवालों को खाना खराब लगा :					
माताए[b]	7	15	35	55	26
आंगनवाड़ी कार्यकर्ता	0	2	20	35	11
प्रतिशत जवाब देने वालों को लगता है कि भोजन की मात्रा पर्याप्त न थी :					
माताएं[b]	2	13	54	69	33
आंगनवाड़ी कार्यकर्ता	3	12	28	33	20

[a] "सक्रिय राज्य" : हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, निष्क्रिय राज्य : छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, फोकस राज्य इन छहों को कहा जाता है।

[b] "आधार : जिन माताओं ने कहा कि स्थानीय आंगनवाड़ी में पूरक पोषाहार दिया जाता है।

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004

अच्छे और साफ-सुथरे ढंग से खाना खिलाने की व्यवस्था चलती है। फोकस सर्वेक्षण में आगे विभिन्न राज्यों की आंगनवाड़ियों की स्थिति इन मामलों में अलग-अलग है।

पूरक पोषाहार योजना के बारे में माताओं और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के नज़रिए से भी यही तस्वीर उभरती है, जो चार्ट 5.1 में दी गई है। महाराष्ट्र और तमिलनाडु में प्रायः सभी माताएं आहार की मात्रा और क्वालिटी को लेकर संतुष्ट थी। उत्तर-भारत में मात्रा और क्वालिटी दोनों को लेकर भारी शिकायतें थीं। उत्तर प्रदेश, जो पूरक पोषाहार में सबसे बदहाल था, की उन माताओं में, जो सर्वेक्षण में आईं, आधी से ज्यादा आहार की मात्रा और क्वालिटी को घटिया मानती थीं। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की राय मोटे तौर पर ऐसी ही थी पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में संतुष्टि का स्तर थोड़ा ऊंचा था। अब वे खुद इस काम को करने वाली हों तो अपने माल को तो अच्छा कहना ही पड़ेगा।

पके पकाए आहार की ज़रूरत

एकीकृत बाल विकास योजना में तीन वर्ष से कम और तीन वर्ष से ऊपर के बच्चों के लिए आम तौर पर अलग-अलग पोषाहार देने की व्यवस्था है। 3-6 वर्ष के बच्चों को आमतौर पर आंगनवाड़ी में ही बैठाकर खिलाया जाता है। नन्हें बच्चों को आंगनवाड़ी में ही खिलाना आसान नहीं है, क्योंकि उनको संभालने के लिए फिर माताओं को भी होना पड़ेगा। इसी चलते उनको आहार घर ले जाने दिया जाता है।

इन नन्हें-मुन्नों की बात अभी छोड़ दें तो, जिनको आंगनवाड़ी में ही खिलाने की व्यवस्था है उसके भी दो प्रकार हैं – एक तो खाना वहीं पकाकर खिलाना या फिर पजीरी या मुरमुरा वगैरह तैयार भोजन ही दे देना (देखें चार्ट 5.2)। फोकस सर्वेक्षण में यह बात सामने आई कि खाना पका कर देने को ही ज्यादा पसंद किया जाता था। एक तो बच्चे भी इनको मुरमुरा और पंजीरी की तुलना में ज़्यादा चाव से खाते हैं। फिर माताओं को भी पका हुआ भोजन ही ज्यादा पसंद था। और यह दिलचस्प तथ्य है कि बासी, सीलनभरा, पेट मरोड़ मारनेवाले खाने जैसी ज्यादातर शिकायतें तैयार आहारों के मामले में ही आई, पकाए भोजन में ये शिकायतें काफी कम थी।

बच्चों की पसंद इस बात से ज्यादा अच्छी तरह जाहिर होती है कि जब भोजन पका कर दिया गया तो उनकी उपस्थिति तैयार आहार को बांटने वाले दिनों से काफी अधिक हो गई। माताओं से भी सर्वेक्षण के दौरान पूछा गया कि क्या उनके बच्चे भोजन पकाकर दिए

चार्ट : 5.2. पूरक पोषाहार में दिये जाने वाले भोजन के प्रकार

	उम्र समूह	
	6 महीने से 3 वर्ष	3-6 वर्ष
उत्तर प्रदेश	**घर ले जाने वाला आहार** पंजीरी / दूध छुड़ाने का आहर (गेहूं सोया और चावल का आटा तथा चीनी)	**तैयार खाना** एआरईएफ/पंजीरी/मुरमुरा (गेहू, सोया, रागी का आटा, चीनी विटामिन और प्रोटीन के अंश
राजस्थान	**घर ले जाने वाला आहार** 'बेबी मिक्स' (गेंहू, सोया, चीनी, खाद्य तेल, चावल, विटामिन और मिनरल पदार्थों का मिश्रण	**तैयार खाना** मुरमुरा (गेहु का आटा, सोया आटा, खाद्य तेल, विटामिन और मिनरल) मीठा या नमकीन
छत्तीसगढ़	**घर ले जाने वाला आहार** 'संजीवनी पाउडर' (सोयाबीन पाउडर, गेंहू, सोया मिल्क)	**बनाकर दिया गया जाने वाला भोजन** खिचडी/दलिया/चना
हिमाचल प्रदेश	**घर ले जाने वाला राशन** मंगू दाल, चावल, घी, चना, दूध पाउडर, चीनी और दलिया	**बना कर दिया जाने वाला भोजन** खिचडी/दलिया/चना (या अंकुरित चना) खास मौकों पर खीर भी
तमिलनाडु	**घर ले जाने वाले राशन** 'सत्तू' (रागी, गेहू, गुड, चना, और मूंगफली से बना आहार)	**बनाकर दिया जाने वाला भोजन** दाल-भात-सब्जी सप्ताह में एक दिन अंडा

[a] छह साल से बड़े और एक साल से छोटे बच्चों के लिए।
[b] छह माह से दो वर्ष के बच्चों के लिए। दानकर्ता एजेंसियां – केयर या विश्व खाद्य कार्यक्रम के द्वारा दिया आहार शामिल नहीं है।
स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004, साथ ही राज्यों के लिए एकीकृत बाल विकास सेवा कार्यक्रम के दिशा निर्देश। व्यवहार में अलग-अलग आंगनवाड़ियों में दिए जाने वाले आहर में भी फर्क मिलता है।

चार्ट : 5.3. बनाकर दिये भोजन का बच्चों की उपस्थिति पर प्रभाव

बच्चों की उपस्थिति का विश्लेषण (आश्रित चर : "नियमित उपस्थिति" के नमूने (1 = नियमित, 0 = अनियमित), जैसा कि बच्चों की माताओं ने बताया)	
स्वतंत्र कारक	**आंशिक प्रभाव**
आंगनवाड़ियों में बना भोजन मिलना	0.47 (3.41)**
अपनी बस्ती में आंगनवाड़ी होना	0.35 (5.16)**
राज्य डमी	
हिमाचल प्रदेश	-0.10 (0.63)
महाराष्ट्र	-0.40 (2.91)**
राजस्थान	0.07 (0.43)
उत्तर प्रदेश	0.12 (0.75)
छत्तीसगढ	-0.47 (3.13)**
निरीक्षण की संख्या	**323**

*** 1: पर महत्वपूर्ण (z statistics in parentheses).*

टिप्पणी : (1) यह 3-6 वर्ष के बच्चों पर केन्द्रित विशलेषण है। (2) तमिलनाडु इसी राज्य होकर 'डिफाल्टर' राज्य है। (3) शिक्षा, दलित / आदिवासी, पक्का मकान होना या राशन कार्ड होना बहुत महत्वपूर्ण कदम नहीं माना गया है।

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004. बनाकर दिए भोजन का गुणांक यह बताता है कि जब स्थानीय आंगनवाड़ी में तैयार करके खाना दिया जाता है तो उपस्थिति 47 फीसदी बढ़ जाती है।

जाने वाले दिनों में ज्यादा जाते हैं तो उनका 'हां' का जवाब सामान्य से 50 फीसदी ऊंचा था। जैसा कि चार्ट 5.3 से जाहिर होता है कि नियमित उपस्थिति काफी हद तक दो बातों पर निर्भर करती है : जब पकाया हुआ भोजन दिया गया और जहां आंगनवाड़ी बच्चों के अपने घर के आसपास हो। अगर ये दोनों स्थितियां हों तो बच्चों की उपस्थिति नियमित रूप से 80 फीसदी तक रहती है और इसमें बच्चों के परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का ज्यादा फर्क नहीं रह जाता। यह तथ्य खाने की चुम्बकीय शक्ति का एक अच्छा प्रमाण है।

इतना ही नहीं तैयार आहार में परिवार के बाकी लोग भी हिस्सेदारी कर देते हैं, जब कि वहीं पकाया गया भोजन आम तौर पर बच्चे को पूरा का पूरा मिलता है। जैसे, राजस्थान में सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि बच्चों को मिला मुरमुरा घर-घर में पंहुचा हुआ है और सबके नाश्ते में काम आता है। यह कमज़ोर बच्चों को पूरक पोषाहार देने के उद्येश्य को पूरा नहीं करता। कुछ हद तक पकाए गए भोजन का भी यही हाल हो सकता है, अगर पूरक की जगह घर के भोजन को देना शुरू कर दिया जाए। लेकिन आंगनवाड़ियों में ही अच्छी क्वालिटी का पकाया हुआ भोजन परोसा जाए (जैसा कि हिमाचल प्रदेश, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में पाया गया) तो बच्चों को ज़्यादा लाभ होता है – भले ही कुछ मामलों में वे घर से भोजन करके आने की जगह सिर्फ आंगनवाड़ी के आहार पर ही निर्भर होने लगे। तैयार आहार के साथ यह पूरक पोषाहार वाला पहलू का महत्व कम रह जाता है और इसका यह बड़ा कारण है कि वह अन्य लोगों में बंट जाता है। पकाए जाने वाले भोजन में स्थानीय स्वाद के अनुसार बदलाव करने की ज्यादा गुंजाइश होती है।

एक और काफी महत्वपूर्ण बात है जिसे अक्सर 'तकनीकी' विश्लेषण में नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। इस मुद्दे की राजनीति भी काफी महत्वपूर्ण है। तैयार आहार के लिए व्यावसायी लाबी जोर लगती है और उनकी तरफ से आने वाले प्रलोभनों में फैसला करने वाले लोग आ जाते हैं और फिर निगरानी का काम भी सुस्त हो जाता है। अनेक राज्यों में तैयार आहार की आपूर्ति करने वाले ठेकेदार मालामाल हो गए हैं, जिन्हें बच्चों के स्वास्थ्य और कल्याण से कोई लेना देना नहीं होता और वे अपना लागत खर्च घटाने के लिए आहार की क्वालिटी गिराने में जरा भी संकोच नहीं करते। उत्तर प्रदेश जैसे बड़े प्रदेश में आहार की आपूर्त्ति के सैकड़ों करोड़ रुपए का ठेका कुछेक ठेकेदारों को

पकड़ा दिया गया है और इन फैसलों में जरा भी पारदर्शिता नहीं बरती गई। दिल्ली स्थित महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी के अनुसार ठेकेदारों की जेब में जाने वाले मुनाफे का एक हिस्सा राजनेताओं की जेब में भी जाता है। और इधर उत्तर प्रदेश का पूरा का पूरा पूरक पोषाहार कार्यक्रम बच्चों के स्वास्थ्य के लिए खतरा बन

बाक्स 5.3. भोजन का अधिकार बनाम लूट का अधिकार व ठेकेदारों की छाया

सरकारी और निजी क्षेत्र सहयोग की जो बात आज बहुत जोरशोर से की जा रही है वह एकीकृत बाल विकास सेवाओं में लगभग दो दशक से चल रहा है। भारत में लगभग सभी राज्यों में पूरक पोषाहार कार्यक्रम में ठेकेदार शामिल है।

अभी हाल तक पूरक पोषाहार का खर्च तो राज्य सरकारें उठाती थीं जबकि कर्मचारियों का वेतन और संरचनात्मक व्यवस्थाओं का खर्च केंद्र सरकार के जिम्मे था। इसलिए ठेकेदार नियुक्त करने का काम राज्य सरकारों के हाथ में होता है। और ठेका भी काफी भारी भरकम होता है – छोटे राज्यों में 25 करोड़ का तो बड़े राज्यों में 250 करोड़ तक का। अब इतनी रकम हो तो भ्रष्टाचार और भाई–भतीजावाद का लोभ रहेगा ही। एक तो ठेका देने में गड़बड़ होती है और फिर चीजों की आपूर्ति में गड़बड़ की जाती है, और ये चीजें अपवाद जैसी न होकर काफी नियमित होती हैं। जैसे छत्तीसगढ़ में पिछली दफे पुराने ठेकेदार को ही फिर से ठेका दे दिया गया जबकि नियम स्पष्ट रूप से इसकी मनाही करता है। पूरक पोषाहार की अनियमित आपूर्ति और घटिया क्वालिटी को लेकर की जाने वाली शिकायतों पर खास ध्यान नहीं दिया जाता।

क्वालिटी और पोषक तत्वों की कमी के आलवा भी ठेके की यह व्यवस्था कई तरह से नुकसानदेह साबित हुई है। जैसे हर जगह 'दलिया' देना ही कायदा का बन गया है भले ही हर इलाके के बच्चे दलिया खाते हों या नहीं या हर उम्र के बच्चों को यह पचता हो या नहीं। दूध की जगह ठोस आहार पर लाने वाला आहार तो मिलता है पर अपेक्षाकृत बड़े बच्चों, किशोरियों और गर्भवती औरतों के पोषण संबंधी जरूरतों लायक अधिक कैलोरी वाला आहार नहीं मिलता। इसकी सीधी सी वजह यह है कि दलिया को बनाना आसान होता है – ठेकेदार जो कच्चा दलिया देता है उसमें उबला पक्की ... यह से काम चल जाता है। दूसरे, इस व्यवस्था में किसी किस्म का विकेंद्रीकरण नहीं होता और ना ही स्थानीय समुदाय या पंचायत का आंगनवाड़ी में दिए जाने वाले भोजन पर कोई नियंत्रण रहता है। इसी सबके चलते 7 अक्टूबर 2004 को अपने ऐतिहासिक अंतरिम आदेश में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट रूप से कहा कि 'आंगनवाड़ियों में पोषाहार की आपूर्ति के लिए ठेकेदार नहीं रहने चाहिए और इस योजना का पैसा ग्रामीण समाज, स्वरोजगार समूहों या महिला मंडलों के माध्यम से अनाज खरीदने और आहार बनाने के लिए होना चाहिए।" ऐसा करके सुप्रीम कोर्ट ने शिशुओं, माताओं और किशोरियों के मन में यह उम्मीद जगाई कि उन्हें स्थानीय स्वाद के हिसाब से उपयुक्त और पौष्टिक आहार मिलेगा।

पर इस योजना से ठेकेदारों को बाहर करने की लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। इन आदेशों पर अमल कराने वाले आयुक्तों का कार्यालय ऐसा सिर्फ आधा दर्जन राज्यों में ही करा पाया है। और यह काम भी बड़ी मुश्किल से हुआ।

सुप्रीम कोर्ट का आदेश आए दो साल से ज्यादा हो चुका पर उत्तरप्रदेश और असम जैसे राज्यों ने ठेकेदारों को नहीं हटाया है। अन्य राज्यों में भी नेता–ठेकेदार–अधिकारियों की तिकड़ी ने अदालती आदेश को जिस तरह से संभव हो उलझाने का काम किया है। कई राज्यों की प्रतिक्रिया से इस गड़बड़ का अंदाजा हो सकता है। जैसे, छत्तीसगढ़ सरकार ने सुप्रीम कोर्ट द्वारा नियुक्त आयुक्तों को लिखा कि हम सीधे 'निर्माताओं' से आहार खरीद रहे हैं ठेकेदारों से नहीं। अब निर्माता और ठेकेदार के मनमाने फर्क को कई राज्यों ने आड बना लिया है। कई जगहों पर सरकार ने ठेकेदार को हटाने के आदेश दे दिए हैं पर किसी न किसी मुद्दे को उठाकर उनको हटाने का काम रोक दिया गया है। महाराष्ट्र में ऐसा ही हुआ जहां महिला मंडलों और स्व-रोजगार समूहों को काम सौंपने का आदेश हो गया था, वहां उन जगहों पर सहकारी समितियों को काम सौंपने की धारा जोड़ी गई जहां महिला मंडल नहीं है। चूंकि सहकारी संघ यह आपूर्ति ठेकेदारों के माध्यम से ही करता है, तो इस प्रावधान के चलते ठेकेदार फिर से अपना काम करते रह गए। इस मसले को सुप्रीम कोर्ट के ध्यान में लाया गया है और वह इस पर विचार कर रहा है।

ठेकेदारों की लाठी ने उन राज्यों में भी अदालती आदेश के पालन में अडंगा डालने की कोशिश की है जहां सरकार ने ठेकेदार हटाने का मन बना लिया है। दिल्ली का उदाहरण बहुत उपयुक्त है। दिल्ली सरकार ने पूरक पोषाहार की आपूर्ति का काम गैर सरकारी संगठनों को सौंपने का फैसला किया, तो अनेक ठेकेदारों ने गैर सरकारी संगठन बना लिए और उनके नाम से आवेदन कर दिया। पर राज्य सरकार ने अदालत द्वारा नियुक्त आयुक्तों की सलाह से फैसला किया था इसलिए यह शर्त जोड़ दी गई थी कि उन्हीं गैर–सरकारी संगठनों को काम दिया जाएगा जो कम से कम तीन साल पुराने हों। इस धारा को अदालत में चुनौती दी गई थी पर लंबी लड़ाई के बाद ठेकेदारों वाली लाबी हार गई।

इस मामले में बदलाव की बयार बिहार, झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में आ रही है जहां वैकल्पिक विकेंद्रित व्यवस्था अपनाई गई है। पर अदालती आदेश और आयुक्तों की खोजबीन का दबाव सभी राज्य सरकारें महसूस कर रही हैं।

इस अनुभव से यही साबित होता है कि जैसे शरीर और बीमारी में वाइरस का रिश्ता है वैसे ही समाज और भ्रष्टाचार का भी रिश्ता बन चुका है। वाइरस पर जब भी हमला होता है वह नया रूप ले लेता है। 'राइट टू फूड' में 'राइट टू लूट' का किस्सा भी कुछ ऐसा ही है।

सहयोग – बिराज पटनायक

गया है जहां रोज़ बासी और जहरीला आहार खाने से बच्चों के बीमार पड़ने की खबर स्थानीय अखबारों में आती रहती है।

इस हिस्से को समाप्त करने के पहले यह बताना भी जरूरी है कि पका कर आहार देना मंहगा ही पड़ता हो यह जरूरी नहीं है। यह खाना प्रायः आंगनवाड़ी सहायिका ही बनाती है, जिसे योजना राशि से वेतन मिलता ही है (पर यह पैसा बहुत कम है)। अगर खाद्य सामाग्री की खरीद विकेंद्रित ढंग से हो तो ज्यादा पौष्टिक और सस्ती चीजें खरीदी जा सकती हैं। जैसे, हिमाचल प्रदेश में पूरक पोषाहार पर राजस्थान और उत्तर प्रदेश की तुलना में प्रति बच्चा कम रकम खर्च होती है, पर वहां खाने की क्वालिटी बहुत अच्छी है। जहां पका खाना बनवाने में खर्च थोड़ा ज्यादा होता है वहां गांव-गांव में इससे मिलने वाले रोजगार (जो अक्सर गरीब ग्रामीण महिलाओं को ही काम देता है) के लाभ को भी नहीं भूलना चाहिए। पकाए गए खाने के अन्य सभी फायदों के साथ इस पहलू को भी नहीं भूलना चाहिए।

5.2 नवजातों और शिशुओं का आहार

जीवन के शुरुआती वर्ष या कहें पहले दो या तीन वर्ष बच्चों के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। इसी अवधि में उसकी स्वास्थ्य, पोषण और सीखने की क्षमताएं मोटे तौर पर तय हो जाती हैं। जैसे बच्चे के मस्तिष्क का 90 फीसदी विकास उसके दो वर्ष का हो जाने के पूर्व हो जाता है।

यही वह समय है जब बच्चे के पोषाहार में भी गिरावट होती है। जैसे-जैसे वह मां के दूध से अलग होता है उसके कुपोषण की शुरुआत होती है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण 1998-99 के अनुसार बच्चों के सामान्य वजन से कम होने का अनुपात छह महीने की उम्र में अगर 16 फीसदी था तो दो वर्ष का होते-होते 60 फीसदी बच्चे कम वजन के हो जाते हैं। अगर हम कुपोषण को रोकने के मसले पर सचमुच गंभीर हैं तो इस उम्र के बच्चों पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है।

एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के शुरुआती 'दृष्टि पत्र' में तो यही नजरिया रख गया था (देखें अध्याय 3) पर व्यवहार में उसे 6 वर्ष उम्र के बच्चों पर ही कार्यक्रम का मुख्य ध्यान है। इससे कम उम्र के बच्चों की अगर उपेक्षा न भी हुई हो तो उन पर कम ध्यान जरूर दिया जा रहा है। नन्हें शिशुओं को खिलाने-पिलाने का प्रशिक्षण भी आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और योजना के अन्य कर्मचारियों को लगभग नहीं दिया जाता। हमारे फोकस सर्वेक्षण में भी यह बात सामने आई आंगनवाड़ी कार्यकर्ता भी चाहती हैं कि नवजात शिशुओं को आहार देने, छोटे बच्चों को संभालने और लरकोरी औरतों को परामर्श देने का प्रशिक्षण उन्हें मिले। सुपरवाइजरों, परियोजना अधिकारियों और नर्सो की देखरेख और निगरानी के मामले में इन चीजों पर ध्यान नहीं है।

पर नवजातों और शिशुओं के आहार पर हाल के वर्षों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से काफी पढ़ाई-लिखाई हुई है। यह बात स्थापित है कि मां का दूध पोषण, बच्चों की जीवनरक्षा, संक्रमण से बचाव और ठीक विकास के लिए सर्वोत्तम आहार है। राष्ट्रीय नवजात और शिशु आहार दिशानिर्देश 2006 में कहा गया है। 'आधुनिक विज्ञान और तकनीक अभी तक शिशुओं के लिए मां के दूध से बेहतर आहार नहीं तैयार कर पाया है। स्तनपान बच्चों के पोषण और भावनात्मक ज़रूरतों को पूरा करने का सबसे अच्छा तरीका है।"

इस आम धारणा के आगे भी अब नवजातों और शिशुओं के आहार के बारे में काफी हद तक सर्वमान्य कायदे बन गए हैं। ये चीजे 'ग्लोबल स्ट्रेटेजी फार इफैंट ऐंड यंग चाइल्ड फीडिंग (डब्लू एचओ/यूनिसेफ, 2003) और पूर्वोक्त राष्ट्रीय दिशानिर्देश में शामिल हैं। मौजूदा सुझाव जिन्हें कई बार नवाजात और शिशु आहार के बारे में 'एकदम जरूरी' बता दिया जाता है, कुछ इस प्रकार हैं :

- बच्चे के जन्म के बाद पहले घंटे में ही स्तनपान की शुरूआत कराना,
- छह महीने तक बच्चे को सिर्फ मां के दूध पर रखना; और
- उचित पूरक आहार शुरू करने भी दो वर्ष या उससे ज्यादा समय तक बच्चे को मां का दूध पिलाना । छह महीने के बाद से उसे मसला हुआ आहार देना चाहिए।

इन तरीकों को प्रोत्साहित करने का एक तरीका तो व्यापाक स्तर पर पोषण संबंधी परामर्शी का इंतजाम है। इसमें लरकोरी औरतों को स्तनपान, बच्चा होने की सही उम्र के बारे में परामर्श देने के साथ ही प्रजनन संबंधी परेशानियों में उन्हें सहायता उपलब्ध कराना शामिल है। विभिन्न संदर्भो में इस नजरिए की उपयोगिता स्थापित हो चुकी है जिसमें हाल में गुजरात में ब्रेस्टफीडिंग प्रोमोशन नेटवर्क आफ इंडिया द्वारा किए गए

बाक्स 5.4. शिशु और बाल आहार

बच्चों के पोषण, उनके जीवित रहने और स्वस्थ विकास में उनको आहार देने के तरीके का काफी बड़ा योगदान है। 'लांसेटे' (2003) में बच्चों के पोषण संबंधी लेख शृंखला के अनुसार बच्चों की मृत्यु रोकने का सबसे प्रभावी तरीका स्तनपान ही हैं स्तनपान से 13 से 16 फीसदी बच्चों की मौत रोकी जा सकती है जबकि छह से 24 माह की आयु के बीच उनको पर्याप्त सह आहार देकर छह फीसदी और बच्चों का मरना रोका जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों के 10000 बच्चों के बारे में हुए अध्ययन का निष्कर्ष है कि अगर जन्म के एक घंटे के अन्दर बच्चे को स्तनपान कराना शुरू कर दिया जाए तो करीब 22 फीसदी मौतों को रोका जा सकता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि बच्चों के लिए आहार का सबसे अच्छा हिसाब यह है कि जन्म के एक घंटे के अंदर ही बच्चे को स्तनपान कराना शुरू कर दिया जाए, छह महीने तक सिर्फ मां के दूध पर पाला जाए और छह महीने से लेकर दो वर्ष तक मां के दूध के साथ अतिरिक्त ठोस आहार देकर पाला जाए।

नवजातों और बच्चों को स्तनपान कराना सिर्फ उनके जिंदा बचने के लिए ही जरूरी नहीं है। इसी दौर में बच्चों के मस्तिष्क का सबसे महत्वपूर्ण विकास होता है, इसलिए यह दौर उसके पूरे जीवन को प्रभावित करने के हिसाब से महत्वपूर्ण है। अगर बच्चे को पूरा पोषण नहीं मिला तो उसका शारीरिक विकास, मानसिक विकास, शरीर की शक्ति, ऊर्जा और उत्पादकता, सभी चीजें प्रभावित होती हैं जो उसके जीवन और विकास को नुकसान पंहुचाने के साथ-साथ राष्ट्र के विकास को भी प्रभावित करती हैं।

पर नवजातों और बच्चों के आहारकी स्थिति भारत में दयनीय ही बनी हुई है। सिर्फ 16 फीसदी बच्चों को ही जन्म के एक घंटे के अंदर मां का दूध मिलना शुरू हो पाता है। 34 फीसदी बच्चे अस्पतालों में पैदा होते हैं पर आंकड़ा यह स्पष्ट करता है कि जानकार डाक्टरों और प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मियों की मौजूदगी के बावजूद नवजातों को इतने महत्वपूर्ण आहार से वंचित रहना पड़ता है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-II (1998-99) के अनुसार पहले महीने पर सिर्फ मां का दूध पीने वाले बच्चों का अनुपात अगर 72 फीसदी है तो छह महीने बाद सिर्फ 20 फीसदी रह जाता है। दह से नौ महीने की अवधि वाले सिर्फ 35.9 फीसदी बच्चों को ही मां के दूध पर पालने और उसके बाद पूरक आहार भी देना एक बड़ी चुनौती है। स्तनपान न कराने या कम कराने के दो संभावित कारण हैं : पहला कारण तो स्तनपान को लेकर बनी भ्रांति है कि यह पिछड़ेपन की निशानी है। फिर स्तनपान कराने वाली माताओं की भी अपनी खास जरूरतें है इस बारे में माताओं, परिवारों और समाज में खास चेतना नहीं है। जानकारी न रहने और जानकार लोगों से सहज मदद या परामर्श न मिलने का एक नतीजा यह भी है कि ढंग से स्तनपान कराया भी नहीं जाता। अक्सर माताओं को शिकायत होती हैं कि उन्हें पूरा दूध नहीं आता। हिमाचल की एक महिला ने यही शिकायत की और ऐसी ही शिकायतें ग्रामीण बिहार और शहरी दिल्ली, हर कहीं मिली। और स्वास्थ्यकर्मी महिलाओं को ढंग से स्तनपान कराने और पर्याप्त दूध होने लायक पौष्टिक आहार लेने की सलाह देने की जगह उन्हें दूध की अतिरिक्त खुराक खरीदने की सलाह देते हैं। उधर अखबारों में छपे लेख और दूसरी तरह के मीडिया में आई सूचनाएं भी अक्सर सही जानकारी देने की जगह भ्रांतियां ही ज्यादा फैलाते हैं।

दूसरा बड़ा कारण है अस्पतालों में स्वास्थ्यकर्मियों और क्षेत्र में काम करते वक्त पोषण कार्यकर्त्ताओं से कुशल समर्थन न मिलना। अस्पतालों में काम करने वाले ज्यादातर स्वास्थ्य और पोषणकर्मियों को खुद भी स्तनपान के बारे में पूरी जानकारी नहीं होती। इसी चलते वे मां के दूध पर ही सारा जोर देने से बचते हैं। एक गर्भवती महिला ने इस बारे में दिलचस्प किस्सा सुनाया – जब अपने डाक्टर से कहा कि वह अपने होने वाले बच्चे को छह माह तक सिर्फ अपना ही दूध पिलाना चाहती है तो डाक्टर ने कहा कि – 'इतना ठीक नहीं है – चार महीने से ज्यादा ऐसा न करना।' दूध का धंधा कंपनियों का भी है और उनकी तरफ से भी काफी खेल चलते हैं। एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन से जुड़ी महिला ने अपना अनुभव सुनाया, उसने डाक्टर को बताया कि मुझे अपने बच्चों को स्तनपान कराने में कोई परेशानी नहीं है पर डाक्टर ने उससे डिब्बाबंद दूध देने को कहा।

स्तनपान के मामले में कौशल सिखाने की भी जरूरत है। एक तो जन्म के तत्काल बाद से ही स्तनपान कराना शुरू करना अच्छा होता है। उस दौरान महिला का अपना आहार भी महत्वपूर्ण होता है। जब वह बच्चे को सिर्फ स्तनपान से ही पाल रही होती है तो उसे परामर्श और मदद पंहुचनी चाहिए। पहले कुछ हफ्तों और फिर स्तनपान में परेशानी शुरू होने के समय भी जानकार महिलाओं और स्वास्थ्यकर्मियों से परामर्श और मदद मिलनी चाहिए वरना इसी समय वह कोशिश स्तनपान के साथ बच्चे को कुछ देना शुरू करती है। यह अतिरिक्त आहार आमतौर पर भ्रम या दिखावे के लिए भी शुरू होता है। पर छह महीने के बाद शिशु को अतिरिक्त पोषण आहार देना शुरू करना चाहिए जो उसके पूरे बचपन तक चलाना चाहिए। स्तनपान कराने का कौशल और तरीका भी सीखना जरूरी है और इसमें महिला का पूरा व्यवहार बदलता है जो काम आसानी से नहीं होता। उसके लिए परिवार के लोगों और समाज की जानकार महिलाओं के समर्थन की जरूरत होती है। जब महिलाओं का सशक्तिकरण हुआ होता है तो वे अपनी और बच्चे की बेहतर देखरेख करने की स्थिति में होती है। ओडिसा के एक अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन में काम करने वाली महिला का उदाहरण ही लें जिसे एक नर्सिंग होम की डाक्टर ने अपने बच्चे को पहले दो दिनों तक डिब्बा बंद आहार देने को कहा। इस महिला ने डाक्टर की बात नहीं मानी। फिर उस डाक्टर को, 1992 में पास और 2003 में संशोधित, *इफेंट मिल्क सब्स्टीट्यूट फीडिंग बोटल्स ऐंड इंफैंट फुडस (रेगुलेशन आफ प्रोडक्शन, सप्लाई ऐंड डिस्ट्रीब्यूशन)* कानून की प्रति दी गई और स्तनपान का महत्व बताने वाला साहित्य उपलब्ध कराया गया। बच्चों को ज्यादा से ज्यादा मां के दूध पर पालने के लिए इस तरह से सशक्तिकरण को बढ़ाने की जरूरत होगी।

सहयोग – दीक्षा शर्मा और अरुण गुप्ता

बाक्स 5.5. पहले घंटे का जादू

भारत में करीब 16 लाख बच्चे पहला जन्मदिन आने के पहले ही इस दुनिया से कूच कर जाते हैं। इनमें भी 11 लाख से अधिक ऐसे बच्चे हैं जो एक महीना पूरा करने के पहले ही दम तोड़ देते हैं। फिर यह हिसाब प्रति मिनट तीन बच्चों की मौत का हुआ। इन मौतों का मुख्य कारण है प्रसव के दौरान इंफेक्शन होना (52 फीसदी), सांस रूकना-एस्फिक्सिमा (20 फीसदी) और सामान्य से काफी कम वजन होना (17 फीसदी), इंफेक्शन के ज्यादातर मामले दस्त और निमोनिया के होते हैं और इनके लिए स्तनपान से प्रभावी कोई और काम नहीं है। प्रत्येक चार में से एक बच्चा बहुत कम वजन का ही जन्मता है और उसकी जान को काफी खतरा होता है।

ग्रामीण भाग में किए गए एक ताजा अध्ययन (जो 10947 नवजातों पर आधारित है) से पता चलता है कि जन्म के पहले घंटे में ही स्तनपान शुरु कर देने से बच्चों के मरने का अंदेशा काफी कम हो जाता है। स्तनपान में देरी से जोखिम काफी बढ़ जाता है। अगर स्तनपान एक दिन बाद शुरु कराया जाए तो जोखिम दो गुना हो जाता है। अध्ययन का नतीजा है कि अगर जन्म के एक घंटे के अंदर ही स्तनपान शुरु करा दिया जाए तो शिशु मृत्यु दर में 22 फीसदी कमी हो जाती है। भारत में इस हिसाब में हर साल 2.5 लाख बच्चों की जान बचाई जा सकती है। पर दूसरे परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार सिर्फ 16 फीसदी महिलाएं ही ऐसा करती हैं।

समय से स्तनपान शुरु करना माँ और बच्चा दोनों के लिए कई कारणों से लाभकर होता है। पहले दूध में मौजूद कोलोस्ट्राल बच्चे को कई जरूरी चीजों की खुराक देता ही है साथ ही वह कई रोगों से बचाव का काम भी करता है – टीके की तरह। दूसरे इससे आगे की खुराक के लिए पर्याप्त दूध उतारने की तैयारी शुरु की हो जाती है। इससे माँ और बच्चे के बीच सबसे आत्मीय सम्बन्धों की शुरुआत होती है और उसकी गरमाहट से उन बच्चों को खास तौर से लाभ होता है जिनका वजन जन्म के समय कम होता है। फिर इससे मां का रक्तस्राव रोकने में भी मदद मिलती है – मातृ मृत्यु या रोगग्रस्तता का यह सबसे बड़ा कारण होता है।

इसलिए शिशु मृत्यु रोकने की दिशा में उसके जन्म के पहले घंटे में ही स्तनपान शुरू करा देना पहला और सबसे महत्वपूर्ण काम है। और यह दूध सचमुच जादू की तरह असर करता है।

सहयोग – अरुण गुप्ता

चार्ट : 5.4. नवजात के आहार पर परामर्श

क्या आपको आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से नवजात बच्चे के आहर सम्बन्धी परामर्श मिलता है?[a]			
राज्य	**हाँ**	**नहीं**	**हाँ कहने वालों का प्रतिशत**
हिमाचल प्रदेश	5	7	42
तमिलनाडु	6	9	40
महाराष्ट्र	5	10	33
छत्तीसगढ़	2	10	17
उत्तर प्रदेश	3	19	14
राजस्थान	0	14	0
फोकस राज्य	21	69	22

[a] आधार : सर्वेक्षण के पहले एक वर्ष की अवधि में बच्चा पैदा करने वाली 90 महिलाओं से पूछे सवाल पर आधारित (शेष छह ने जवाब नहीं दिया)

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004

प्रयोग की सफलता भी शामिल है।

दुर्भाग्य से पोषण संबंधी परामर्श (उसमें भी घर-घर जाकर परामर्श देना) वाला पक्ष पूरे एकीकृत बाल विकास सेवा का सबसे उपेक्षित हिस्सा है। अनेक राज्यों में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता शायद ही कभी-कभार किसी गर्भवती महिला या लरकोरी औरत के पास जाती हों और उन्हें किसी तरह से परामर्श देती हों (जैसे एक साथ बैठकर पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा देना)। फोकस के सर्वेक्षण में भी यह कमी उजागर हुई है। सर्वेक्षण के एक वर्ष पहले की अवधि में बच्चे जनने वाली करीब 20 फीसदी औरतों ने ही कहा कि उन्हें स्तनपान के बारे में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता से कोई सलाह मिली थी। पर यहां भी उल्लेखनीय है कि इस मामले में भी विभिन्न राज्यों की स्थिति बहुत अलग अलग है। चार्ट 5.4 से स्पष्ट होता है कि हिमाचल प्रदेश और तमिलनाडु जैसे राज्यों में पोषण संबंधी परामर्श का काम जोर पकड़ रहा है, जहां की करीब आधी माताओं को स्तनपान और शिशुओं के पोषण संबंधी परामर्श मिला था। पर, यहां भी निष्कर्ष निकालने में थोड़ी सावधानी रखनी चाहिए क्योंकि सर्वेक्षण के दायरे में आने वाली

महिलाएं संख्या में काफी कम थीं।

पोषण संबंधी परामर्श में सिर्फ स्तनपान की बात ही नहीं होती। गलत ढंग से बच्चे से दूध छुड़ाने से उनमें कुपोषण की शुरुआत होना है : हम सबने देखा है कि किस तरह 'दूध पीता' बच्चा सूखी मोटी रोटी चबाता है और खाने को ललचता है। रोटी पचाना उसके लिए संभव भी नहीं होता और ना ही उससे उसके पोषण की ज़रूरतें पूरी होती है। दूध छुड़ाने का अपना क़ायदा है और तब तक उसे दूसरा आहार देना शुरू कर लेना चाहिए – ठोस चीजों को मसलकर खिलाना भी शुरू कर देना चाहिए। और बच्चे के पोषण में इसी स्तर पर काफी सुधार करने की गुंजाइश होती है। परिवार के साधन सीमित हों तब भी बेहतर ज्ञान और चौकसी से सुधार किया जा सकता है। जैसे उसी सूखी-रोटी को अगर दूध या चाय में डुबो कर खिलाया जाए तो बच्चा उसे ज्यादा आसानी से पचा लेगा और वह उसके शरीर में लगेगा भी। फिर बच्चों के आहार को लेकर बनी भ्रांतियों से भी बच्चों को बचाने की जरूरत है। ये भ्रांतियां बाक्स 5.8 में दी गई है :

यह कहने के बाद भी इतना बताना जरूरी है कि बच्चों के अल्प पोषण या कुपोषण को रोकने के लिए सिर्फ परामर्श देने से ही काम नहीं चलने वाला है। काफी सारे परिवार इतने गरीब हैं कि वे अपने बच्चों को पर्याप्त पोषक आहार नहीं दे सकते। अगर वे इतने कमजोर न भी हों तो उनकी प्राथमिकताएं अलग होती हैं। ऐसी ही मामलों में सीधे शिशुओं को आहार देना या आहार का इंतजाम उनके घर में ही कराने का लाभ हो सकता है। 3 से 6 वर्ष की उम्र के बच्चों को आंगनवाड़ी में आहार दिया जाता है – जिसकी चर्चा हमने पिछले अध्ययन में की है। तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों को आंगनवाड़ी में आहार देना बहुत ठीक नहीं रहता क्योंकि उन्हें केंद्र पर लाने के लिए मां का साथ होना और फिर उनके खिलाने-पिलाने में भी मां की मदद जरूरी होती है। संभव है वह यह काम न कर पाए क्योंकि मजदूरी और घर के बाकी कामों से इसके लिए वक्त बचे न बचे। जब आंगनबाड़ी केंद्र पर आहार तैयार रखने और देने का वक्त बहुत तय न रहे तो यह काम और मुश्किल हो जाता है।

इसका विकल्प 'घर ले जाने वाला राशन' है जहां माताओं को उनके शिशुओं के लिए एक हफ्ते का खुराक दे दिया जाता है। जैसे महाराष्ट्र में हमने पाया कि वहां शिशुओं की माताओं को हर हफ्ते 'सुखाडी' नामक पाउडर खुराक मिलती है जिसे गरम पानी या दूध में घोलकर बच्चों को खिलाना होता है। तमिलनाडु में लड्डु या 'सत्तु मावु' बांटने का काम भी व्यवस्थित ढंग से चलता है। इन दोनों ही राज्यों में साप्ताहिक राशन के साथ ही परामर्श भी दिया जा रहा था – हालांकि यह काम हर जगह नहीं हो रहा था।

इससे यह भी लगता है कि अगर घर के लिए दिए जाने वाले राशन की व्यवस्था ठीक से बने तो यह काम अपेक्षाकृत अच्छे ढंग से चल सकता है। अनेक राज्यों में इसी तरह से अच्छी पहलें हुई हैं। पर कुछ गड़बड़ियों को भी नहीं भूलना चाहिए। घर में राशन जाने के साथ यह अंदेशा बढ़ जाता है कि पूरा आहार शिशु को मिलने की जगह घर के बाकी लोगों में बंट जाएगा। ऐसा घर में खाने की कमी या बच्चों की विशेष जरूरतों को ढंग से न समझ पाने के चलते होता है। तमिलनाडु और महाराष्ट्र में ऐसे उदाहरण कम दिखे और हर आदमी ऐसे राशन को 'शिशु आहार' ही मानता था। ऐसा राशन के साथ परामर्श देने के चलते भी संभव हुआ होगा। इसके उलट राजस्थान और उत्तर प्रदेश में तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों को भी छह वर्ष तक के बच्चों की ही तरह मुरमुरा का पंजीरी ही दिया जा रहा था – वह भी अगर मिले तब। चूंकि इन चीजों में बच्चों के लिए कुछ भी हो वे इन्हें अपना भोजन बना लेते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है – अनुचित राशन मां-बाप को भी यह गलत संदेश देता है कि बच्चे कुछ भी खा लेते हैं।

घरेलू राशन के साथ आहार तैयार करने वाले ठेकेदारों का धंधा आ जाने के अपने खतरे हैं। तैयार आहार की तरह घरों में ले जाने वाला राशन की आपूर्ति भी अक्सर ठेकेदार बड़े पैमाने पर करते हैं। जो क्वालिटी में कमी करके या दाम बढ़ाकर अपना मुनाफा बढ़ाने में कोई परेशानी महसूस नहीं करते। लालची नेता और अधिकारी भी धंधा देखकर पीछे नहीं रहते और अपने लोगों को ठेका दिलवाकर उनसे अपना हिस्सा वसूलते हैं। इस पूरे खेल का नन्हें शिशुओं और नवजातों के आहार की योजना पर बहुत खराब असर पड़ सकता है। इन सबका एक इलाज तो ठेके देने में कड़ाई और पारदर्शिता बरतना है। दूसरा तरीका इस काम में ठेकेदारों को आने ही नहीं देना है। निश्चित रूप से घर ले जाने वाला राशन भी स्थानीय खाद्य पदार्थों से आंगनवाड़ी में तैयार कराया जा सकता है और ठेकेदार से माल लेना बंद किया

जा सकता है। जैसे कि तमिलनाडु में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिका ही शिशुओं के लिए पर्याप्त पोषक 'लड्डू' बनाती हैं। यह एक ऐसा मुद्दा है जिस पर और अनुभव और ज्ञान की जरूरत है।

इस मसले की चर्चा हम तीन और सुझावों के साथ समाप्त करते हैं। पहला, जब तक आंगनवाड़ी में एक और कार्यकर्ता नहीं नियुक्त होती शिशुओं के पोषण और उनकी अन्य जरूरतों का ख्याल रखने का काम नहीं हो सकता। एक ही कार्यकर्ता 3-6 वर्ष के बच्चों को खिलाने, घर-घर जाकर महिलाओं को स्वास्थ्य सफाई और आहार संबंधी परामर्श देने और राशन बनाने तथा बच्चों को पढ़ाने-सिखाने का काम नहीं कर सकती। जैसा कि हम अध्याय सात में देखेंगे कि तमिलनाडु में एकीकृत बाल विकास सेवा योजना की सफलता की एक विशेषता कार्यकर्ताओं वाले आंगनवाड़ी का मॉडल खड़ा करने में भी है और इसी के चलते वहां तीन वर्ष से कम आयु के बच्चों का भी बहुत हद तक ख्याल रखना संभव हुआ है। अन्य राज्यों के लिए यह एक महत्वपूर्ण संदेश है।

दूसरे, नवजातों और शिशुओं के पोषहार की उपेक्षा पर ध्यान खींचने का यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि इनसे बड़े बच्चों के आहार कार्यक्रम को बंद कर दिया जाए या अन्य सभी कार्यक्रमों में खर्चों में कटौती की जाए। फिर तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों के पोषण पर ध्यान देने का मतलब इस पूरी योजना को सभी बच्चों के लिए उपलब्ध कराने के अभियान को धीमा करना या छोड़ देना भी नहीं है। बल्कि इसे 'सबको स्तरीय सेवा' देने के अभियान का हिस्सा मानना चाहिए।

फिर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस योजना के तहत पोषण संबंधी परामर्श, घर में राशन भेजने और पोषण की संबंधित सेवाओं से बच्चों के कुपोषण पर रोक लगाने में जरूर मदद मिलेगी। परन्तु एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के दायरे से बाहर से भी इस दिशा में प्रयत्न चलने चाहिए – बल्कि तेज होने चाहिए। जैसे अगर लरकोरी औरतों को बाहर मजदूरी के समय अपने बच्चों को समय पर स्तनपान करा पाने की सुविधा दिलाने के लिए उन्हें मातृत्व संबंधी भत्ते और अवकाश और शिशुवाड़ी का इंतजाम जैसी सुविधाएं दी जानी चाहिए जैसा कि अध्याय एक में कहा गया है। बच्चों के सारे अधिकारों की रक्षा अकेले इसी कार्यक्रम से नहीं होगी।

5.3 स्वास्थ्य सेवाएं

'फोकस' सर्वेक्षण में आए गांवों के बच्चों में बीमारियां काफी थीं। इस मुद्दे का चार्ट 5.5 भी अच्छी तरह दिखाता है जो सर्वेक्षण में आए बच्चों (जो छह वर्ष से कम हैं और आंगनवाड़ियों के रजिस्टर में जिनका नाम है) की रुग्णता से सम्बन्धित हैं। जैसा कि आखिरी दो पंक्तियों में संकेत मिलता है सर्वेक्षण में दो हफ्ते पहले उन्हें कम से कम एक बीमारी के लक्षण दिखे थे। करीब एक तिहाई को बुखार था, 21 फीसदी को दस्त लगा था और 17 फीसदी को लगातार खांसी थीं। ये आंकड़े राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य सर्वेक्षण-2 के आंकड़ों (अध्याय 2 का चार्ट 2.2) से मेल भी खाते हैं। सर्वेक्षण में आए बच्चों में से सिर्फ 55 फीसदी ही इन तीन क्षेत्रों के लक्षण से मुक्त थे।

ये डरावने आंकड़े ग्रामीण इलाकों में बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं की तत्काल जरूरत की ओर इशारा करते है। ये सुविधाएं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और उप केन्द्रों के माध्यम से स्वास्थ्य विभाग ही उपलब्ध करा देता है। पर इन स्वास्थ्य सेवाओं को "एकीकृत बाल विकास सेवा योजना" के साथ किसी न किसी तरह जोड़ा जाना चाहिए। जैसे आंगनवाड़ियों

चार्ट : 5.5. 'फोकस' गावों में बाल-रुग्णता

सर्वेक्षण के दो सप्ताह पहले इन रोगों से युक्त दो बच्चों का अनुमान	
बुखार	32
दस्त	21
खांसी	17
कमजोरी	11
चमड़ी की खराश	5
आंख के रोग	2
कोई भी उपरोक्त रोग नहीं	50
उपरोक्त में से कोई एक रोग	50

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004

चार्ट : 5.6. एकीकृत बाल विकास सेवाओं के अंतर्गत स्वास्थ्य सेवाएं

	तमिलनाडु	"सक्रिय राज्य"[a]	"निष्क्रिय राज्य"[a]	उत्तर प्रदेश	फोकस स्टेटस[a]
सर्वेक्षण में आने वाली प्रतिशत माताओं ने माना कि :					
आंगनवाड़ी कार्यकर्ता उनके यहां आई थी।	58	42	19	23	30
उनके बच्चों का वजन आंनवाड़ियों में नियमित रूप से किया जाता है	87	82	47	40	64
उनसे बच्चों के विकास चाहे पर उनसे चर्चा होती है[a]	50	44	24	15	36
आंगनवाड़ी में स्वास्थ्य की जांच होती है[b]	57	58	21	21	38
सर्वेक्षण में आए प्रतिशत बच्चे जिन्हें :					
पूरे टिके लगे थे	71	62	29	37	46
पूरे टीके नहीं लगे थे	4	2	20	15	11
फोकस सर्वेक्षण कर्ताओं को प्रतिशत गांवो में यह कार्यकर्ता :					
टीकाकरण जा प्रभाव बहुत कम कम लगा	12	6	41	44	25
माताओं को आंगनवाड़ी कार्यकर्ता स्वास्थ्य					
और पोषण के मामलों में मददगार समझती थीं।	52	51	11	10	30
पिछले 12 महीने में निम्नलिखित सेवाएं देने की सूचना देने वाली आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का प्रतिशत अनुपात :					
पेट में कीड़े मारे की दावा	74	67	48	46	58
बड़ी बीमारियों के लिए अस्पताल योजना	83	59	45	33	54

[a] माताओं में जिन्होंने अपने बच्चों का नियमित वजन लेने की बात बताई।

[b] ये आंकड़े असलियत से कम हो जसकते है क्योंकि आंगनवाड़ियों में काम काज के बारे में सामान्य सवालों में ही इन्हें तैयार किया गया है।

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004

में टीकाकरण और स्वास्थ्य की नियमित जांच का काम रहता है और इसमें आंगनवाड़ी कार्यकर्ता भी मदद करती ही है। बच्चों के पेट के कीड़े मारने की दवा भी आंगवाड़ी कार्यकर्ता देती हैं। प्रसव पूर्व पहचान और जच्चा-बच्चा के स्वास्थ्य के मामलें में भी कुछ चीजें इस केन्द्र से चलती है – पर हम अगले हिस्से में बात करेंगे।

जैसा कि पूरक पोषाहार कार्यक्रमों के साथ है "एकीकृत बाल विकास सेवा योजना" के तहत चलने वाली स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ है, उनका काम भी चलता है पर उनकी क्वालिटी में काफी सुधार अपेक्षित है। जैसे करीब 70 फीसदी आंगनवाड़ियों में सर्वेक्षण के मामले के तीन महीनों में नर्सो (एएनएम) के तीन या उससे ज्यादा बार दौरे किये गए थे। जैसा कि योजना में मौजूदा कायदे के अनुसार जरूरी है। अधिकांश आंगनवाड़ियों में टीकाकरण का काम भी ठीक-ठाक चल रहा था – चाहे नर्सो द्वारा बच्चों को एक बार इकटठा करके टीका लगाने का मामला हो या फिर स्थानीय स्वास्थ्य केन्द्रों पर जाकर टीका लगाने का। पर फोकस सर्वेक्षण में आए राज्यों में इन स्वास्थ्य सेवाओं की

पहुंच और क्वालिटी, दोनों की ही बहुत साफ सीमाएं थीं जैसा कि चार्ट 5.6 से स्पष्ट होता है।

यहां भी विभिन्न राज्यों में स्थिति काफी अलग-अलग थी। तमिलनाडु और महाराष्ट्र ने, जहां स्वास्थ्य सेवाओं अपेक्षाकृत बेहतर हैं, विकृत "बाल विकास सेवा योजना" के तहत चलने वाली स्वास्थ्य सेवाओं में भी काफी अच्छी प्रगति की थी। इन दोनों राज्यों की आंगनवाड़ियों में बच्चों का विकास ठीक से किया जाता था, टीकाकरण का काम लगभग सही ढंग से चलता था। समय-समय पर स्वास्थ्य की जांच होती थी। हिमाचल प्रदेश भी तेजी से इसी दिशा में बढ़ रहा है। दरअसल, कुछ मामलों में तो इसकी प्रगति तमिलनाडु और महाराष्ट्र से भी ज्यादा अच्छी है। जैसे, हिमाचल प्रदेश के बच्चे सर्वेक्षण के दायरे में आए उनमें से 84 फीसदी के पास टीकाकरण वाला कार्ड था और 75 फीसदी को सभी टीके लग चुके थे – फोकस सर्वेक्षण में आए किसी राज्य का प्रदर्शन इस मायने में इतना अच्छा न था। फिर सर्वेक्षण करने गए लोगों की टिप्पणियां भी बताती है कि हिमाचल प्रदेश में टीकाकरण वाली सेवाएं कितनी प्रभावी हैं।

अनेक मामलों में "एकीकृत बाल विकास सेवा योजना" की स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली योजना की अन्य सेवाओं की तरह ही था और मुल्क की स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति भी कोई बहुत अच्छी नहीं ही है। जैसे, कर्मचारियों, धन, संरचनात्मक सुविधाओं, निगरानी और राजनैतिक दिलचस्पी में कमी की जो चर्चा पहले हुई है वह यहां भी लागू होती है। फोकस सर्वेक्षण में, आई अधिकांश आंगनवाड़ियों में 'मेडिकल किट' का न होना यह बताता है कि इस योजना में स्वास्थ्य सेवाएं कितनी कम प्राथमिकता पा रही हैं। इसी प्रकार सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं में किए वित्तीय संसाधन न होने का प्रयास इस योजना की स्वास्थ्य सेवाओं पर भी पड़ा है। जैसाकि, सर्व ज्ञात है कि भारत स्वास्थ्य पर सार्वजनिक खर्च के मायने में दुनिया के सबसे निचले देशों में शामिल है। यहां सकल घरेलू उत्पादन का एक फीसदी धन ही सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च होता है और निश्चित रूप से इसका असर पड़ता ही है।

यह कहने के बावजूद इस बात का उल्लेख जरूरी है कि इस योजना से जुड़ी स्वास्थ्य सेवाओं के साथ अपनी विशेष मुश्किलें भी है और योजना का लोगों ही नहीं स्वास्थ्य विभाग की ओर से भी क्षेत्र से 'जुड़ाव' नहीं हो पाता। इन दोनों के साझा प्रयास जहाँ जबरदस्त परिणाम देते हैं वहाँ जुड़ाव न हो तो योजना से सम्बन्धित स्वास्थ्य सेवाओं का हाल बुरा हो जाता है। जैसे टीकाकरण के दौरान प्रशिक्षित नर्स के साथ-साथ आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की मौजूदगी भी एकदम जरूरी है। अगर इनमें कोई भी एक न रहे तो काम रुक जाता है। यह साधारण उदाहरण बताता है कि स्वास्थ्य सेवाओं और इस योजना के बीच तालमेल कितना जरूरी है।

कुपोषित बच्चों के पुनर्वास के मामले में भी इस सहयोग की बहुत जरूरत होती है। देश के विभिन्न हिस्सों में भुखमरी मौत के साथ ही इस मुद्दे पर हाल के वर्षों में सबका ध्यान गया है। भारी अल्प पोषण (दर्जा 3 और 4 का) का शिकार बच्चे अक्सर उन्हीं गरीब परिवारों के साथ रहते ही हैं जो उन्हें पर्याप्त भोजन नहीं दे सकते। इसलिए अपने घर के भोजन और आहार से उनके स्वास्थ्य हो सकने की गुंजाइश काफी कम होती हैं। उनके माँ-बाप के पास न संसाधन होते हैं, न ज्ञान, न समय और न ही ऊर्जा, जो अपने बच्चे की देखरेख करके उसे ठीक कर लें। ऐसी स्थिति में बच्चे को डाक्टरी देखरेख में कई स्तर पर देखभाल की जरूरत होती है और साथ ही माँ को भी सामाजिक समर्थन चाहिए होता है। इन बच्चों की पहचान करने

चार्ट : 5.7. स्वास्थ्य कार्यकर्ता का दौरा : नियमितता और सम्भावना

क्या आंगनवाड़ी में स्वास्थ्य कार्यकर्ता नियमित रूप से आती हैं?	जहां स्वास्थ्य कार्यकर्ता तय दिनों दिन तय पर आती है	जहां स्वास्थ्य कार्यकर्ता के आने का दिन तय नहीं है
हरदम	56	28
आमतौर पर	40	32
शायद ही कभी	4	20
कभी नहीं	0	20

[a] आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के जवाब का प्रतिशात बंटवारा।

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004

बाक्स 5.6. बाल शक्ति योजना : कुपोषण रोकने की मध्य प्रदेश में कल्पनाशील पहल

मध्य प्रदेश शिशु मृत्यु और कुपोषण के मामलों में काफी खराब रिकार्ड रहता है। अति कुपोषित बच्चों के लिए खास प्रयास करने की जरूरत ने। वहाँ 'बाल शक्ति योजना' को जन्म दिया। स्वास्थ्य विकास के माध्यम में आने वाली इस योजना में कई तरह की सेवाएँ दी जाती हैं।

योजना अक्टूबर 2005 में, गुना जिले में, पोषण पुनर्वास केन्द्र (एन.आर.पी.) के रूप में शुरू हुई। इसमें अति कुपोषण का शिकार बच्चों को पोषाहार देने के साथ-साथ उनके अभिभावकों और देखरेख करने वालों को परामर्श और प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी थी। ऐसे बच्चों की पहचान, उनकों इस केन्द्र में भेजने और बाद में उनका ध्यान रखने की जिम्मेदारी आंगनवाड़ी वाली बहन जी की थी और यह काम स्वास्थ्य विभाग के निकट सहयोग के किया जाना था। स्वास्थ्य विभाग और एकीकृत बाल विकास सेवा योजना का सचमुच हाथ मिलना ही इस कार्यक्रम को औरों से अलग करता है। यह इस बात का शुभ संकेत भी था कि स्वास्थ्य विभाग भी यह मानने लगा है कि कुपोषण सिर्फ आंगनवाडी की जिम्मेदारी नहीं है उसकी भी जिम्मेवारी का मामला है। अभी यह सहरिया बच्चों की मौत के लिए सबसे बदनाम गुना और शिवपुरी जिलों में चल रहा है। पर जल्दी ही इसे पूरे प्रदेश में लागू करने की तैयारी है।

एन.आर.सी. का काम प्रायः जिला अस्पतालों के परिसर के पास ठीक और आसान पहुँच वाली जगह पर चलता है। वहाँ रसोई और शौचालय सचमुच काफी साफ हैं तथा वह स्थान भी हवादार और साफ-सुथरा है। वहाँ एक डॉक्टर, एक पोषण विशेषज्ञ, एक रसोइया, एक सफाई कर्मचारी और तीन नर्सों का स्टाफ होता है। रोज आंगनवाडी कार्यकर्ता जिन मामलों को यहाँ भेजती है उनकी जांच डॉक्टर करते हैं आमतौर शिशु विशेषज्ञ उन्हें देखते हैं। अभी तक अस्पताल और इस योजना के केन्द्रों के बीच अच्छा सम्बन्ध दिखता है। वैसे उनके रुझान में फर्क है। शिवपुरी में बच्चों को लाने का काम भी सरकारी वाहन से होता है। पर गुना में ऐसी व्यवस्था नहीं है। वार्ड में बच्चों और उनकी माताओं के आने जाने की आजादी है। आम तौर पर उनके प्रति अच्छा व्यवहार होता है और उनकी जहाँ तक सम्भव हो मदद करने की कोशिश की जाती है। बच्चे अगर बड़े हों तों शिवपुरी में उनको सर्व-शिक्षा अभियान की अनौपचारिक शिक्षा योजना में 'ब्रिज कोर्स' के लिए भेज दिया जाता है। अगर बच्चों के साथ उनके बाप भी हों तो उन्हें पास के निर्माण कामों में मजदूरी भी दी जाती है।

बच्चों को एक पखवाड़े के लिए केन्द्र में रखा जाता है जिस दौरान इनका पूरी तरह से मेडिकल मैनेजमेंट चलता है, घर में खाने के बारे में प्रशिक्षण दिया जाता है और उनका वजन बढ़ाने पर नजर रखी जाती है। सभी बच्चों को पहले शिशु विशेषज्ञ देखते हैं और उन्हे जरूरी लगता है तो उन्हें जिला अस्पताल में भर्ती भी करा देते हैं बच्चों में आहार पर रोजना 15 रुपये खर्च का प्रावधान है और उन्हें हर दो-दो घंटे में थोड़ा-थोड़ा खाना दिन में आठ बार दिया जाता है। रसोइया प्रशिक्षित तो होता ही है वह एकदम तय मानक और तरीकों में आहार बनाता है। माताओं को भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

आगे की देखरेख फिर से आंगनवाड़ी केन्द्र के जिम्मे आ जाता है। हर बच्चे को एक ग्रोथ चार्ट और डिस्चार्ज पेपर के साथ भेजा जाता है। उन्हें आयरन और विटामिन की गोलियों की पर्याप्त खुराक देकर भेजा जाता है और अगले छह महीनों में उसका कम से कम चार चेकअप आंगनवाड़ी कार्यकर्ता या स्वास्थ्य कार्यकर्ता से कराई जाती है। शिवपुरी में दो तीन महीने बाद फिर से कैम्प आयोजित किया जाता है। जिसमें डॉक्टर इस योजना में छोड़े गए बच्चों की जांच करते हैं। इन शिविरों में अति-कुपोषण में नए मामलों की पहचान और भर्ती का काम भी होता है।

कलक्टर, मुख्य मेडिकल अधिकारी, डॉक्टरों और परामर्शदाताओं से मिले समर्थन से कर्मचारी काफी उत्साहित और प्रेरित हैं और कार्यक्रम में शुरूआती नतीजे उनका उत्साह बढ़ाते हैं। इस कार्यक्रम में अब यूनिसेफ, स्वैच्छिक संस्थाओं, व्यक्तियों, रोटरी क्लबों और सेवा-भारती से भी मदद मिलने लगी है। इस प्रकार योजना में सामुदायिक भागदारी करना भी काफी अच्छा है। जिला स्वास्थ्य समिति की मासिक बैठक में अधिकारी स्तर पर सहयोग की बात होती है। यहाँ रोज-ब-रोज फोन और अन्य माध्यमों से सम्बद्ध विभागों के लोग एक दूसरे के सम्पर्क में रहते हैं।

इस योजना का असली लाभ है – कुपोषण के मुद्दे पर नए सिरे से सबका ध्यान देना और स्वास्थ्य विभाग तथा बाल विकास सेवा योजना में मेल होना। विभिन्न विभागों में मेल से चल रहे इस कार्यक्रम में गरीब बच्चों और महिलाओं के प्रति पूरे लगन और सहानुभूति से काम हो रहा है, यह विभागों में ऊपरी स्तर पर तथा जोन के स्तर पर स्वास्थ्य विभाग और आंगनवाडी कार्यकर्ताओं के काम-काज में कुछ कमियां रह जाती है। टी.बी. जैसे रोग का पूरा इलाज तथा उसकी दवा और आयरन गोलियों की कमी भी देखने में आई है।

यह इस योजना की शुरुआत काफी कुछ अनौपचारिक ढंग से हुई थी। पर शुरूआती सफलता ने सामुदायिक और स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को हैरान ही नहीं किया काफी उत्साहित भी किया। इस योजना के प्रभाव के बारे में कोई नतीजा निकालना अभी जल्दबाजी होगी पर शुरुआती नतीजे बहुत उम्मीदें जगाते हैं। गुना में 400 बच्चों को केन्द्र में दाखिल किया गया। उनमें से सिर्फ एक की मौत हुई। शिवपुरी में 1069 बच्चे दाखिल किए गए और 7 मौतें हुईं। अति कुपोषण के मामलों में मौत का औसत करीब 20 फीसदी है जबकि ये आंकड़े एक फीसदी से भी कम मौत बताते हैं। अस्पताल से छूटने के बाद बच्चों का प्रदर्शन अच्छा रहा था जो कम से कम शुरुआती कुछ महीनों तक तो जरूर था। विभिन्न बच्चों से जुड़े विस्तृत अध्ययन और तस्वीरों में भी बच्चों की स्थिति में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। पर थोड़े ज्यादा अवधि का और ज्यादा विस्तृत अध्ययन करने की जरूरत है।

सहयोग – डॉ. वदना प्रसाद
(एक्सिलरेटिंग चाईल्ड बुक 3, पी.एच.आर.एन. कोर्स से)

और उनके माँ–बाप को इलाज के लिए प्रेरित करने में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पर बच्चे के कुपोषण पर काम मुख्यत: स्वास्थ्य विभाग की जिम्मेदारी है। मध्य प्रदेश की 'बाल शक्ति योजना' जैसे कई उपयोगी पहल हाल के वर्षों में हुए हैं।

इस योजना और स्वास्थ्य विभाग के बीच बेहतर तालमेल की पहली कड़ी है स्वास्थ्य कार्यकर्ता द्वारा आंगनवाड़ियों का नियमित दौरा। सर्वेक्षण में आई अनेक आंगनवाड़ियों में उनके दौरे के दिन एक–दो होते हैं जैसे हर माह का दूसरा मंगलवार या हर दूसरे शनिवार को। कई बार दौरों का दिन तय नहीं होता और बिना बताए ही दौरे होते हैं। तय दिन वाले दौरों का ज्यादा लाभ पाया गया। जैसाकि चार्ट 5.7 से पता चलता है जहां दौरों के दिन तय नहीं हैं वहां की 42 फीसदी आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का जवाब था कि स्वास्थ्य कार्यकर्ता कभी आती ही नहीं या कभी कभार आती हैं। जहां दिन तय हैं वहां यह शिकायत सिर्फ 6 फीसदी मिली।

तय दिन वाली प्रणाली धीरे–धीरे लोकप्रिय हो रही है और कई राज्यों में अब इसे लागू किया जा रहा है। कई राज्यों में तो हर आंगनवाड़ी के लिए महीने का एक दिन 'स्वास्थ्य दिवस' के दिन के में तय कर दिया जाता है। उस दिन टीकाकरण, छोटे बच्चों का वजन लेने, घर ले जाने वाले राशन का वितरण और पोषण तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी परामर्श देने का काम होता है। इस चीज को अब जल्दी ही "राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन" के माध्यम से और कायम किया जाएगा। स्वास्थ्य सेवा और इस योजना के बीच यह बेहतर तालमेल का अच्छा उदाहरण है। एक और उदाहरण इस योजना के क्षेत्रों और स्वास्थ्य विभाग के लोगों को साझा प्रशिक्षण देने का है। जो तमिलनाडु में चल भी रहा है। (देखें अध्याय 8).

हाल में 'राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन' द्वारा 18 प्रमुख राज्यों में 1000 लोगों की हर बस्ती के लिए मान्यताप्राप्त सामाजिक एवं स्वास्थ्य कार्यकर्ता (*आशा* जो *ऐफिलेटेड सोशल ऐंड हेल्थ एक्टिविक्ट* के अंग्रेजी के प्रथमाक्षरों से बना है) का पद बनाने की पहल की गई है। इसमें भी "एकीकृत बाल विकास योजना" और स्वास्थ्य सेवाओं के मेल का काम आगे बढ़ेगा। इस नई योजना में 'आशा' के लिए जो–जो काम तय किए गए हैं उनमें कई चीजें छह से कम उम्र के बच्चों के लिए भी हैं। जैसे कि :–

- लोगों में स्वास्थ्य के मुद्दों और स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में बेहतर चेतना पैदा करना।
- गर्भावस्था, स्तनपान, टीकाकरण, पोषण और नन्हें बच्चों की देखरेख से सम्बन्धित परामर्श देना।
- समुदाय में सक्रियता लाकर स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग बढ़ाना।
- गर्भवती महिलाओं और बीमार बच्चों के साथ स्वास्थ्य केन्द्रों तक जाना।
- बुखार और दस्त जैसे रोगों में शुरुआती इलाज करना।

इस प्रकार आंगनवाड़ी और "आशा" कार्यक्रम में एक स्वाभाविक किस्म की परस्पर निर्भरता है और इस काम को करना दोनों सेवाओं की सफलता के लिए जरूरी है। 'आशा' कार्यक्रम 'एकीकृत बाल विकास सेवा' की स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं तक पहुंच और क्वालिटी में सुधार करने का एक अवसर भी है। उनके लिए और स्वास्थ्य व्यवस्था के लिए भी, ग्रामीण इलाकों में पहुंचने और आशा के लिए प्रभावी समर्थन व्यवस्था बनाने में आंगनवाड़ियां काफी मददगार भूमिका निभा सकती हैं।

'आशा' की तरह के समदुायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवक योजनाओं का पुराना इतिहास कोई बहुत अच्छा नहीं रहा है। इसलिए यह मान लेना बचपना होगा कि योजना शुरू हुई नहीं कि स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार आ जाएगा। भारतीय स्वास्थ्य सेवाओं की गड़बड़ियां काफी भारी हैं और इस तरह के उपायों से उन सबको दुरूस्त नहीं किया जा सकता। फिर भी हाल के अनुभवों ने इसी तरीके से स्वास्थ्य के मामले में सुधार कर सकने की सम्भावनाएं बताई हैं। 2001–02 में छत्तीसगढ़ में शुरू हुई 'मितादिन' योजना इस सन्दर्भ में काफी दिचलस्प है। जैसा कि चार्ट 5.8 से जाहिर होता है, छत्तीसगढ़ में स्वास्थ्य संकेतकों में पूरे भारत की तुलना में कहीं तेज रफ्तार से सुधार हुआ है। प्रसव पूर्व की देखरेख, टीकाकरण, प्रसव में मदद, दस्त में इलाज और नन्हें शिशुओं के पोषाहार के मामले में रिकार्ड और भी बेहतर है जो किसी न किसी तरह से मितानिन योजना से जुड़े हैं। इन संकेतकों के आधार पर मितानिन योजना को महान सफल बताना जल्दबाजी होगी हाँ ये जरूर बताते हैं कि छत्तीसगढ़ के स्वास्थ्य की स्थिति तेजी से सुधरने की तरफ अग्रसर है और इस प्रयोग पर नजर रखने की जरूरत है। यह चीज़ इसलिए भी खास महत्व की है क्योंकि यह हिन्दी पट्टी या सुस्त पड़ी माने जाने वाले इलाकों में हो रही हैं।

बाक्स 5.7. एकीकृत बाल विकास सेवाएं और सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता

वैसे तो शिशु मृत्यु दर में काफी कमी हुई है या यह अभी भी अधिक है और जैसा सोचा गया था वैसा नतीजा नहीं मिल सका है। राष्ट्रीय सूक्ष्म पोषण और स्वास्थ्य आयोग की भविष्यवाणी है कि शिशु मृत्यु दर 61 (2003 का आंकड़ा) से घट कर 2016 में 42 रह जाएगी, जबकि लक्ष्य 62 से घटाकर 21 करने का था। सिर्फ केरल ही 2016 तक इस लक्ष्य को पार कर लेगा जबकि अभी ही वह इसके काफी करीब पहुँच चुका है।

अभी तक राज्य की नीति का सारा जोर एकीकृत बाल विकास सेवाओं और सहायक नर्स वाली सेवाओं का था। पूरक पोषाहार के जरिए आंगनबाड़ी केन्द्र इस काम में मदद करते हैं, वे बच्चों के विकास पर नजर रखने का काम भी करते हैं। पर पूरक पोषाहार दो या तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों को नहीं मिलता जबकि जन्म से लेकर दो तीन वर्ष की अवस्था ही सबसे नाजुक होती है और बच्चे यहीं कुपोषण का शिकार बनते हैं। कार्यक्रम की रूपरेखा और पहुंच की अन्य गड़बड़ियां भी बच्चों के जीवन पर भारी पड़ रही हैं। फिर काफी सारे बच्चे इन योजनाओं के दायरें से बाहर ही हैं।

सहायक नर्सों का मुख्य समय तो टीकाकरण और गर्भवती महिलाओं की देखरेख में जाता है। पर टीकाकरण से मृत्युदर में 1 से 3 फीसदी से ज्यादा गिरावट नहीं आ सकती। पर इन कामों में उलझे होने के चलते उसका नवजातों और बीमार बच्चों तक नियमित रूप से पहुंचना या प्रसव के समय मौजूद रहना सम्भव नहीं हो पाता। बच्चों की बीमारी के समय क्या-क्या करें या स्तनपान में क्या सावधानियां रखें जैसी सलाह देने का काम भी वे बहुत व्यवस्थित ढंग से नहीं कर पाती हैं। पर महत्वपूर्ण बात यह है कि ये छोटी-छोटी चीजें ही नवजातों की जीवनरक्षा में ज्यादा काम आती हैं।

गैर-सरकारी संगठनों ने सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता कार्यक्रमों के माध्यय से शिशु प्राण रक्षा के काम में अपनी भूमिका निभाने का प्रयास किया है। ऐसे कार्यक्रमों से 5 वर्ष की की अवधि तक में, शिशु मृत्यु दर में, नाटकीय कमी आई है। इनमें सबसे चर्चित मामलें जायखेड़ और गढ़चिरौली के हैं, वा इस तरह के उदाहरणों की कमी नहीं है।

दुर्भाग्यवश सरकार की तरफ से ऐसे कार्यक्रमों की जो कोशिशें हुईं उनमें ऐसे नतीजें नहीं निकले। सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता आधारित कार्यक्रमों में छत्तीसगढ़ का 'मितानिन' कार्यक्रम जरूर अपेक्षाकृत सफल रहा है। बच्चों की देखरेख में बदलाव के तरीकों के प्रसार और शिशुओं की प्राण रक्षा के लिए जरूरी स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए सामुदायिक प्रतिनिधि के तौर पर मितानिन नियुक्त करने की कल्पना की गई थी जो सामुदायिक चेतना और परिवार के लोगों को जानकारियां उपलब्ध कराने के यह काम करती है। 'प्रथम दिन, प्रथम उपचार' के नारे के साथ वे बीमार बच्चों को तुरन्त और उचित सहायता देने का प्रयास करती है।

यह कार्यक्रम आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायक नर्स योजना के साथ मिलकर काम करता है। जब बस्तियों में टीकाकरण चलता है बड़ें आंगनबाड़ी वाली बहन जी, सहायक नर्स और मितानिन, तीनों ही उसमें मौजूद होते हैं। मितानिन के कामों में एकीकृत बाल विकास सेवाओं का लाभ लोगों के लिए उपलब्ध कराना और इस योजना में टूट रहे कमजोर परिवारों की मदद करके उन्हें भी इसका लाभ दिलवाना है। सेवाओं का लाभ हर बस्ती तक पहुँचे और उनकी सेवाएं मिलें इसका ध्यान रखना भी उसकी जिम्मेवारी है।

पर कार्यक्रम आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को सहायता देने से काफी आगे तक जाता है। और मितानिन उसके स्तर पर भी कई मामलों में पहल करती है। ये चीजें आंगनवाड़ी में छूटी रहती हैं। या इन कामों में आंगनवाड़ियों का प्रदर्शन कमजोर है। मितानिन घर-घर जाकर और परिवार को साथ बैठाकर कुपोषण दूर करने और टालने के बारे में बात करती हैं जबकि आंगनवाड़ी कार्यकर्ता अक्सर उसके केन्द्र पर आने वाली माताओं से भेंट करती हैं, कुछ सलाह देती हैं। मितानिन जन्म से लेकर दो वर्ष तक के बच्चों पर ही ज्यादा ध्यान देती है और उनकी कमियों का ख्याल रखती है। वह बच्चा पैदा होने वाले प्रत्येक परिवार में बच्चे के जन्म से 24 घंटे के अंदर ही पहुँचकर छह बुनियादी बातों के बारे में परामर्श देती हैं। जन्म के एक घंटे के अंदर ही स्तनपान शुरू करना, मां को भी पौष्टिक खुराक की जरूरत बताना, नवजात को गर्माहट के साथ रखना, बच्चे का वजन लेना और ज्यादा कम वजन वाले बच्चों को अस्पताल भेजना। ये काम बहुत आसान है और थोड़ी पढ़ाई-लिखाई वाली कार्यकर्ता भी कर लेती हैं पर इसका बच्चों के जीवित रहने और पालन पोषण पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जब कार्यक्रम तीन साल चल जाता है तो मितानिन का अनुभव और प्रशिक्षण भी काफी हो जाता है। उसके कामों से समाज में और परिवारों के अंदर जो योजना बढ़ती है वह भी आगे चलकर उसके कामों में मदद करती है और फिर नतीजे और बेहतर आने लगते हैं।

शुरुआती परिणाम काफी उत्साहवर्द्धक हैं। ग्रामीण इलाकों में शिशु मृत्युदर प्रति 1000 पर 2002 में आकर 87 था तो यह 2003 में 77 (एस. आर.एस.) और 75 (राष्ट्रीय परिवार सर्वेक्षण) तथा 2004 में 61 हो गया था। जन्म लेने के तत्काल बाद से स्तनपान कराने सम्बन्धी आंकड़े भी काफी अच्छा हो गए हैं। 2002 में जन्म में एक घंटे के अंदर-अंदर मात्र 22 फीसदी बच्चों को स्तनपान शुरू कराया गया तो अब यह 88 फीसदी (यूनिसेफ) हो गया है। पर ये शुरूआती और नाजुक प्रवृत्तियां लोगों के मन में और आचरण में जड़ जमा लें इसके लिए काफी काम किए जाने की जरूरत है। फिर कार्यक्रम के स्वरूप में ज्यादा बदलाव किए बगैर इसके लिए तय मानकों को भी बेहतर बनाने की जरूरत है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ने सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता आधारित एक बड़ी पहल 'आशा' की शुरूआत की है। जरूरी सार्वजनिक सेवाओं का लाभ गरीब और वंचित तबकों के लोगों को दिलाने के लिए यह सामुदायिक प्रयास बढ़ाने का कार्यक्रम है। बीमार बच्चों तक सबसे पहले पहुंचने और शिशु पालन के उपभुक्त तौर तरीकों के प्रचार-प्रसार का काम इसमें साझे रूप से करने का प्रयास है। अगर ऐसा हुआ, जो मितानिन योजना से सम्भव दिखता है, तो मुल्क के बच्चों की प्राण रक्षा और उनके स्वास्थ्य में काफी सुधार सम्भव होगा।

सहयोग – टी. सुंदररामन

चार्ट : 5.8. स्वास्थ्य संकेतकों की प्रगति : छत्तीसगढ़ और भारत

	छत्तीसगढ़			भारत		
	1998-99	2005-06	बदलाव[a]	1998-99	2005-06	बदलाव[a]
धनात्मक संकेत						
पिछले प्रसव के दौरान कम से कम तीन बार स्वास्थ्य कार्यकर्ता का दौरा देखने वाली माताओं का प्रतिशत अनुपात	33	5	+22	44	51	+7
प्रसव के समय डॉक्टर/नर्स की मदद पाने कार्यकर्ता का दौरा देखने वाली माताओं का प्रतिशत अनुपात	32	44	+12	42	48	+6
जन्म के पहले ही घंटे में ही स्तनपान कर पाने वाले तीन साल से कम उम्र के उच्चों का प्रतिशत	14	25	+11	16	23	+7
12-23 माह के उन बच्चों का प्रतिशत अनुपात जिनको सारे टीके लग चुके हैं।	22	49	+27	42	44	+2
दस्त के समय ओआरएस की खुराक पाने वाले बच्चों का प्रतिशत अनुमान	30	42	+12	27	26	−1
ऋणात्मक संकेत						
तीन वर्ष से कम उम्र के कम वजन वाले बच्चों का अनुपात	61	52	−9	47	46	−1
शिशु मत्यु दर[b] (प्रति 1000 जन्म दर)	81 (79)	71 (60)	−10 (−19)	68 (68)	57 (58)	−11 (−10)

[a] प्रतिशत अंक

[b] कोष्ठक में नमूना पंजीकरण प्रणाली के 2000 और 2004-05 के अनुमान है। छत्तीसगढ राज्य का गठन 2000 में हुआ था उससे पहले के वर्ष के नमूना पंजीकरण प्रणाली के आंकड़े उपलब्ध नहीं है।

स्रोत : राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या विकास संस्थान, 2000, 2006)

5.4 प्रसवपूर्व देखरेख और मातृत्व स्वास्थ्य

लड़का हो या लड़की उसे जन्म देने और उसके पालन पोषण में मुख्य भूमिका औरत की ही होती है। जब बच्चा छह माह का हो जाता है तब माँ पर उसकी निर्भरता कम हो जाती है, पर आमतौर पर माँ ही उसका सब काम करती रहती है। इस पर यह बात स्वतः सिद्ध है कि जैसा माँ का स्वास्थ्य होगा, उनके पास जितनी शक्ति होगी, फैसलों में उसकी जितनी चलती होगी उन सबका प्रभाव बच्चे के जन्म से लेकर उसके पालन पोषण पर होगा ही। यह प्रभाव लड़के की तुलना में लड़की पर और ज्यादा होगा क्योंकि हमारी पुरुष प्रधान पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था में लड़कियां मां से ज्यादा करीब भी होती हैं। और यह औरत की कमजोर स्थिति ही है जो कन्या भ्रूण हत्या से लेकर लड़की के पालन-पोषण को लड़कों से कम महत्व देने, उस पर अपने छोटे-भाई बहनों और घर के काम करने का बोझ लादने, पढ़ाई में कमी करने से लेकर हर मामले में लड़की को कमजोर रखने के लिए जिम्मेवार है।

बच्चों के लालन-पालन की मुख्य भूमिका निभाने के चलते औरत का अपना स्वास्थ्य और कल्याण भी बच्चों के शुरूआती वर्षों की देखरेख की दृष्टि से काफी

महत्वपूर्ण है। पर अभी होता यही है कि उसकी भूमिका को महत्व ही नहीं मिलता और उसके काम को तो स्वत: मिलने वाला मान लिया जाता है। जबकि हर अनुसंधान से यही बात सामने आ रही है कि उसके स्वास्थ्य, ऊर्जा, शक्ति और समय का बच्चों के स्वास्थ्य की दृष्टि से काफी महत्व है। और इन्हीं चीजों से बेपरवाही तथाकथित 'दक्षिण एशियाई पहेली' को जन्म देती है जो कुपोषण, रोगों और गड़बड़ियों के इतने बड़े स्तर के लिए जिम्मेवार है और जो प्रति व्यक्ति आय में हमसे पीछे रहने वाले मुल्कों को भी बाल स्वास्थ्य के मामले में हमसे आगे निकल जाने देता है।

इस प्रकार प्रसव-पूर्व की देखरेख, मातृ स्वास्थ्य और सम्बन्धित सेवाएं कम से कम तीन कारणों से काफी महत्वपूर्ण हैं। इनका छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। क्योंकि माँ की स्थिति का इनकी देखरेख से सीधा सम्बन्ध है। जैसे, भारत में जन्म लेने वाले एक तिहाई बच्चों का वजन सामान्य से कम होता है। इसकी थोड़ी चर्चा हम अध्याय 2 में कर चुके हैं। इस जन्मजात अल्प-पोषण वाले बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति बचपन में ही नहीं, बाद के जीवन में भी सामान्य नहीं रहती। दूसरे, प्रसव-पूर्व देखरेख और मातृ स्वास्थ्य पर ध्यान देना इस कुपोषण और खराब स्वास्थ्य का एक पीढ़ी से दूसरी में जाना थाम सकते हैं। कुपोषित मां का बच्चा भी आमतौर पर कुपोषित होता है। और अगर लड़की कुपोषण का शिकार हुई तो बहुत सम्भव है कि उसकी होने वाली संताने भी कुपोषित होंगी। अगर गर्भवती और लरकोरी औरतों की पर्याप्त देखरेख नहीं हुई तो यह दुश्चक्र बन ही जाता है। तीसरे प्रसवपूर्व और मातृ स्वास्थ्य की देखरेख महत्वपूर्ण है क्योंकि यह औरतों के मातृत्व अधिकारों और कल्याण के लिए भी जरूरी है। अगर बच्चे के स्वास्थ्य का उसकी मां से कोई रिश्ता न हो तब भी उस औरत को अपने लिए भी इन चीजों की जरूरत है।

और अन्य स्वास्थ्य सेवाओं की तरह मातृ स्वास्थ्य की देखरेख का काम

चार्ट : 5.9. एकीकृत बाल विकास सेवा में प्रसव पूर्व देखरेख और मातृत्व स्वास्थ्य

	तमिलनाडु	"सक्रिय राज्य"[a]	"निष्क्रिय राज्य"[a]	उत्तर प्रदेश	फोकस स्टेटस[a]
ग़र्भावस्था के दौरान लाभ पाने वालों का अनुपात :					
पोषक पदार्थों का प्रावधान	88	81	51	29	66
प्रसवके दौरान कम से कम एक बार चैक अप	100	93	50	50	72
टेटनस का टीका (कम से कम दो खुराक)	94	74	37	41	48
आयरन और फोलिक एसिड की गोलियों का प्रावधान	94	95	57	52	75
आंगनवानड़ी कार्यकर्ता या स्वास्थ्य काय से प्रसव सम्बन्धी किसी किस्म की सलाह	67	45	13	14	28
आंगनवानड़ी कार्यकर्ता के कहने से डॉक्टर/ नर्स का घर का दौरा	50	47	16	10	31
हाल में गम्भीर परेशानियों वाले गर्भ का अनुपात :	25	30	54	77	43

[a] सक्रिय राज्य : हिमालच प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, निष्क्रिय राज्य : छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, फोकस राज्य से आशय इन सभी छह: राज्यों से है।

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004 यह आंकड़ा पिछले महीनों में बच्चे जनने वाली 96 माताओं से पूछे गए सवालों पर आधारित हैं। ये आंकड़े बहुत छोटे आधार पर तैयार हैं और इन्हें हल्का संकेत भर मानना चाहिए।

मुख्यतः स्वास्थ्य व्यवस्था पर है लेकिन कुछ सेवाएं *"एकीकृत बाल विकास सेवा योजना"* से भी सीधे या परोक्ष रूप से जुड़ी हैं। जैसे हर आंगनवाड़ी में एक रजिस्टर गर्भवती औरतों के लिए भी होता है और फिर उनको प्रसवपूर्ण की जांच, पोषक चीजों की खुराक, टिटनेस का टीका और पोषण सम्बन्धी परामर्श दिए जाने का प्रावधान है। व्यवहार में ये सेवाएं पूरी तरह नहीं दी जातीं जैसा कि चार्ट 5.9 से स्पष्ट है। फोकस सर्वेक्षण में आए सक्रिय राज्यों (हिमाचल प्रदेश, तमिलनाडु और महाराष्ट्र) में प्रसवपूर्ण और मातृ स्वास्थ्य सेवाएं अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से दी जाती है और आंगनवाड़ियां ही इनका माध्यम है। इन राज्यों में इन सेवाओं को औरतें अपना हक भी मानने लगी हैं। जैसे तमिलनाडु में यह लगभग असम्भव सा है कि कोई औरत गर्भवती हो और उसे मानक समर्थन सेवाएं (पूरक पोषाहर, जांच, टेटनेस की सुई, आराम की गोलियां वगैरह) न मिल पाएं । यह स्थिति समाज के कमजोर वर्ग की औरतों की भी है। पर 'निष्क्रिय' राज्यों में स्थिति एकदम उल्टी है। उत्तर प्रदेश में सर्वेक्षण के दायरे में आई आधी औरतों को उनके पिछले प्रसव में पहले एक बार भी चेकअप का लाभ भी नहीं मिला। यह राज्य में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति पर एक गम्भीर टिप्पणी है। इससे भी गम्भीर बात यह है कि इन औरतों में से 80 फीसदी ने प्रसव और गर्भावस्था के दौरान गम्भीर परेशानियों की शिकायत की जो चार्ट 5.9 के साथ है। अगर हम इन दो स्थितियों को नजरअंदराज करके सभी छह राज्यों की औसत स्थिति की तुलना करें तो हमें अन्य स्वास्थ्य सेवाओं जैसी स्थिति ही नजर आएगी। व्यवस्था और प्रावधानों में कमी नहीं है पर व्यवस्था में भारी कमियां हैं। फिर ऐसी जरूरतमंद औरतों और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के बीच सक्रिय और अच्छे सम्बन्ध भी नहीं दिखते। जैसे 23 फीसदी माताओं ने यह पूछने का जवाब 'हाँ' दिया कि "क्या पिछले गर्भ के दौरान आपने कभी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और स्वास्थ्य कार्यकत्री ने कुछ सावधानियां रखने और खान-पान-रहने की आदतों में बदलाव का सुझाव दिया था?" तमिलनाडु में इस सवाल के जवाब में 67 फीसदी औरतों ने 'हाँ' कहा था, और इससे यह सम्भावना जगती है कि इस स्थिति में बदलाव सम्भव है।

प्रसवपूर्व की देखरेख महत्वपूर्ण है लेकिन काफी सारी औरतों की स्थिति गर्भ ठहरने के पहले से ही इतनी खस्ताहाल होती है कि कायदे से और पहले से मदद की शुरुआत कर देनी चाहिए। जैसे यह मानी हुई बात है कि अगर वो शिक्षित हों तो अपने बच्चे की बेहतर देखरेख कर सकती है, समाज, परिवार और स्वास्थ्य सेवाएं देने वालों के बीच उसकी बातें ज्यादा महत्व पाती हैं। इसी जरूरत को ध्यान में रखते हुए अब *एकीकृत बाल विकास सेवा योजना* के कामों में किशोरियों को भी ले आया गया हैं पर ये सेवाएं बहुत सीमित हैं। उनसे जुड़ा मुख्य कार्यक्रम *किशोरी शक्ति योजना*, अभी तक चुने हुए प्रदेशों में ही चल पा रहा है और वह भी सिर्फ कुछ प्रखंडो में ही चल पा रहा और वह भी सिर्फ कुछ पदार्थों को बांट देने भर का रह जाता है। और फिर यह समझना मुश्किल हो जाता है कि इससे माँ और बच्चे की देखरेख करने वाली सशक्त महिला की भूमिका निभाने में उसे कैसे मदद मिलेगी।

औरतों के सशक्तिकरण और बच्चों के स्वास्थ्य के बीच काफी सीधा सम्बन्ध 'फोकस' सर्वेक्षण में नई तरह से उजागर हुआ। यह मात्र संयोग नहीं है कि जिन तीन राज्यों में बाल सेवा योजनाएं अच्छी तरह चल रही हैं उनके बच्चों के स्वास्थ्य के बेहतर संकेतक भी उपलब्ध होने के साथ-साथ लैंगिक सम्बन्धों में सुधार और अर्थव्यवस्था तथा समाज में औरतों की अधिक सक्रिय भागीदारी भी दिखाई देती है। इन राज्यों की औरतों में पोषण और स्वास्थ्य के मुद्दों पर बेहतर चेतना है और वे अपनी मांगे भी बेहतर ढंग से रखती हैं। जैसे उन्हें अपने बच्चें को दिए जाने वाले टीकों का नाम मालूम होता है और अक्सर वे उनका कार्ड देखकर तब तक न लगे टीके लगाने की मांग करती हैं। इसके उल्ट छत्तीसगढ़, राजस्थान और उत्तर प्रदेश की माताओं को बच्चों की देखरेख की साधारण बातें भी अक्सर मालूम नहीं होती। "अपने बच्चों को टीके क्यों नहीं लगे?" अक्सर इस सवाल पर उनका जवाब होता था, "हमें किसी ने बुलाया हीं नहीं?" या "हमें मालूम हीं नहीं है।"

बाड़मेर की विशाला गांव की सुशीला की कहानी से इस स्थिति का बेहतर पता चलता है। वह गांव के बाहरी हिस्से में स्थित मिट्टी के मकान में अपने पति और दो बच्चों के साथ रहती है। उसका पति जूते ठीक करता है और यह परिवार काफी गरीब है। सुशीला ने स्कूल का मुंह नहीं देखा और उसने हमारे ज्यादातर सवालों का जवाब नहीं दिया और बातचीत के दौरान कढ़ाई का खूबसूरत काम करती रही। उसने थोड़ी उदासी के साथ बताया, "शादी के बाद मैं घर से बाहर कहीं भी नहीं गई हूँ। सिर्फ बीमार पड़ने पर बाहर गई। जब मेरे पति मुझे बाड़मेर के अस्पताल में ले गए थे।" उसके

बाक्स 5.8. खेल खेल में

दृश्य 1 :

बाहर बच्चे फिसलपट्टी पर खेल रहे हैं, अंदर, कुछ बच्चे एक चौकियों में इर्द गिर्द बैठे हैं। एक चौकी पर पेड़ बना है और उसमें किनारे-किनारे छोटे-छोटे पत्थर सजा दिए गए है। दूसरे पर पत्रिकाओं से फाड़े गए पन्नों पर बच्चों द्वारा की गई चित्रकारी को सजा कर रखा गया है। एक और चौकी पर एक बड़ा सा कटोरा रखा है और उसके लटकते भागों में बच्चे रंगीन मोती पिरोने में लगे हैं। दो और समूह कमरे में एक किनारे बैठे हैं। दुपट्टे से घेरे हुए स्थान में वे 'रसोई' बनाए हुए हैं। दूसरे बच्चे प्लास्टिक के गिलास, कटोरी और खुशी से रेत में कुछ बनाने का प्रयास कर रहे रहे हैं। एक 'दीदी' यहाँ से वहां घूम रही है और किसी को शबासी दे रही हैं तो किसी को बड़बड़ी न करने की हिदायत।

स्कूल पूर्व के वर्ष बच्चों को नई चीजें जानने, रिश्तों को समझने और अपनी पहचान विकसित करने के ख्याल से काफी महत्वपूर्ण होते है। तब तक करने की शक्ति बहुत ही प्रारम्भिक अवस्थ में होती है। ऐसे में बच्चे ठीक चीजों और खुशी में काम करन को ज्यादा तेजी से समझ पाते हैं। उन्हें गाना, धुन, बार-बार किसी काम को करना अच्छा लगता है। वे ज्यादा से ज्यादा पन्द्रह मिनट तक एक चीज का ध्यान दे सकते हैं । वे चाहते हैं कि सब उनकी हरकतों पर ध्यान दें। किसी भी प्रक्रिया में बच्चा शान्ति से बैठा तमाशबीन नहीं रह सकता। वह उसमें सक्रिय भागीदार बनना चाहता है।

दृश्य 2 :

थोड़ी दूर से बच्चों की आवाजें आ रही हैं अ से अनार, आ से आम, इ से इमली बच्चों ने गेरूएं और भूरे रंग की पोशाकें पहनी हैं, पांत लगाकर बैठे हैं, उनके सामने उनका स्कूल बैग है, ब्लैकबोर्ड के साथ शिक्षिका खड़ी होकर छड़ी के सहारे दीवार पर टंगी तस्वीर में कोई चीज बताने की कोशिश कर रही है। अधिकांश सरकारी स्कूलों में यह दृश्य आम है। पर जरा रुकिए क्या इतने छोटे बच्चों को स्कूल भेजना ठीक है? यह 'प्री-स्कूल' है या स्कूल की शुरूआत ही कुछ ज्यादा पहले की गई है?

किसी भी अच्छी योजना की सफलता की बुनियादी उसके रोजना के कार्यक्रम और पाठ्यचर्चा का ठीक होना है। शिक्षण का कौशल और प्रशिक्षण इस मामलें में सबसे महत्वपूर्ण हो जाता है। 'प्री-स्कूल' में बच्चों के जीवन में रोज कुछ नई बातें करना, सीखना, सामाजिक भावनात्मक और शारीरिक जरूरतों पर ध्यान देना शामिल होना चाहिए। इसके लिए सक्रियता और खाली समय का सही संतुलन चाहिए, छोटी और बड़ी सामूहिक गतिविधियां चाहिए और ये सब काम ऐसे होने चाहिए जिनमें बच्चों को आनन्द भी आए और काम सखीते हुए बोझ भी न लगे।

दृश्य 3 :

बच्चों की पीठ पर बोझ है। इसे लिए ही वे खेल रहे हैं, भागा-दौड़ी कर रहे हैं और कचरे के ढेर से बिन सकने वाली कुछ चीजें बीन रहे हैं। इन्हें बेचने से उन्हें कबाड़ी वाले से कुछ रुपए मिल जाएंगे। वे होश सम्भालने के बाद से यही कर रहे हैं। उनके बड़े भाई-बहनों ने भी यही किया है। उनके लिए स्कूल जाना कोई विकल्प नहीं है। मास्टर जी हमें पीटते हैं और दूसरे बच्चें हमें सिखाते हैं।

अनुसंधान से यह बात सामने आई है कि मनुष्य का मस्तिष्क छह वर्ष की उम्र तक 80 फीसदी विकसित हो जाता है। फिर बच्चों को कैसा अवसर मिलता है। और कैसा बाहरी माहौल होता है, इस पर बाकी चीजें निर्भर करती हैं। आंतरिक क्षमताओं, दिलचस्पी और अनुभवों के हिसाब एक जटिल प्रक्रिया के माध्यम से विकास के अगले चरण पूरे होते हैं। इसलिए महौल का बहुत महत्व है। और अगर बच्चे को ऐसा वातावरण न मिले तो :

- उसके विकास में देरी होगी, कौशल में कमी रह जाएगी।
- स्कूल में प्रदर्शन खराब होगा।
- पढ़ाई छोड़ने का अंदेशा बढ़ जाएगा।
- जीवन की परिस्थितियों में ढलने में परेशानी होगी।
- आत्म विश्वास की कमी होगी।

बच्चे को बिना परेशानी वाला ऐसा उपयुक्त कौशल देना कोई मुकिश्ल काम नहीं है जिसमें वह अपने ढंग से चीजों को समझने, सीखने और प्रयोग करने की आजादी महसूस करें, जहां कुछ करने और उपलब्धि लाने का दबाव न हो, नतीजों को 'ज्ञान' की जगह 'सीखने की क्षमता' में वृद्धि के हिसाब से देखा जाए। ये अनुभव बच्चे में शुरू के दौर में ही एक कारगर नतीजा विकसित करते हैं और इसी में उसके स्वस्थ, व्यवस्थित और उत्पादक व्यक्ति के रूप में विकसित होने का आधार तैयार होता है।

सहयोग – मृदुला बज़ाज

बच्चों को कोई भी टीका नहीं लगा है। सुशीला ने कहा, "मुझे टीका के बारे में कुछ भी नहीं मालूम है। मुझे किसी ने बताया भी नहीं। इसलिए मैं क्या कर सकती हूँ।" उसके पड़ोस के काफी सारे बच्चे आंगनवाड़ी जाते हैं पर उसे नहीं मालूम कि इसके लिए क्या करना होगा, कहां जाना होगा। दरअसल उसे यह भी नहीं मालूम कि आंगनवड़ी है क्या?

इस तरह हम देखते हैं कि माता और बच्चे के स्वास्थ्य का मसला, लैंगिक समता और महिला शक्तिकरण के बड़े मसलों से जुड़ा है। ग्रामीण भारत में बदलाव के वाहक के रूप में 'आशा' की भूमिका, जिसकी थोड़ी चर्चा पहले हुई है, को इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।

चार्ट : 5.10. आंगनवाड़ी में स्कूल-पूर्व शिक्षा : सर्वेक्षण में आई माताओं की राय

	तमिलनाडु	"सक्रिय राज्य"[a]	"निष्क्रिय राज्य"[a]	उत्तर प्रदेश	फोकस स्टेटस[a]
क्या आंगनवाड़ी में किसी खेल या शिक्षा देने के काम की जानकारी आपको है?					
हाँ	86	54	41	36	47
नहीं	5	20	26	26	23
पता नहीं	9	26	33	38	30
क्या खेलने और सीखने से आपके बच्चों को लाभ होता है?[b]					
हाँ	90	81	57	56	70
नहीं	0	4	14	7	8
पता नहीं	10	15	29	37	22

[a] सक्रिय राज्य : हिमालच प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, निष्क्रिय राज्य : छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, फोकस राज्य से आशय इन सभी छह: राज्यों से है।
[b] जिन माताओं के पहले सवाल का जवाब 'हाँ' दिया, सिर्फ उनसे ही दूसरा सवाल पूछा गया।
स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004 : स्थानीय आंगनवाड़ी में जिन महिलाओं का 3-6 वर्ष का कोई बच्चा जाता था, उनसे ही यह सवाल पूछे गये।

5.5 स्कूल-पूर्व की शिक्षा

जीवन के शुरुआती कुछ वर्षों में ही, प्राथमिक स्कूल जाने से भी पहले, बच्चा अपने कौशल का विकास कर लेता है और उसके मस्तिष्क का काफी कुछ विकास हो जाता है। इसी दौरान वह दूसरों के साथ मेल-जोल, चीजों को पहचानने, विभिन्न भावनाओं को व्यक्त करने और उन्हीं के अनुरूप आचरण करके, सही-गलत समझने, हाथ और ऊंगलियों के काम करने, इच्छा के अनुसार दूसरे अंगों का संचालन करने, तरह-तरह के सवाल पूछने, कुछ का जवाब स्वयं पाने की कोशिश करने, कुछ कुछ बातें पढ़ने और बताने, कुछ रेखाएं और चित्र बनाने, कहानी सुनाने, अक्सर तरह-तरह के पात्रों का किस्सा सुनाने, कुछ फैसले लेने और उनके पक्ष में तर्क देने, मातृभाषा समझने और काफी सारी और चीजों को जानना-समझना शुरू करता है। जैसाकि मृदुला बजाज कहती हैं (देखें बाक्स 5.9) खेल-खेल में चीजें सीखने का यह धंधा पर्याप्त गम्भीर है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि इस योजना में स्कूल-पूर्व शिक्षा पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। फोकस सर्वेक्षण से पता चलता है कि जहां आंगनवाड़ियों में ऐसी चीजें सिखाने का काम होता है वहां यह बहुत सीमित और मनमाने ढंग से होता है। सिर्फ तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश में शिक्षा वाला काम अपेक्षाकृत सक्रिय ढंग से हो रहा है। जैसाकि चार्ट 5.10 से जाहिर होता है तमिलनाडु की 86 फीसदी और हिमाचल प्रदेश की 74 फीसदी माताएं मानती थीं कि आंगनवाड़ियों में उनके बच्चों को कई चीजें सिखाई भी जाती हैं। यह सर्वेक्षण के सारे नमूनों में ऐसा कहने वाली माताओं का अनुपात सिर्फ 47 फीसदी था।

आंगनवाड़ियों में स्कूल पूर्व शिक्षा न देना और भी ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण है क्योंकि यहां इस काम को आसानी से किया जा सकता है। यह बात तब ज्यादा स्पष्ट ढंग से सामने आई जब उन लोगों से बातचीत की जा रही थी जिनके बच्चे किसी न किसी कारण से आंगनवाड़ियों में नहीं आ रहे थे। उनमें से 70 फीसदी से ज्यादा लोगों ने कहा कि वे चाहते हैं कि उनके बच्चे भी आंगनवाड़ी जाएं। और बच्चों को क्यों भेजना चाहते हैं, इसमें अधिकांश लोगों ने शिक्षा को पहला कारण बताया, आधे से ज्यादा लोगों ने शिक्षा को ही कारण बताया था।

जिनके बच्चे आंगनवाड़ी जाते है वैसी

बाक्स 5.9. सीखने के चमत्कार

शिशु अवस्था में भाषा का ज्ञान, खासकर अपनी मातृभाषा का ज्ञान बच्चे के विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। पर इसको अभी तक सबसे ज्यादा गलत भी समझा गया है। यह बात आज मानी जाती है कि सिर्फ नाम दोहराने से बच्चा नए शब्द नहीं सीख पाता। उसे दुनिया देखना अपनी जुबान में उसे बताने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। लोगों में मेलजोल और परिचित सन्दर्भों के आधार पर उसे अपने ढंग से अभिव्यक्ति की आजादी होनी चाहिए। नीचे दिया गया उद्धरण बताता है कि डेढ़ साल की बच्ची किस तरह से जानवरों को पहचानने, उनको विभिन्न श्रेणियों में रखने और अपनी भाषा विकसित करने का प्रयास करती है और इसमें उसे कुछ भी 'सिखाया' नहीं जाता।

नाइमा अठारह माह की है और तेजी से भाषा सीख रही है – सिर्फ बोलने के हिसाब से ही नहीं अपने माहौल को समझने-बूझने, उसे नजदीक में देखने और जानने के हिसाब से भी। वह तोते को देखती ही उत्साह से बोलती है 'काका' मलयालम में काका पक्षी को बोलते हैं। पर जैसे ही वहां एक मोर उड़ता हुआ पहुंचता है वह उसे बताते हुए कहती है, "भौं-भौं" उसे इसे इसी नाम या शब्द से बुलाने में कोई गड़बड़ी नहीं लगती। वह अभी कुछ ही शब्द बोल पाती है पर वह काफी सारी चीजें समझने लगी है और मोटे-मोटे विभाजनों के लिए वह एक-एक शब्द बोलती है।

मोर 'भौं-भौं' क्यों है? क्योंकि वह जमीन पर चलता है। स्पष्ट है कि उसके दिमाग में मोर और उड़ती चिड़िया में उतना मेल नहीं है जितना मोर और कुत्ते में। वह गिरगिट को भी 'काका' कहती है क्योंकि चिड़िया की तरह वह भी जमीन से ऊपर रहता हैं। उसे ये नाम किसी ने सिखाए नहीं है, उसने इन्हें खुद गढ़ा है, और वह भी इन्हें पूरी भाषा सीखने या सब कुछ बोलना सीखने तक ही इस्तेमाल करेगी। दिलचस्प बात यह है कि सब परिवार के लोगों के साथ में उसने नए शब्द सीखे उससे अपने गढ़े हुए ये शब्द बिसर गए। अगर गिरगिट को देखकर हमने "काका" कहा तो वह हमें टोकती है। 'पल्ली' जो मलयालम में गिरगिट के लिए प्रयुक्त शब्द है। उसे लगता है कि हम बड़े होकर इतनी बेवकूफी कैसे कर सकते हैं।

नईमा को मातृभाषा या मोर को 'भौं-भौं' कहना किसी ने नहीं 'सिखाया'। ना ही उससे किसी ने एक पक्षी और एक गिरगिट के बीच पांच समानताएं बताने को कहा। अगर उसके इन नामों को रट्टा लगवा दिया गया होता तो उसका दिमाग इस तरह काम नहीं करता। चीजों को देखना, समझना, सुनना, करना, आंदाजा लगाना, वर्गीकृत करना, तुलना करना और अपने ईर्द-गिर्द की चीजों के लिए बड़े लोगों से अपना शब्द जोड़ना, रट्टा लगाकर नहीं सिखया जा सकता।

सहयोग – अनीता रामपाल

माताओं ने भी बार-बार यह इच्छा जाहिर की थी कि उनके बच्चे आंगनवाड़ी में कुछ सीखें और अन्य बच्चों से मिलें-जुलें। "उठना-बैठना और दूसरे बच्चों में घुलना-मिलना सीख जायेंगे।" जहां यह काम होता है, माताएं उसे पसंद करती हैं। (चार्ट 5.10) अनेक का जवाब यह था कि इससे बच्चे स्कूल जाने के लिए तैयार होंगे और उन्हें आसानी से दाखिला मिल जाएगा। जैसा कि एक मां ने कहा कि उसका बेटा, "होशियार बनता है। फोकट में घर में रहेगा तो क्या करेगा।" एक मां ने कहा कि शिक्षा का काम सिर्फ पढ़ना-लिखना नहीं होना चाहिए। बच्चों को साइकिल चलाने जैसी चीज भी सिखानी चाहिए।

जब गरीब मां-बाप की शैक्षिक आकांक्षाएं बढ़ती जा रही हो तो स्कूल-पूर्व शिक्षा सेवा को बच्चों के लिए बेहतर माहौल देने और वंचित परिवारों के बच्चों को नई चीजें सिखाना उनकी वंचनाओं को कम करने की जिम्मेवारी निभानी चाहिए। इसमें बचपन में अवधारणाएं बन जाने तक की तैयारी की जानी चाहिए। बच्चे सिर्फ काम के माध्यम से तो सीखते ही हैं बड़ों के सहयोग और उसके साथियों के साथ मिलकर भी इन चीजों को सीखते हैं। शहरों की नर्सरी शिक्षा और पूर्व स्कूल शिक्षा में पढ़ाने के नाम पर जो कुछ होता है वह बच्चों के सीखने की प्राकृतिक प्रक्रिया से उलट ही है। अधिकांश ऐसे स्कूलों को सीखने की प्रक्रिया का खुद ही ज्ञान नहीं हैं। और वे जो चीजें 'पढ़ाते' हैं वह अगर नुकसानदेह न भी हो तो पुराना जरूर हो चुका है। जैसे इस बात पर काफी शोध हो चुके हैं कि बच्चों को अंकों का ज्ञान ठोस चीजों से, उनकी प्रवृत्तियों से, उनके क्रम से, बड़े-छोटे के आधार पर होता है। मशीनी ढंग से गिनती कर रट्टा लगवा देने से लाभ नहीं होता है। बनारस की एक आंगनवाड़ी में बच्चों को गुणा-भाग भी सिखाया जा रहा था – यह चीज एक सर्वेक्षणकर्ता ने देखी। प्री-स्कूल में जब ये चीजें पढ़ाई के नाम पर कराई जाती हैं तो बच्चों के मन में गणित का खौफ ही बन जाता है।

बाक्स 5.10. पुणे का शिशुवाचन कार्यक्रम

स्कूल पूर्व शिक्षा और सीखने सम्बन्धी उपलब्धियाँ

यह एक ज्ञात तथ्य है कि एकीकृत बाल विकास सेवाएं मुख्यतः स्वास्थ्य और पोषण पर ध्यान देते हैं जबकि आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के प्रशिक्षण का 40 फीसदी हिसाब स्कूल पूर्व शिक्षा वाला ही होता है। आंगनवाड़ियों में पढ़ाने-सिखने का काम आमतौर पर काफी सीमित होता है। इसीलिए पुणे में 'प्रथम' ने पांच वर्ष तक के बच्चों में सीखने का कौशल सिखाने के लिए शिशुवाचन कार्यक्रम शुरू किया। पांच वर्ष के उम्र के बच्चों को प्राथमिक स्कूलों में दाखिला मिल जाता है।

शिक्षा सम्बन्धी धार्मिक स्थिति रिपोर्ट 2005 में यह तथ्य सामने आया कि बच्चे स्कूल में शुरुआती दिनों में सीखने का बुनियादी कौशल विकसित नहीं कर पाते। तीन राज्यों – केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र में कक्षा एक के बच्चों सम्बन्धी तुलनात्मक आंकड़े टेबल एक में दिए गए हैं

यह भाई अपने आप काफी चीजें बता देता है। यह सर्वेक्षण अक्टूबर-नवम्बर 2005 में हुआ था। महाराष्ट्र जैसे प्रगतिशील राज्य में भी यह बात सामने आई कि 67 फीसदी के करीब बच्चे बढ़ने की क्षमता विकसित करने के मामले में शून्य रहते हैं या सिर्फ आंकड़े की पहचान नहीं कर पाते हैं। प्रथम ने 2003-04 में शिशुवाचन के माध्यम में उनके पक्ष में हस्तक्षेप शुरु किया।

पुणे की आंगनवाड़ियों के शिशुवाचक (2004-2005)

इस कार्यक्रम की शुरुआत पुणे की गंदी बस्तियों में चलने वाली 300 आंगनवाड़ियों में हुई। प्रथम के इन्हीं बस्तियों के पढ़े लिखे लड़के-लड़कियों को 4.5 से 5 वर्ग के बच्चों को पढ़ने और अंकों की पहचान विकसित कराने के लिए प्रशिक्षित किया। प्रथम शिशुवाचन में ये शिक्षक रोज आंगनवड़ियों के बच्चों को एक घंटे पढ़ाया करते हैं। बच्चों के माँ-बाप ने इस प्रयास में सहायता की। आंगनवाड़ी के अलावा इन बस्तियों में कोई बालबाड़ी नहीं चलती थी। करीब 4400 बच्चे शिंशुवचान कार्यक्रम में आने लगे। प्रथम वे प्रत्येक आंगनवाड़ी कार्यक्रम में शिक्षक प्रशिक्षण की सामग्री उपलब्ध कराई। यह पाया गया कि इस कार्यक्रम के शुरू होने के बाद बच्चों की उपस्थिति काफी बढ़ गई। अभिभावकों ने इस कार्यक्रम पर नजर रखने के लिए अपनी कमेटियाँ बना लीं।

टेबल II से जाहिर होता है कि अधिकांश बच्चों ने छह महीने के अंदर ही पढ़ना और अंकों को पहचानना सीख लिया। चार्ट से स्पष्ट है कि 'कुछ भी नहीं जानता' वाली श्रेणी में एक भी बच्चा नहीं है। कक्षा एक में जाने के पहले पढ़ना और अंकों की पहचान करना बच्चों के लिए काफी लाभदायक हुआ। वैसे तो यह कार्यक्रम एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के साथ मिलकर चलाने के लिए बचाया गया था पर प्रथम के लोग योजना के अभिभावकों को अगले वर्ष के लिए राजी नहीं कर पाए। इसी चलते शिशुवाचन झुग्गी-बस्तियों में शुरु करना पड़ा। पर जब आंगनवाड़ियों में भी अध्यापन शुरू हुआ तो शिशुवाचन के 60 फीसदी शिशु उसमें चले गए।

महाराष्ट्र के 11 शहरों की झुग्गी बस्तियों में शिशुवाचन

पुणे के अनुभव के आधार पर प्रथम ने शिशुवाचन कार्यक्रम को महाराष्ट्र के 11 और शहरों में ले जाने का फैसला किया। इन शहरों में प्रथम के दूसरे कार्यक्रम पहले से चल रहे थे। इस कक्षाओं में दस रुपए की मामूली फीस ली जाती थी। करीब 70 फीसदी मां-बाप खुशी-खुशी फीस दे रहे थे। किसी भी बच्चे को फीस न दे सकने के चलते शिशुवाचन से वापस नहीं लौटाया गया।

टेबल III भी टेबल II वाले संकेत ही बताता है। इस कार्यक्रम का प्रसार यह बताता है कि गरीब समुदाय के लोग भी अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देना चाहते हैं।

शिशुवाचन कार्यक्रम है क्या?

सारणी-I.

शिक्षा की स्थिति पर वार्षिक रिपोर्ट (एएसईआर) 2005

	बच्चे जो पढ़ सकते हैं					बच्चे जो कर सकते हैं			
कक्षा	कुछ नहीं	वर्ण	शब्द	पैरा लैवल 1	कहानी लैवल 2	कुछ नहीं	संख्या पहचान	घटाव	भाग
केरला									
1	10.0	18.5	39.9	8.2	23.4	16.8	64.1	10.8	8.3
मध्य प्रदेश									
1	57.1	20.9	9.4	4.7	7.9	64.3	26.4	4.7	4.6
महाराष्ट्र									
1	29.4	38.2	21.9	5.3	5.2	53.4	40.9	4.5	1.2

शिशुवाचन कार्यक्रम बच्चों को अनौपचारिक ढंग से औपचारिक शिक्षा की शुरुआत कराता है। इस कार्यक्रम में हर बच्चे के अंदर सीखने के बुनियादी गुर को विकसित करने पर जोर दिया जाता है। 4.5 से 5 वर्ष के और कक्षा एक के बच्चों को ही इस कार्यक्रम में लिया जाता है। ये कार्यक्रम करीब 120 कार्य दिवसों अर्थात् करीब नौ महीने तक चलते हैं। एक कक्षा में आमतौर पर 15 से 20 बच्चे हैं। कार्यक्रम 30-30 कार्य दिवसों के चार चरणों वाला है।

इस उम्र के बच्चों में भी सीखने के प्रति जबरदस्त आकर्षण तो होता ही है वे बहुत उत्सुक और कल्पनाशील भी होते हैं और हर चीज को शुरू से करते देखना चाहते हैं। उनकी ऊर्जा के इन पहलुओं को कार्यक्रम मान कर चलता है और इसका उपयोग सीखने और अंकों की पहचान में रचनात्मक ढंग से करता है। उन पर कोई दबाव नहीं दिया जाता। यह कार्यक्रम बच्चों को पिछड़ने नहीं देता और बुनियादी कौशल सीखने का आधार तैयार करता है। और पढ़ाने का तरीका बच्चों की पसंद का है और उन पर कोई जोर नहीं रहता।

सारणी-II. आंगनवाड़ी में शिशुवाचन, 2004-2005 (पुणे सिटी)

बच्चे जो पढ़ सकते हैं	कुछ नहीं	वर्ण	शब्द	साधारण वाक्य
टेस्ट के पहले (4420)	96%	4%	0%	0%
टेस्ट के बाद (4298)	0%	2%	5%	93%

बच्चे जो कर सकते हैं	चीजों को गिनना	20 तक संख्या पढ़ना	10 तक जोड़ना	10 तक घटाना
टेस्ट के पहले (4420)	15%	11%	12%	6%
टेस्ट के बाद (4298)	99%	99%	100%	99%

कोष्ठक का नम्बर बताता है कि कितने बच्चों ने भाग लिया।

सारणी-III.

बच्चे जो पढ़ सकते हैं	कुछ नहीं	वर्ण	शब्द	साधारण वाक्य
टेस्ट के पहले (8818)	53.5	33.5	11.0	2.0
टेस्ट के बाद (9283)	5.2	25.4	37.1	32.3

बच्चे जो कर सकते हैं	कुछ नहीं	1 से 20	21 से 100	जोड़ना	घटाना
टेस्ट के पहले (8881)	49.6	39.2	9.9	0.9	0.5
टेस्ट के बाद (9782)	4.2	35.0	40.4	12.2	8.2

सहयोग – उषा राणे

सीखने सम्बन्धी मौजूदा सिद्धान्तों में बच्चों को खाली घड़ा नहीं माना जाता जिन्हें ज्ञान से भर दिया जाना चाहिए। पर हमारे अधिकांश नर्सरी और प्री-स्कूल शिक्षा में यही काम होता है। जिन आंगनवाड़ियों में पढ़ाई का काम ज्यादा सक्रिय ढंग से होता है वहां भी तरीका ज्यादा अलग नहीं है। वहाँ चीजों का नाम रटाया जा रहा है – अक्षरों के नाम, चार्ट पर बनी सब्जियों-फलों के नाम रटवाए जाते हैं। बच्चों की ऐसी तोता रंटत पढ़ाई प्रायः हर जगह की जाती है। अपवाद सिर्फ तमिलनाडु है जहां सोच विचार कर शैक्षिक गतिविधियां चलाई जाती हैं (देखें अध्याय सात)।

आंगनवाड़ी में बच्चों को पढ़ना-लिखाना सिखाते देखकर सर्वेक्षणकर्ताओं की इस तरह की टिप्पणियां आमतौर पर मिलीं। "आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ने बच्चों को लिखना/पढ़ना सिखाया। शुरू में आठ बच्चे कुछ समझ नहीं रहे थे लेकिन बाद में जब आंगनवाड़ी वाली बहन जी ने कहा कि सर्वेक्षण करने वाले भी स्कूल के मास्टर है तो वे खुल गए। उसने रंगों, जानवरों, विभिन्न पशुओं के आवाजों के बारे में बताया। उसने पूछा कि कुत्ता कैसे भूंकता है तो बच्चों ने चट से कहा 'भौं'।

चम्बा जिले का यह विवरण उस मुद्दे को ही समर्थन करता है जिसकी चर्चा पहले की गई है। चार-पांच साल के बच्चों से पूछा जाएगा कि कुत्ता कैसे बोलता है तो वे तत्काल 'भौं', कहेगें ही पर खुशी-खुशी सिखाने वाले काम को सिर्फ इतने पर सीमित नहीं किया जा सकता। अपने बढ़ने के रूप में बच्चें को स्वयं ऐसी काफी सारी चीजों को

बाक्स 5.11. सीखने का आनन्द

मानव विकास के हिसाब से शिशु अवस्था ही जीवन का सबसे नाजुक दौर है। इसी दौर में व्यक्ति सबसे तेजी से चीजों को सीखता है। जन्म के साल के अन्दर ही बच्चा दो बहुत ही महत्वपूर्ण कौशल-चलना और बोलना सीखना शुरू कर देता है। क्या आम जीवन के किसी और दौर में किसी वयस्क या बुजुर्ग व्यक्ति के एक फर्क भी अवधि में इतना कुछ सीखने की कल्पना कर सकते हैं।

शिशु अवस्था देखरेख और शिक्षा योजना इस विकास को दिशा निर्देशित करने और इस प्रक्रिया को बढ़ावा देने का काम करती है। बच्चे के विकास के अनेक पहलुओं – शारीरिक और मानसिक, वैयक्तिक और कलात्मक में ऐसा विकास होता है। निस्संदेह इनमें से इन सबकी बुनियादी जरूरत में अच्छे पोषण और उपयुक्त वातावरण, साफ-सुथरी आदतों और संचारी रोगों के बचाव से तैयार अच्छे स्वास्थ्य की है। अगर बच्चों के लिए बुनियादी सुविधाएं न हो तो उनका अच्छा विकास और फलना-फूलना सम्भव नहीं है।

बच्चा कैसे सीखता और विकसित होता है? स्वाभाविक ढंग से खेल और कौतुक करते हुए बढ़ना ही सबसे अच्छा है। कौतुक का मतलब यही है कि उसे जैसा मन का हो, जब एक हो, जहां कम तो अपने हिसाब से खेलने मजे लेने की आजादी होनी चाहिए। सभी जानते है कि जिस चीज में बच्चों का मन लगता है वहीं वे टिकते हैं और शिक्षकों के अंदर यह कौशल विकसित करने का प्रशिक्षण जरूरी है कि बच्चों को खेल खेल में ज्यादा से ज्यादा चीजें बता दें। शिक्षक सीखने को एक परिप्रेक्ष्य देकर बच्चों को उनकी जरूरत के हिसाब से चीजें बता सकते हैं बच्चे में किसी चीज का कौशल विकसित होने के लिए जरूरी है कि बच्चे को कोई चुनौती लगे, उसके अवसर और आजादी मिले। और इसी में 'सीखने का आनन्द' यह कला है जो बच्चे को अगले कौशल के लिए भी तैयार करता है। बच्चे काम और खेल में अंतर नहीं करते। पर अब काफी सारे लोग खेल को सीखने से अलग मानने लगे हैं इसलिए 'खेल पर आधारित पाठ' में बच्चों को सीख दी जाए यह बेहतर है। इसके लिए इस योजना में मंहगे और ज्यादा उपकरणों की जरूरत नहीं है। इसके लिए सबसे ज्यादा जरूरी है कुशल और प्रशिक्षित शिक्षक।

एक तरह से ऊपर दिया गया ब्यौरा एकीकृत बाल विकास सेवा योजना की भावना को अभिव्यक्त करता है क्योंकि इसमें कई चीजें समन्वित हैं और यह गतिविधियों पर आधारित हैं। पर इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि यह योजना निजी स्कूलों में दिखने वाली बीमारियों – बच्चों को काफी समय स्कूल में रखना, रट्टा लगवाना, न समझने वाली चीजों को करवाना, घंटों लिखवाना – से युक्त है। इतनी कम उम्र में बच्चा इनसे शिक्षित नहीं होता वह ऊब जाता है। इसका समय नष्ट होता है। इतने वक्त में यह दूसरी चीजें खुद से भी सीख सकता था। ऐसी गतिविधियां बच्चे को नुकसान पहुंचा सकती है। छोटे अक्षरों या श्यामपट पर ध्यान केन्द्रित करने के चलते उसकी नजर खराब हो सकती है, बस्ता ढोने से रीढ़ में दर्द और ज्यादा लिखने से हाथ में दर्द जैसी शिकायतें विकसित हो सकती हैं।

शिशु अवस्था देखरेख और शिक्षा के मामले में मुल्क के सभी कार्यक्रमों की तुलना में एकीकृत बात विकास सेवा योजना में सबसे ज्यादा सम्भावनाएं है। पर काफी सारी कमियों को अभी दूर किया जाना है। तभी जाकर यह सपना सच होगा।

सहयोग – मीना स्वामीनाथन

जान लेते हैं – किसी दूसरे प्री-स्कूल पढ़ाई की जरूरत नहीं होती। पर यह करने के लिए जरूरी है कि आंगनवाड़ी की सारी पढ़ाई स्कूलों की तैयारी भर न हो।

बच्चों को शुरुआती पढ़ाई देने का लाभ सभी बच्चों को मिलना चाहिए। इसमें मां-बाप को भी जोड़ना चाहिए और उन्हें भी मालूम होना चाहिए कि बच्चे क्या सीखते हैं और जिसमें वे बच्चों को प्रेरित करते रह सकें। आंगनवाड़ी की इन गतिविधियों पर पंचायतों में, परिवारों में, स्थानीय समुदाय के लोगों में चर्चा होनी चाहिए। इन लोगों को भी बच्चों के विकास की प्रक्रिया में भागीदार बनाया जाना

चार्ट : 5.11. दूरी का प्रभाव : आंगनवाड़ी और प्राथमिक स्कूल

आंगनवाड़ी और प्राथमिक स्कूल बस्ती की दूरी का प्रतिशत विवरण						
	0[b]	1-100 मीटर	101-300 मीटर	301-999 मीटर	1 किमी या ज्यादा	कुल
आंगनवाड़ी	27	13	12	24	24	100
प्राथमिक स्कूल	22	14	12	22	30	100

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004 : ये आंकड़े फोकस सर्वेक्षण में आए गांवों की सभी बस्तियों से सम्बन्धित हैं।

चाहिए। सिर्फ 'अच्छे' बच्चों का ही नहीं, सभी बच्चों के बनाए चित्र, पढ़ी जाने वाली कविता वगैरह का सार्वजनिक पाठ होना चाहिए।

कहना न होगा कि इस काम को प्रभावी ढंग से चलाने के लिए बुनियादी ढांचे, संसाधनों और उपकरणों की जरूरत होगी। आंगनवाड़ियों में ऐसे कमरे और खुली जगह होनी चाहिए जिनमें बच्चे छोटे-छोटे समूह बनाकर खेलते हुए चीजों को समझ सकें। दुर्भाग्य से काफी सारी आंगनवाड़ियों के पास इसके लायक जगह ही नहीं है। तमिलनाडु की 32 फीसदी आंगनवाड़ियों में बच्चों को बैठाकर पढ़ाने की जगह है तो उत्तर प्रदेश की आधी आंगनवाड़ियों में ही यह जगह है। अधिकांश आंगन- वाड़ियों के पास बच्चों को सिखाने वाले उपकरण नहीं है। कई जगह सामान या तो बक्सों में बन्द पड़ा मिला। उन्हें टूटने या गुम होने के डर से कारण नहीं निकाला जाता था।

बच्चे जो चीजें सीखने जाते हैं उसमें अध्यापकों को उनके बारे में, उनकी जरूरतों के बारे में पता चलता है। बच्चों को इंटरव्यू और टेस्ट से नहीं गुजरना चाहिए। कमजोर पारिवारिक पृष्ठभूमि के बच्चों पर ज्यादा ध्यान देना होता है और उन्हें ज्यादा समर्थन देकर उनकी प्रतिभा को निखारने की कोशिश करनी चाहिए। बच्चों के सीखने और विकास करने की जिम्मेवारी व्यवस्था की होनी चाहिए और माँ-बाप को भी इसमें जिम्मेवारी उठाने देनी चाहिए।

पर सबसे बड़ी चुनौती का काम नर्सरी शिक्षकों और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण का रचनात्मक कार्यक्रम तैयार करने का है। मीना स्वामीनाथ ने (बाक्स 5.12) ठीक ही कहा है "इसके लिए काफी और मंहगे उपकरणों की जगह कुशल और प्रशिक्षित शिक्षक ही सबसे बड़ी जरूरत हैं।" पर मौजूदा पाठ्यक्रम के ज्यादातर सैद्धांतिक आधार कमजोर हैं और इसमें शिक्षकों के ज्ञान और मूल्यांकन को ज्यादा महत्व नहीं दिया गया है। जिन राज्यों में यह काम सक्रियता से चल रहा है उनमें भी यह दोष है। जैसे केरल में राज्य 'शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद' ने प्री-स्कूल शिक्षकों के प्रशिक्षण का कार्यक्रम तैयार किया है पर इसका पूरा स्वरूप 'ज्ञान देने' वाले जड़ तरीके का ही है। 'सेवा' (अध्याय – 6) और 'मोबाइल क्रेश' (अध्याय 8) जैसे संगठनों ने ज्यादा अच्छा और रचनात्मक तरीका अपनाया है।

इन सांगठनिक कामों से एक यह सीख भी मिली है कि स्कूल परिसर में या उसके आसपास आंगनवाड़ी रखने का शिक्षा के ख्याल में ज्यादा लाभ मिलता है। 'सेवा' में अनुभव के आधार पर मिराई चटर्जी कहती हैं, "जब स्कूल परिसर में आंगनवाड़ियां बनाई गई तब ज्यादा लाभ हुआ। नन्हें बच्चे अपने बड़े भाई-बहनों के साथ ही आ जाते थे और उन्हें भी तब ही स्कूल से छुट्टी मिलती थी, वे इनके साथ खेलते थे। बच्चों के मन में स्कूल और सीखने की अवधारणा बैठाने में ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ी। ऐसे माहौल में नन्हें-मुन्ने बहुत जल्दी चीजें सीख जाते हैं।"

आंगनवाड़ियों में आदिवासी और दलित समुदायों जैसे कमजोर समूहों के बच्चे आसानी से आ सकें इसके लिए उन्हें 'उचित' जगह पर होने की बात कही जाती रही है – और स्कूल या उसके पास की जगह इस मामले में सबसे अच्छी है। इसमें जवाबदेही भी बढ़ेगी और आंगनवाड़ियों (और स्कूलों में भी) नियमित रूप से खुलने का क्रम बढ़ेगा। पर छुट्टियों के समय वीरानगी होने या आंगनवाड़ी सहायिका का स्कूल परिसर की सफाई की जिम्मेवारी आने जैसी कई पेशानियां भी उठ सकती हैं। अगर स्कूल बच्चों के घर से ज्यादा दूर हों तब आंगनवाड़ियों को वहां ले जाना नुकसानदेह होगा। फोकस सर्वेक्षण में बस्तियों से प्राथमिक स्कूलों की दूरी और आंगनवाड़ी की दूरी का हिसाब काफी कुछ मिलता जुलता था (चार्ट 5.11) सो अब सभी आंगनवाड़ियों को स्कूल परिसर में या उसके पास लाने का ज्यादा लाभ नहीं दिखता। आंख मूंदकर ऐसा फैसला करना, जैसा कि उत्तर प्रदेश में हुआ है, नुकसान भी करता है। सो इस मामले के कई पहलुओं का ध्यान देना जाना चाहिए।

इस योजना में शैक्षिक गतिविधियां बढ़ाने का काम सिर्फ आंगनवाड़ियों के जगह तय करने से नहीं होगा। इसके लिए काफी सारी दूसरी सुविधाएं, अधिक प्रभावी देखरेख, बेहतर प्रशिक्षण और नए तरह से सीखने की जरूरत है। पर पहला काम है समस्या को समझना और केरल तथा तमिलनाडु जैसे उन राज्यों से सबक लेना है जिन्होंने इस मामले में सफलता पाई है। 'सबको स्तरीय सेवा' देने में जितना महत्व 'सबका' है उतना ही 'स्तरीय' का भी है। इसका मतलब इस योजना की सेवाओं के दायरे को बढ़ाना और सुधारना भी है।

6. आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की दुनिया

अरिन्दम साहा

सम्भवतः अभी तक आपके मन में यह बात नहीं आई होगी कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ता जितना काम करती है, उसे जितने काम करने होते हैं उतना तो प्राथमिक स्कूल के शिक्षक या फिर विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों को भी नहीं करना होता। प्रोफेसर आराम से साल दर साल एक ही लेक्चर को दोहरा सकता है इंटरनेट से कुछ चीजें निकालकर बच्चों को बता सकते हैं या मन न हो तो उनसे बहुत सवाल-जवाब बिना भी काम चला सकते हैं। लेकिन आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के लिए हर बच्चे का महत्व है, हर बच्चे की जरूरतें अलग-अलग और परेशानियों से भरी हो सकती हैं। उसके लिए काफी धीरज और कौशल की ज़रूरत है। बच्चों को आहार देना हो या कुछ सिखाना या फिर आंगनवाड़ी केन्द्र पर बुलाना सब में इन गुणों की ज़रूरत होती है। पढ़ी-लिखी, प्रशिक्षित

और कुशल महिला के लिए भी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के रूप में काम करना काफी चुनौती का काम है। अगर प्रशिक्षण कहीं न मिले और साधनों की कमी हो तो तब तो उस बेचारी का काम असम्भव भी हो जाता है। अधिकांश आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को ये चुनौतियां उठानी होती हैं और इसके बदले बहुत कम पारिश्रमिक मिलता है और उनके काम का यश भी खास नहीं होता। इसलिए आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को आज की 'गुमनाम नायिकाएं' कहा जाता है। इस अध्याय में हम उन्हीं बातों और चिन्ताओं पर गौर करेंगे।

6.1 भारत की गुमनाम नायिकाएं

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ही गांवों के स्तर पर एकीकृत बाल विकास सेवा योजना की प्राण है, और इसकी सफलता बहुत हद तक उनके कौशल और निष्ठा पर टिकी हुई है। और फिर इस सबका काम स्वयं कई बातों पर निर्भर करता है – कैसे उनका चुनाव होता है, प्रशिक्षण होता है, उनको काम का कैसा माहौल मिलता है, उनको स्थानीय समुदाय में कैसा समर्थन मिलता है वगैरह-वगैरह। उक्त मामलों की तरह इस चीज़ में भी राज्यों के हिसाब से स्थितियों में काफी फर्क है – यह बात फोकस सर्वेक्षण में सामने आई है। इस क्रम में हम कुछ

बाक्स 6.1. नाम में क्या रखा है?

उसकी उम्र 2 वर्ष है और आप उसे भारत के किसी भी कोने में देख सकते हैं। परन्तु उसका अभी तक अपना कोई नाम नहीं है। उसे 'आंगनवाड़ी कार्यकर्ता' के नाम से जाना जाता है। यह नाम वहाँ से जुड़ा हुआ है, जहाँ वह काम करती है।

क्या आपको पता है कि आंगनवाड़ी को अपना नाम कैसे मिला? भारत में प्रथम बाल शिक्षण केन्द्र को बाल वाटिका, या बाल मंदिर कहा जाता था, यानी यह बच्चों की फूलवाड़ी है (जर्मन में किंडरगारटेन)। सन् 1950 में वह 'बावाडी' ('वाडी' को मराठी में वाटिका) के नाम से प्रसिद्ध हुआ और शिशुओं को देखभाल करने वाली वर्कर/शिक्षिका को बाल सेविका कहा जाने लगा। महान अनुताई वाग, जिसने पश्चिम महाराष्ट्र के गरीब आविासियों के बच्चों के लिये पूर्व शिशुकालीन शिक्षा का परिचय कराया, उन आदिवासी गांव के झोंपड़ियों के आंगन में कम खर्च से चलने वाली बालवाड़ियों के लिए 'आंगनवाड़ी' शब्द का ईजाद किया। जब आई.सी.डी.एस. की शुरूआत हुई तो इस शब्द को अपना लिया गया।

लेकिन यह क्या! किसी को उसके वर्कर के लिए नाम देने का ध्यान नहीं रहा। आखिरकार वह इस कार्यक्रम में महत्वपूर्ण व्यक्ति है जो बच्चों के देख-भाल, शिक्षा तथा शिशु देखरेख से जुड़े अन्य कार्यों को करती है। कोई इमारत या आंगन इसे नहीं कर सकता है – केवल एक मानव कर सकता है। अभी तक उसे सम्मानित नाम भी हासिल नहीं है, एक नाम जो उसके महत्व, कौशल और योग्यता को पहचान दे।

इस काम को करने के लिये व्यक्ति के अंदर कौशल होना चाहिए। बहुत लोग, साधारण अभिभावक ('आम आदमी' या 'आम औरत' से जाने, जाने वाले प्रसिद्ध) से उच्च अधिकारीगण, यह मान लेते हैं कि ऐसे वर्कर को कोई कौशल नहीं होता, और न ही उसकी जरूरत है। बहुत ग्रामीण अभिभावक कहते हैं कि 'आखिर वह करती क्या है? सिवाये कुछ घंटो तक बच्चों को पकड़कर रखने के? दूसरे अर्थों में इस विचार का मतलब है कि यह काम मात्र औरतों के मातृत्व की भूमिका का विस्तार है जो देर सवेर सभी औरतों में अपने आप आ जाता है, और इसके लिये कोई विशेष प्रशिक्षण की जरूरत नहीं है। लेकिन एक बार फिर सोचें अगर परिवार में छह वर्ष तक के दो या तीन बच्चें को देख-भाल करना कठिन है तो 25 या 30 बच्चों का एक छोटे जगह में देखभाल करना और कितना मुकिश्ल है? क्या वह बच्चों की पहली शिक्षिक नहीं है? असल में, हम लोग सब जानते हैं कि वह पढ़ाने के अलावा बहुत कुछ करती है।

इस तरह के नकारात्मक रवैये से एक अन्य प्रकार की प्रवृत्ति जन्म लेती है – यह मानने के लिए तैयार नहीं होना कि एक कर्मी होने के नाते उसे निश्चित वेतन की जरूरत है। अत: 32 वर्ष के बाद भी, हमारे बेनाम कर्मी को जो दिन भर अनगिनत काम करती है, उसे अभी भी स्वयं सेविका कहा जाता है और सहानुभूति के तौर पर 'मानदेय' दिया जाता है। इस मानदेय में प्रति वर्ष शाबाशी स्वरूप कुछ रुपये बढ़ा दिये जाते हैं। जहाँ उसे सरकारी नौकरी में छुपे सभी तरह के खतरों को झेलना पड़ता है, जैसे तबादला और अनुशासनात्मक कार्रवाई, वहीं उसे किसी भी तरह का लाभ नहीं मिलता है जैसे क्रमिक ग्रेड या सामाजिक सुरक्षा। सरस्वती अम्मा, जो 25 वर्षों से आंगनवाड़ी वर्कर के तौर पर कार्यरत है, ने एक योजना के बारे में सुनकर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि "हम लोग जीवित के बजाये मृत रूप में अपने परिवार के लिए अधिक उपयोगी है।" इस योजना के तहत 50,000 रुपये आंगनवाड़ी वर्कर के परिवार को दिया जाएगा अगर वह सेवा के दौरान किसी दुर्घटना या बीमारी की वजह से मर जाती है। इस प्रवृत्ति का एक परिणाम यह हुआ कि अभी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के लिए कोई मान्यता वाली प्रशिक्षण या प्रमाणिकता नहीं है। कुल मिलाकर उनका सेवा में रहते हुए अभिमुखीकरण (जो पहले तीन महीने का था अब महीना भर का रह गया है।) किया जाता है और समय-समय पर कुछ दिनों का रिफ्रेशर कोर्स होते हैं। अत: अगर कोई दक्ष और अनुभवी वर्कर नौकरी छोड़ना चाहती है और दूसरी नौकरी को खोजना चाहती है, या अपना स्वरोजगार खड़ा करना चाहती है, तो उसके पास इसके लिये प्रशिक्षित होने का प्रमाण भी नहीं है। हम इस व्यक्ति को कब सम्मानित नाम, ठीक-ठाक प्रशिक्षण और उचित वेतन के साथ एक पहचान और जीवन देंगे।

सहयोग – मीणा स्वामीनाथन

बाक्स 6.2. ख्याती से वंचित नायिकाएँ : ताराबाई मोडाक और अनुताई वाग

ताराबाई मोडाक और उनकी छात्रा, शिष्य और बाद में सहकर्मी रही अनुताई वाग दो बेहतरीन महिला थीं। पहली बार उन्होंने यह दिखाया कि किस प्रकार छह वर्ष तक के बच्चों के कल्याण, शैक्षिक तथा विकास की जरूरतों को पूरा किया जा सकता है ताकि वे देश के स्वस्थ और उन्नत नागरिक बन सकें। बाल विधवा अनुताई की शिक्षा सेवा सदन से हुई और बाद में उन्होंने महाराष्ट्र और गुजरात में काम कर रही संस्था में पूर्व शाला शिक्षिक के तौर पर सेवा दी। यहाँ पर उनकी मुलाकात पहले से पढ़ा रही शिक्षिका तथा उभरती नेता ताराबाई मोडाक से हुई और दोनों ने साथ-साथ काम करना शुरू किया।

अपने महानगरीय उपलब्धियों से असंतुष्ट ताराबाई मोडाक ग्रामीण तथा आदिवासी इलाके में गरीबी से जुझती बच्चियों और महिलाओं के लिये काम करना चाहती थी। इस काम के लिए उन्होंने महाराष्ट्र के थाणे जिले में कीसबाद, जो वार्ली जनजातियों की भारी जनसंख्या वाला है, को चुना।" अपने सहभागी के जरूरत को समझते हुए, जो उसके सपने को साकार करने में मदद करें, उसने अनुताई वाग को चुना जिन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। इसके साथ शुरू हुई आजीवन सहभागिता।

उन्होंने काम शुरू करने के लिये बहुत ही कठिन इलाके का चुनाव किया। इसमें प्राथमिक शाला भी नहीं थी, पूर्व प्राथमिक शाला की बात तो छोड़ दें। जो बच्चे जंगलों में मवेशी चराने में अपना दिन व्यतीत करते थे, उन तक शिक्षा पहुँचाने के लिये उन्होंने 'मोबाइल' प्राथमिक शाला शुरू किया। शिक्षक बच्चों तक जाते थे और शिक्षा दते थे जहाँ भी वे होते थे। यह आज की जाने जानी मानी 'अनौपचारिक शिक्षा' का उद्भव था जिसका दस्तावेजीकरण ताराबाई ने बहुत ही बेहतरीन ढंग से सलहम प्रकाशन में अपने शब्दों में *"द मिडो स्कूल"* (1961), के रूप में किया है।

फिर उन्होंने तुरंत नये प्रयत्न की शुरूआत कर दी। छोटे बच्चों के लिए पूर्व प्राथमिक शिक्षा की शुरूआत हुई जिसका कार्यभार अनुताई ने सम्भाला। उन्होंने इसका नाम बालवाडी दिया ('वाड़ी' का स्थानीय रूप फूलवाड़ी है या औपचारिक हिन्दी में वाटिका)। गरीब और कामकाजी महिला अपने बच्चों को बालबाड़ी में छोड़ देती थी और अनुताई उनकी सफाई करती थी और दलिया खिलाती थी। वह उन्हें स्थानीय सामग्री का उपयोग कर खेल की गतिविधियों में लगाये रखती थी। समुदाय और परिवारों के पास जो कुछ होता था उससे सहयोग करते थे। शुरू में लोगों को उन पर विश्वास नहीं था, लेकिन बाद में उनसे बहुत अधिक विचार-विमर्श करके उन्होंने स्थानीय लोगों में अपने विश्वास का सिक्का जमा लिया।

दोनों शिक्षक प्रशिक्षण से भी जुड़े हुए थे और उन्होंने कोसबाद हिल में ग्राम बालक शिक्षा संघ के अंग स्वरूप एक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित कर दिया। उन्होंने मुख्य रूप से शिक्षकों के लिए अपने सीमित संसाधनों का उपयोग करते हुए एक न्यूज लेटर 'शिक्षण पत्रिका' के नाम से शुरू किया। अब तक, दोनों पूर्व शाला शिक्षा रूपी नवीन आंदोलन के नेता स्वरूप प्रसिद्ध हो गई थी। परंतु वे समुदाय, बच्चों और शिक्षकों के साथ काम कर हमेशा जमीन से जुड़ी रहती थीं।

समय के साथ, ताराबाई और अनुताई ने स्वर्गीय जे.पी. नाइक के सहयोग से चौथी पंचवर्षीय योजना के लिये अपने अनुभव के आधार पर पूर्व शाला शिक्षा मॉडल को विकसित करने के लिये सरकार को मना लिया और आई.सी.डी.एस. को लागू किया गया। इसी दौरान 'आंगनबाड़ी' शब्द का उपयोग शुरू हुआ क्योंकि वे यह दिखाने में कामयाब हो गये एक अच्छी पूर्वशाला ग्रामीण इलाके में 'आंगन' या पिछवाड़े में कम लागत के स्थानीय सामग्री से चलायी जा सकती है।

सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में ताराबाई के मृत्यु के बाद अनुताई ने कार्य को मध्य नब्बे तक के अंत तक जारी रखा। आज जब हम 'आंगनबाड़ी' या बालबाड़ी' को देखते हैं तो हम इन महिलाओं को याद कर सलाम करते हैं, जिनके समर्पण और कठिन परिश्रम ने इन शब्दों को आम प्रयोग में लाया। हम उनके योगदान को कभी नहीं भूलेंगे।

योगदान संदीप नाईक
(शालीनीताई मोघे के साथ साक्षात्कार जो उन दोनों की नजदीकी सहयोगी रहीं।),
मीना स्वामीनाथन के इनपुट के साथ

बहुत ही सक्षम कार्यकर्ताओं से मिले जिन्हें अपने काम पर गर्व था और जिन्होंने काफी लगन से अपना काम किया था। फिर ऐसी कार्यकर्ता भी मिलीं जिनकी नियुक्ति राजनैतिक कारणों से हुई थी और जिन्होंने ढंग से कुछ भी नहीं किया था। जैसा कि पहले कहा गया है आंगनवाड़ी कार्यकर्ता में कौशल और लगन पर ही इस योजना का काफी कुछ निर्भर करता है और वे अपने काम के नतीजों में ज़मीन आसमान का फर्क ला देती हैं।

सबसे बदहाल और अकुशल आंगनवाड़ी कार्यकर्ता राजस्थान के बाड़मेर जिले में मिलीं। इनमें से अधिकांश ने कभी भी स्कूलों का मुंह नहीं देखा था और लिखा-पढ़ी की अधिकांश खानापूर्ति उनके पति, भाई या बेटे किया करते थे। (एक आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को 20 रजिस्टर तक भरने पड़ते हैं)। वे बच्चों के विकास का फार्म नहीं भर सकती थीं – उनको कुछ पढ़ना-लिखाना तो बहुत दूर की बात है। उनकी नियुक्ति में भारी दखलअंदाजी चलती है और सही बात है कि उनमें काम करने की प्रेरणा भी नहीं होती।

पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की आम स्थिति यही नहीं है। सर्वेक्षण में आए अन्य सभी राज्यों में ऐसी अधिकांश कार्यकर्ता एक ऐसी सक्षम महिला के

रूप में ही सामने आए जो ज़रूरी समर्थन और सुविधाओं के कारण अपने समुदाय के पोषण और स्वास्थ्य के मामले में काफी कारगर और उपयोगी साबित हो रही है। असली मुद्दा है कि उन्हें वह माहौल देना जिसमें उनकी क्षमता निखर कर सामने आए। इसमें सावाधानी से चयन, नियमित प्रशिक्षण, पर्याप्त उपकरण, समय में वेतन भत्ते का भुगतान, नियमित निगरानी, सामुदायिक समर्थन जैसी अनेक बातों का होना ज़रूरी है। तमिलनाडु और महाराष्ट्र में आम तौर पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ता काफी पढ़ी-लिखी, प्रशिक्षित, उत्साही मिलीं और उनके काम काज पर सबका ध्यान भी था। उनके सामने भी अक्सर कई किस्म की समस्याएं – जिमसें ज़रूरत से ज़्यादा का का बोझ, इस योजना में बाहर के कामों पर वक्त लगाना और वेतन मिलने में देरी जैसी कई बड़ी समस्याएं आती हैं पर उनका काम काफी प्रभावी है।

जैसा कि चार्ट 6.1 से स्पष्ट होता है कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की निजी और सामाजिक पृष्ठभूमि में काफी अन्तर है। फोकस सर्वेक्षण में आए इलाकों में कोई बहुत उल्लेखनीय प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। आम तौर पर नमूना वाले जिलों में वयस्क औरतों का जो औसत शैक्षिक स्तर है आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का स्तर उससे ऊंचा पाया गया। विभिन्न समूहों (अनुसूचित जातियों/जनजातियों, मुसलमानों) की कार्यकताओं का अनुपात मौटे तौर पर उनकी जनसंख्या की हिस्सेदारी के आसपास था – जैसे मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कुछ कम था। फोकस सर्वेक्षण में आई कार्यकर्ताओं में मुसलमानों का अनुपात तीन फीसदी ही था। आंगनवाड़ी सहायिकाओं में पिछड़े समूहों का हिस्सा ज़्यादा था। पर इसमें निरक्षर सहायिकाओं का अनुपात भी काफी बड़ा (57 फीसदी) था। इनमें अनुसूचति

चार्ट : 6.1. आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिका की सामाजिक पृष्ठभूमि

	आंगनवाड़ी कार्यकर्ता	आंगनवाड़ी सहायिका
आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिका का कुछ चुने हुए आधारों पर प्रतिशत बंटावारा		
उत्तर प्रदेश		
18-30 वर्ष	27	29
31-45 वर्ष	56	46
45 वर्ष से ज्यादा	17	25
जाति/समुदाय		
सामान्य (हिन्दू)	31	19
पिछड़ा	34	33
अनुसूचित जाति[a](17)	22	31
अनुसूचित जनजाति[a](10)	10	12
मुस्लिम[a](9)	3	3
अन्य	1	2
शिक्षा (पास स्तर)		
निरक्षर	5	37
कक्षा 1 से 4	2	18
कक्षा 5 से 7	12	25
कक्षा 8 से 10	53	20
कक्षा 10 से ऊपर	28	1
वैवाहिक स्थिति		
अविवाहित	2	1
विवाहित	84	72
विधवा	7	20
तलाकशुदा, परित्यक्ता	7	7
अन्य	0.5	0
आवास		
गांव में ही	80	88
गांव से बाहर	20	12
परिवार का मुख्य पेशा		
दिहाड़ी मजदूर	18	35
खेतीबाड़ी	28	25
स्वरोजार (खेती से अलग)	23	12
वेतनभोगी	25	13
अन्य	6	15

[a] कोष्ठक में नमूना में लिये गये जिलों की जनसंख्या है

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004

जाति/जनजातियों की हिससेदारी 43 फीसदी थी।

फोकस सर्वेक्षण में आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की विस्तृत बातचीत के ब्यौरे शामिल हैं। इनमें कई बड़ी महत्वपूर्ण बातें निकलकर सामने आती हैं। कुछ बातों को थोड़ा ज्यादा बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया था। वे सर्वेक्षण के आंकड़ों के अनुसार ही थीं। जैसे आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं ने पक्का भवन और बुनियादी सुविधाओं का जिक्र किया, और जैसा कि

बाक्स 6.3. 'नारकंडा में कठिन संघर्ष'

नजदीक के आंगनवाड़ी केन्द्र का पता पूछने पर हमें ऐसा लगा कि सभी को उसके बारे में मालूम है, जिसमें सरकारी होटल का रिशेप्सन भी शामिल था। हालांकि आंगनवाड़ी केन्द्र किसी जाने-माने जगह में स्थित नहीं था। जब हम वहाँ 11 बजे पहुँचे (यह 10 बजे सुबह से दोपहर 1 बजे तक खुला रहता है।), तो एक टूटे-फूटे इमारत के बरामदे में टाट-पट्टी रूपी दरी के टूकड़े पर नौ बच्चे बैठे मिले। बच्चे खिलौने (एबेकस, छोटे-छोटे टुकड़ों, साधारण खिलौने) से खेल रहे थे और संख्याओं को बोल-बोल कर याद कर रहे थे। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता वहाँ उपस्थित थी और उन्हें पढ़ा रही थी। उन्होंने हमारा बेहिचक और बिना अचरज के स्वागत किया और बातचीत करने के लिए तुरंत तैयार हो गई। वह यह बताने के लिए आतुर थी कि नौ बच्चे ही क्यों उपस्थिति हैं और अपने काम के प्रति सजग, उत्सुक और लगनशील लगीं। उनके नाम से पता चलता था कि वह ऊँची जाति की है। जब हम लोग वहां मौजूद थे तभी किसी ने उनके सेल फोन पर उन्हें सूचना दी कि कुछ लोग आंगनवाड़ी खोज रहे हैं।

बच्चों में सात 'नेपाली' थे तथा दो अन्य 'स्थानीय' बताये गये। वे काफी सहज दिख रहे थे और उन्होंने हम लोगों के लिए पूरे एक्शन के साथ 'मछली' वाला गीत (मछली जल की रानी है आदि) गाया, लेकिन उनमें किसी को पता नहीं था कि मछली होती कैसी है। बच्चों में एक लड़की आठ वर्ष की थी। वह छोटे भाई-बहन के साथ एक गोद में पल रही चचेरी बहन को भी लायी थी जो सबसे छोटी थी, (अत: नौ बच्चें में से चार एक ही परिवार के थे)। हमने पूछा वह स्कूल क्यों नहीं गई। पता चला कि उसका परिवार एक साल पहले यहाँ आया है और वह अभी तक (स्कूल में नामांकन के लिए) हलफनामा नहीं ले पायी है।

नगर पंचायत द्वारा आंगनवाड़ी केन्द्र को एक कमरा दिया गया है। वह कमरा जररजर हालत में था और ऐसा लगता था कि छत अब गिरा कि तब। (असल में वह एक किनारे से टूटा हुआ था।) आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ने बताया कि बच्चों को कमरे में बैठाना सुरक्षित नहीं था, इस कारण वे बर्फ़ गिरने पर भी बरामदे में बैठते हैं। उसे लगता है कि बच्चे नहीं आने का यह भी एक कारण है। जैसे भी हो, उस कमरे का इस्तेमाल स्टोर के रूप में होता था और राशन और चीजों से ठसाठस भरा पड़ा था। हमें कहा गया यह इमारत गिरायी जानी है, लेकिन जहाँ तक आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को पता है आंगनवाड़ी केन्द्र के लिए कोई जगह अभी मुकम्मल नहीं किया गया है। वहाँ कोई शौचालय या पानी की सुविधा नहीं थी।

कोई सहयोगी नहीं दिख रहा था। पूछने पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ने बताया कि मौजूद सहयोगी की शादी हो गई है और वह चली गई, उसके बाद एक साल से उसे कोई नहीं मिला है। सी.डी.पी.ओ. ने सहयोगी की बहाली का भार पंचायत को दे दिया है और कभी इस बहाने से तो कभी उस बहाने से साक्षात्कार को टाला जा रहा है। उनका कहना था कि अकेले केन्द्र को चलाना काफी कठिन हो रहा है।

ए.एन.एम.बच्चों को टीके देने के लिए केन्द्र में नहीं आती हैं। बदले में बच्चों को टीके के लिए नजदीक के पी.एच.सी. में जाने के लिए कहा जाता है। हर दो महीने में एक डॉक्टर में पी. एच.सी. स्वास्थ्य जाँच के लिए आता है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता का दावा था कि सभी बच्चों को टीका दे दिया गया है। आंगनवाड़ी केन्द्र में कोई भी बच्चा ग्रेड II, III या IV की श्रेणी में नहीं था।

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ने बताया कि राशन की गुणवत्ता या मिलने में कोई परेशानी नहीं है। उसे तीन वर्ष से ऊपर के बच्चों के लिए दलिया और खिचड़ी बनाना पड़ता है और उसके साथ मटर या गुड़पट्टी देना होता है। उसने की होगी, "लोगों ने आपके पास खाने की शिकायत किया होगा, क्योंकि गर्मी में उन्हें गुड़-पट्टी या मटर देना पसंद नहीं है – वह गर्म होता है", लेकिन किसी ने हमारे पास शिकायत नहीं किया था।' हैदराबादी मिक्स' केवल ग्रेड IV के बच्चों को दिया जाता है और पहले से तैयार भोजन उपयोग में नहीं लाया जाता है। गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं और 3 वर्ष तक के बच्चों को हर 15 दिन पर राशन दिया जाता है।

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता लगभग पाँच वर्षों से आई.सी.डी.एस. के साथ है। उसने कहा कि उसे काम में दिल लगता है, लेकिन पिछले वर्ष से सब कुछ बहुत कठिन हो गया है। घर-घर जाने, रिकार्ड को दुरुस्त रखने के अलावा काम काफी बढ़ गया है। उसने कहा कि वह एक बढ़िया केन्द्र चलाने के लिए उत्सुक है और महसूस करती है कि एक अच्छी इमारत हो जहाँ लोग अपने बच्चों को भेजना चाहें।

सहयोग – डॉ. वंदना प्रसाद

हमने अध्याय 4 में देखा है, अक्सर आंगनवाड़ियों के पास जगह और बुनियादी सुविधाओं की कमी रही है।

इसी प्रकार अनेक आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं ने काफी सारे रजिस्टर भरने के बोझ का जिक्र किया। इन रजिस्टरों को योजना के अधिकारी जांचते हैं, और हमने पाया कि एक आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को औसतन 12 रजिस्टर तैयार करने पड़ते हैं। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में एक तो 20 से ज्यादा रजिस्टर भर रही थीं और एक कार्यकर्ता को तो पूरे 33 रजिस्टर भरने पड़ते थे। इन रजिस्टरों को भरने में एक कार्यकर्ता को हफ्ते में से औसत 6 घंटे का समय लगाना होता है। इसका अर्थ है कि उसे एक पूरा दिन इसी काम में लगाना होता है, या उसे इसके लिए न कोई भत्ता मिलता है न अलग से समय निकालने का प्रशिक्षण।

इतने सारे रजिस्टरों का बोझ सम्भालना तो फिर भी ज्यादा मुश्किल नहीं है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को और भी बुनियादी मुश्किलों

चार्ट : 6.2. आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के लिए परेशानी का कारण

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता का प्रतिशत जिन्हें :	
योजना से बाहर के कार्यों में पिछले छह महीनं से लगाया गया	79
जिन्हें आंगनवाड़ी को मिलने वाला धन 'अपर्याप्त' लगता है	71
जिन्हें उपकरणों को समय पर खरीदने में परेशानी उठानी पड़ती है	64
जिन्हें उपकरण पर्याप्त नहीं मिलते हैं	61
पिछले 30 दिनों में वेतन नहीं मिला	60
जिन्होंने केन्द्र का काम चलाने के लिए अपना पैसा भी लगाया	52
जिन्हें 12 से ज्यादा रजिस्टर भरने पड़ते हैं	39
जिन्हें प्रशिक्षण 'अपर्याप्त' लगता हैं	34
जिन्हें सेवा में आने से पहले कोई प्रशिक्षण नहीं मिला	25

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004

6.2 आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की परेशानियां

अधिक काम का बोझ

काफी सारी आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं ने अधिक काम के बोझ की शिकायत की। कई मामलों में तो स्टाफ की संख्या पूरी न होने और ज्यादा रिक्तियां होने से काम करने वालों पर ही सारा बोझ आ जाता है। जैसे उत्तर प्रदेश के बनारस जिले के चंदौली प्रखंड में सर्वेक्षण के समय आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के 167 स्वीकृत पदों में से सिर्फ 43 ही काम कर रही थीं। इनमें से काफी सारी कार्यकर्ताओं के जिम्मे एक से ज्यादा

का सामना करना पड़ता है, चार्ट संख्या 6.1 में हमने उनकी मुख्य चिन्ताओं को समेटने की कोशिश की है। जांच अधिकारियों के द्वारा आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में की गई चर्चा में ये मुद्दे सामने आए। अपर्याप्त सुविधाओं के अलावा प्रशिक्षण न मिलना, कम और अनियमित वेतन, काम का बोझ, स्थानीय समुदाय से समर्थन न मिलना और सुपरवाइजरों से डांट-फटकार उनकी अन्य बड़ी समस्याएं हैं। चार्ट 6.2 में सर्वेक्षण पर आधारित सूचनाएं हैं और इनमें भी आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की परेशानियों की लगभग वही तस्वीर उभरती है। इन सब परेशानियों के चलते काफी सारी आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का काम करने का उत्साह ही मर जाता है और काम का माहौल भी उनके कामकाज को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। अगले हिस्से में हम इनमें से कुछ परेशानियों पर बारीकी से विचार करेंगे।

चार्ट : 6.3. बाहर के कामों का बोझ

सर्वेक्षण में छह महीने पहले की अवधि में बाहर के कामों में लगे दिनों का प्रतिशत वितरण :	
शून्य	35
1 से 5 दिन	41
6 से 10 दिन	15
11 से 15 दिन	2
16 से 20 दिन	1
20 दिनों से ज्यादा	6
आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का प्रतिशत, जिन्हें निम्नलिखित बाहरी कामों में लगाना पड़ा:[a]	
पोलिया की दवा	93
कुष्ठ कार्यक्रम	15
चुनावी ड्यूटी	4
स्वयं सेवा समूह	5
परिवार नियोजन	3
जनगणना	1
अन्य कार्य	46
विभिन्न विभागों द्वारा दिए गए बाहरी कामों का प्रतिशत अनुमान :	
परिवार और परिवार कल्याण विभाग	93
महिला एवं बाल विकास विभाग	5
अन्य विभाग	2

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के अनुसार

बाक्स 6.4. आंगनवाड़ी कार्यकर्ता संघ की मांग

आई.सी.डी.एस. अपने बजूद का तीस से अधिक साल पूरा कर चुका है। बावजूद इसके, अपने बजूद में आने के तीस साल बाद तक, ये सेवायें एक तिहाई बच्चों तक नहीं पहुँच पायीं। इसलिए इस कार्यक्रम के सभी बच्चों तक पहुँचाने वाली पहलकदमियों का स्वागत किया जाना चाहिए। यानि कार्यक्रम का सार्वभैमिकरण किया जाना चाहिए और इसके रास्ते में आने वाली गभीर बाधाओं की पहचान कर उनका सामना करने के उपायों पर काम किया जाना चाहिए।

आई.सी.डी.एस. कार्यक्रम के प्रभाव के निम्नत्तर होने का एक केन्द्रीय कारण है " इस काम के लिए लगाये गये आंगरनवाड़ी कार्यकर्ताओं की जरूरतों पर विचार न किया जाना। इनकी रूपरेखा बनायें तो पाते हैं कि, एक तरफ स्वैच्छिक कार्यकर्ता और दूसरी ओर उनके कंधों पर समाज सेवा का भारी बोझ, इस कार्यक्रम के कई खराब परिणामों का मूल तत्व हैं। *ऑल इंडिया फेडरेशन ऑफ आंगनवाडी वर्कर यूनियन (ए.आई.एफ.ए.डब्ल्यू.एच.)* ने इनके मांग की व्याख्या करते हुए सरकार के सामने एक मांग-पत्र रखा जिसमें लिखा था :

समुदाय और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के नजदीकी सम्बन्ध की वजह से उनकी सेवायें कई सरकारी. कार्यक्रमों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, वित्त और पंचायती राज विभागों में लगा दी जाती है। कुछ ऐसे काम जिसमें आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और हेल्पर को लगा दिया जाता है। वे स्वास्थ्य विभाग से जुड़े होते हैं जैसे – ओ.आर.एस., स्पष्ट तौर पर दिखने वाले व्यवस्थाओं में टी.बी. के उपचार, एड्स जागरुकता, जन्म नियंत्रण विधि के लिए प्रेरित व शिक्षित करने इत्यादि। उन्हें शिक्षा विभाग के भी कुछ कार्यों जैसे सम्पूर्ण साक्षरणता कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान, डी.पी.इ.पी. और अनौपचारिक शिक्षा इत्यादि। यहाँ तक कि कुछ राज्यों में इनका इस्तेमाल लघु बचत के प्रचार के लिए किया जाता है जैसे – सामूहिक बीमा, स्वयं सहायता समूह का निर्माण, बी.पी.एल. परिवारों के सर्वे के लिए, कुष्ठ सर्वे फलेरिया सर्वेक्षण, पशु गणना इत्यादि।

बिना अपवाद के आंगनवाड़ी केन्द्रों से हमें गांव के जन्म, मृत्यु, विकलांग व्यक्तियों की संख्या, गरीबी रेखा के नीचे की आबादी इत्यादि के बारे में बुनियादी जानकारी मिलती है। कई राज्यों में आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को बाल विवाह और ऐसी ही अन्य प्रथाओं को रोकने में सक्रिय तौर पर शामिल रहने को कहा जाता है। थोड़े शब्दों में हम कह सकते हैं कि पिछले कुछ वर्षो में आंगनवाड़ी केन्द्रों का विकास जमीनी स्तर के माताओं और बच्चों के लिए कई तरह की सुविधाओं के केन्द्र के रूप में हुआ है। जनता ने आमतौर पर उनकी सेवाओं का स्वागत किया और उसको सराहा है। यद्यपि आई.सी.डी.एस. योजना के तहत यह माना गया था कि वे दिन भर में साढ़े चार घंटे काम करेंगे। लेकिन व्यवहार में यह देखा गया कि जितने काम उन पर लाद दिये जाते हैं उन्हें पूरा करने में 6-7 घंटे लगते हैं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अपने वजूद के 30 वर्षो बाद भी आई.सी.डी.एस. बतौर एक स्कीम (योजना) के ही चल रहा है, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं को सरकारी कर्मचारी की तरह कोई पहचान नहीं मिलती। उन्हें केवल प्रतिकात्मक 'मानदेय' मिला। उनके पास न तो नौकरी की कोई सुरक्षा है न ही किसी तरह की कोई सामाजिक सुरक्षा। दशकों की सेवा के बाद भी उनके पास बुढ़ापे के लिए कुछ खास नहीं बचता और फ़ाकों के मुहताज हो जाती हैं। उनके पास तरक्की का भी कोई रास्ता नहीं होता।

यह जानना रोचक होगा कि ऐसा कैसे हो पाता है कि इस प्रकृति के एक केन्द्रीय और नियमित सेवा को स्वैच्छिक प्रबन्ध के आधार पर घोषित रूप से चलाया जा रहा है। इसका एक कारण तो यह समझ में आता है कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के दायित्व को घरों में बच्चों के देखभाल और महिलाओं के काम के विस्तार की तरह समझा गया है। दोनों ही कामों को बहुधा गैर-वैतनिक समझा गया है और ये काम हमेशा ही नजरअंदाज किये जाते रहे हैं। यह तर्क सार्वजनिक दायरे में भी काम करता है और असर यह होता है कि उनके काम को स्वैच्छिक और मानदेय आधारित बना दिया जाता है। यह एक कारण है जिसकी वजह से आंगनवाड़ी कार्यकर्ता अपने को शिक्षिक कहलाने की मांग करती है, उनका विश्वास है कि यह मांग उनके काम को लेकर बनी धारणा को बदलेगी और इसे एक अनिवार्य सामाजिक संरचना बनायेगी। अच्छी गुणवत्ता वाले शिशु देखभाल के कार्यक्रम के सार्वभौमिकरण की कोशिश में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता पहले और सबसे विश्वसनीय सहयोगी होंगे। बड़े पैमाने पर 'सामाजिक परिवर्तन का रोजेण्ट' समझे जाने वाले ये कार्यकर्ता भारत की बृहत्तर और सबसे खराब भुगतान पाने वाला कामकाजी समूह है। दुर्भाग्यवश स्थानीय समुदाय में कमजोर क्रियान्वयन का आरोप इनके कंधों पर डाल देने की समझ रही है, और बहुधा इनको समस्या के हिस्से की तरह देखा जाता है। कथित तौर पर यह कमजोर क्रियान्वयन उनके सेवाओं के बदत्तर शर्तों को जायज ठहराने में मदद पहुँचाता है। यह इस समझ को भी उचित ठहराता है कि नियुक्ति की उपयुक्त शर्त का असर उतरदायित्व के स्तर पर होगा।

व्यवहार में ज्यादातर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के उन लोगों से अच्छे सम्बन्ध होते है जिनको कि ये सेवा मुहैया कराते हैं। यद्यपि पूरक पोषाहार अनियमित आपूर्ति और खराब स्तर में चलते इन कार्यकर्ताओं और समुदाय के बीच खासा तनाव हो जाता है। बड़े पैमाने पर फैले राजनैतिक और नौकरशाही भ्रष्टाचार भी उनके द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाली सेवाओं के गुणवत्ता को कम करता है, साथ ही यह उनके काम करने के हालात को भी बदत्तर बना देता है। नतीजन इन कई तरह के निर्देशों के बीच आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को कमजोर/वंचित स्थिति उसका शोषण कराती है और यह एक गम्भीर समस्या है जिसको कि समझे जाने और उसका सामना किये जाने की जरूरत है। यद्यपि आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के संघ ने इसकी याचिका दायर की है कि यह व्यवस्था बदली जाये लेकिन उनकी मांग को शायद ही कभी समझा गया हो।

आगे बढ़ने के लिए लोकतांत्रिक समूहों और जन संगठनों को आई.सी.डी.एस. के संस्थायीकरण के लिए आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं से कंधे-से-कंध मिलाकर चलना होगा। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इसे स्कूल और स्वास्थ्य केन्द्रों की तरह एक आवश्यक जन-सेवा समझे जाने की जरूरत है। इसकी भी जरूरत है कि आई.सी.डी.एस. के सार्वभौमीकरण के लिए संघर्ष के हिस्से के तौर पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के बेहतर स्थिति को भी देखा जाये और इससे हम छह वर्ष से कम के सभी बच्चों के लिए विस्तृत तौर पर शिशु देखभाल की सेवायें उपलब्ध करा सकते हैं।

सहयोग – सुधा सुंदररामन

चार्ट : 6.4. आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं का प्रशिक्षण

	आंगनवाड़ी कार्यकर्ता	आंगनवाड़ी सहायिका
आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिकाओं अनुपात (प्रतिशत), जिन्हें प्रशिक्षण मिला है :		
कोई प्रशिक्षण नहीं	4	17
सिर्फ बुनियादी प्रशिक्षण	7	16
सिर्फ रिफ्रेशर प्रशिक्षण	22	44
बुनियादी और रिफ्रेशर, दोनों प्रशिक्षणं	68	23
प्रशिक्षण मिलने के बाद की अवधि :		
एक साल से कम	29	32
एक से दो साल	24	30
दो साल से ज्याइदा	48	38
अपने प्रशिक्षण को 'पर्याप्त' मानने वाली आंगनवाड़ी कार्यकर्ता/सहायिकाओं का अनुपात :	66	

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004

केन्द्र थे। जाहिर तौर पर यह असम्भव-सा काम हो गया। जैसा कि अध्याय 4 में चर्चा की गई है कि इस योजना में स्वीकृत पदों की रिक्तियां बहुत आम हैं।

"इस आंगनवाड़ी में पिछले एक वर्ष से आंगनवाड़ी कार्यकर्ता नहीं है। पड़ोस की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को भी इस केन्द्र का जिम्मा दे दिया गया है, लेकिन वह यहां के सिर्फ रजिस्टर ही भरती हैं। यहां सिर्फ नाम की ही आंगनवाड़ी है, किसी भी किस्म का काम नहीं होता।"

(जांचकर्ता की टिप्पणी, हस्तिनापुर प्रखंड, मेरठ जिला, उत्तर प्रदेश)

आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं पर अधिक काम के बोझ का एक और स्रोत है एकीकृत बाल विकास सेवा योजना से इतर कामों का। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को ऐसी अनेक जिम्मेदारियों में लगा दिया जाता है तो इस योजना से इतर हैं। गांव के स्तर पर जब सरकार को कोई अभियान चलाना होता है तो महिलाओं तक बात पहुंचाने के मामले में प्रायः आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ही एक मात्र ऐसी महिला होती है जो सुविधाजनक ढंग से यह काम कर दे। परिणाम यह है कि उसे औरतों और बच्चों से जुड़े ऐसे अनेक कामों में लगाना पड़ता है। जैसे, राजस्थान में आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को अभी भी 'परिवार नियोजन वाले लक्ष्य' दिए जाते हैं, जबकि हाल में केन्द्र सरकार में इस तरह के कामों पर रोक लगा दी है। हिमाचल प्रदेश में पहले प्राथमिक स्कूलों में दोपहर का भोजन तैयार करने का काम आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को दिया गया था। जब सुप्रीम कोर्ट के आयुक्तों ने इस मामले में दखल दिया तभी दूसरा इंतजाम किया गया।

ये सम्भवतः कुछ ज्यादा ही बड़े उदाहरण हैं। पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के सामने सामान्य काम से इतर काम की मांग अवश्य रहती है। जैसे अनेक राज्यों में 'स्वयं सेवी समूहों' के गठन या छत्तीसगढ़ में 'मितानिन' कार्यक्रकम में उनकी मदद लेने जैसे काम बहुत आम हैं। यह गलत है क्योंकि 'स्वयं सेवी समूहों' का प्रबन्धन देखने में जितने कौशल और समय देने की जरूरत होती है वह आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के लिए मुश्किल है। वह उससे सामान्य काम की उपेक्षा करके ही यह सब कर सकती है। इसी प्रकार उनकी सेवाओं का उपयोग चुनाव में, जनगणना में, डीपीईपी के लक्ष्यों को पूरा कराने में भी होता है और इसके पीछे के तर्क को समझना मुश्किल है। इन कामों में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता पर बोझ तो बढ़ता ही है, उसका अपने काम से ध्यान भी हटता है। पर ऐसी स्थिति भी आ जाती है, जब आंगनवाड़ी कार्यकर्ता पर इन बाहरी कामों को ही पूरा करने का भारी दबाव आ जाता है और वह अपने मूल कामों को छोड़ता या उन पर कम ध्यान देकर इन्हीं में जुट जाती है।

"स्वयं सेवी समूहों के गठन और अन्य राष्ट्रीय कार्य योजनाओं में लगने के चलते आंगनवाड़ी कार्यकर्ता पर काम का बोझ बहुत बढ़ गया है।"

(सीपीडीओ करसोग प्रखंड, मण्डी जिला, हिमाचल प्रदेश)

इस समस्या का समाधान यही है कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को बाहर के कामों में न लगाने पर जोर दिया जाए, और उनसे वही काम कराए जायें जो उसके आधिकारिक रिकार्ड में हैं। यह समय-समय पर उनके अपने कामों में होने वाले बदलावों के मामले में यह सख्ती नहीं चल सकती। जैसे, यह सुझाव दिया गया है कि 0-6 उम्र समूह में बच्चियों के गिरते अनुपात को रोकने में

बाक्स 6.5. सृजनात्मक प्रशिक्षण : सेवा का बालनंदशाला

बनार्ड वान लियर फाउनडेशन, नीदरलैण्ड, 1998 के पूर्व शिशुकालीन दस अध्ययन में से एक सेल्फ इम्पलायड विमुन एसोसिशयन चाइल्ड केयर (सेवा) था। 'इफेक्टिवनेस इनिसिएटिव' (ई.आई.) (असरात्मक पहल) जैसा कि यह त्रिवर्षीय गुणात्मक अध्ययन कहा गया था, इससे पूर्व शिशुकालीन सेवा के लिए माहौल और बच्चों, परिवारों तथा समुदाय के अध्ययन के लिए सही तरीकों के ऊपर विचार-विमर्श सम्भव हो पाया। 'उत्साह' नाम से सेवा के केस स्टडी में हमारे शिशु केन्द्रों में पाये जाने वाले भरपूर ऊर्जा का वर्णन है। अध्ययन में दर्शाया गया है कि कैसे कुछ चुनिन्दे हस्तक्षेप हमारे गतिविधियों में गति में तेजी ला सकते हैं। हालांकि इससे एक सुधार का क्षेत्र भी दर्शाया गया है – कमियों को दी जाने वाली सेवाकालीन प्रशिक्षण, खासकार बच्चों के भाषा तथा मानसिक विकास से जुड़े अवयव।

सेवा केन्द्र "बालानन्दशाला" का शिक्षकों तथा शिशु सेवाकर्मियों सेवाकालीन परिशिक्षण के लिए 2003 में खुलना ई.आई. अध्ययन का एक ठोस नतीजा था। यहाँ पाठ्यचर्चा के विकास के साथ हमारे विशेष जरूरतों, रुचि तथा स्पर्धा से मेल खाने से थोड़ा हटकर मणिपुर गाँव व सेवा के कैम्पस के अन्दर यह शाला है, जिसमें एक बड़ी रसोई तथा आवास की व्यवस्था है। इसमें प्रशिक्षण काल साधारणतया दो दिन का है और लगभग 60 प्रतिभागी एक समय प्रशिक्षण ले सकते हैं। हर समूह में (आगेवान) मिश्रण होता है। यहाँ प्रशिक्षण का महत्वपूर्ण पहलु है कि यह सुनिश्चित हो कि महिलाएं एक छत के नीचे साथ हरने का कुछ अनुभव ले सकें। अधिकांश के लिये कुछ दिनों के लिए परिवार से दूर रहना भी एक नयापन है, उन्हें स्वतंत्रता का अहसास देना है।

प्रशिक्षण पाठ्यचर्चा की पहली इकाई में शिशु सेवाकर्मियों का सेवा के प्रति पूर्वाभिमुखीकरण है। इसे सेवा अकादमी द्वारा विकसित किया गया है। इसके केन्द्र में गांधीवादी मूल्य है और यह कैसे सेवा को एक संस्था के तौर पर प्रोत्साहित करता है और जीवित रखता है। अगली इकाई महिला स्वास्थ्य की व्याख्या करता है और उसे डॉक्टर द्वारा संचालित किया जाता है। जिन्हें सेवा वाले, व्यवहारिक तथा जीवन्त वाद-विवाद और चर्चाओं से सरोकार रहते हैं। हालांकि बाल विकास तथा मातृत्व को आदर्श इकाई में शामिल किया गया है इससे जो निकलकर आता है बालनन्दशाला में उपयोग होने वाले विषयवस्तु का परिचय।

तीसरे इकाई के बाद ऐसे विषयवस्तु को चुना गया जो रोचक हो तथा प्रशिक्षु के ध्यान को आकर्षित करे। विषय-वस्तु इस तरह भी चुने जाते है जो अपने-आप छोटे बच्चों के लिए उपयुक्त गतिविधियों की ओर चर्चा को मोड़ देते हैं। तीन उदाहरण इस प्रकार हैं। पहले चुनी गई विषय-वस्तु 'कहानी' होती है जो बच्चों तथा वयस्कों दोनों में समान रूप से चर्चित होती है। समूह कहानियों की लम्बी सूची तैयार करती है और उनमें से पसंदीदा चुनाव किया जाता है। प्रशिक्षुओं को सात या आठ के समुहों में बाँटा जाता है। हर समूह को एक कहानी का योजनाबद्ध संवाद के साथ नाटकीय मंचन करने के लिये कहा जाता है। यह गतिविधि सृजनात्मकता का सूत्रपात कर देता है। 'मंचन' के समय विभिन्न कौशलों का उपयोग किया जाता है और हर एक को कुछ न कुछ करना होता है। कहानी जाना हुआ होने के बावजूद विभिन्न मंचनों में ज्वलंत आपसी संवाद होता है। लोग वाक्य भूल जाते हैं, कस्टयूम खुल जाते हैं, संवाद में आ जाते हैं और कुछ मंचीय सितारों का उदय हो जाता है। हर तरह ठहाका गुंज उठता है। थियेटर मजेदार लगने लगता है।

'बाल मेला' एक अन्य विषयवस्तु है जिसे अक्सर सेवाकालीन पाठ्यचर्या में शामिल किया जाता है। यह सच्चाई है कि सभी को मेला अच्छा लगता है। पहले भी ई.आई. के समय मेला आयोजित किया जा चुका है। इसमें क्रेश एलुमनाई को इकट्ठा करने का लक्ष्य हैं – जो अपने स्कूल पूर्व के वर्षों में क्रेश गये हैं। 'बाल मेला' विषयवस्तु बहुत सारे उद्देश्यों को पूरा करती है। यह अचानक अभिभावकों तथा समुदाय का मिलन स्थल बन जाता है; खेल, पेन्टिग, नाटक तथा संगीत का वातावरण बन जाता है और बच्चे विशेष खेलों के जरिये गणितीय तथा अन्य कौशल सीख सकते हैं। हाँ हाँ! वहाँ सभी के लिये भर पेट, गर्म तथा पोषक नाश्ते की व्यवस्था होती है।

वार्षिक कैलेंडर और एक अन्य जानी-मानी विषय-वस्तु हैं। हर कोई जल्दी समझ जाता है कि हिन्दू तथा मुलसमानों के धार्मिक पर्व प्रत्येक वर्ष अन्य दिनों मे आते हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा वाले कलैंडर के बारे में ग्रह प्रणाली तथा चन्द्रमा के चमक बढ़ने तथा घटने के साधारण कारणों से परिचय कराया जाता है। शिशु सेवाकर्मियों में अत्यधिक उत्तेजना उत्पन्न होती है क्योंकि वे अपने आप को ब्रह्मांड से जुड़े हुए पाते हैं।

शिशु सेवा कर्मी जल्दी ही इन विधियों को दिन के सेवा केन्द्रों में आने वाले बच्चों पर अपनाने के लिये उत्सुक लगते हैं।

सहयोग – एस. आनंदलक्ष्मी, सलाहकार सेवा चाइल्ड केयर

आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। ऐसा कन्या भ्रूण का गर्भपात कराने से होता है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के सामान्य काम में भी गर्भवती औरतों के पास जाना और परामर्श देना शामिल है। इससे इन दो कामों को जोड़ना आसान होगा। पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को मनमाने ढंग से किसी भी अन्य काम में लगाने का चलन बन्द हो, यह इंतजाम करना जरूरी है।

कम वेतन

आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की एक और बड़ी शिकायत कम वेतन की है। (फिर सहायिका की मजदूरी की तो बात ही मुश्किल है।) यह वेतन इन्हें 'मानदेय' के रूप में दिया जाता है। इसके पीछे यह कल्पना थी कि आमतौर पर सामाजिक कार्यकर्ता लगभग स्वेच्छा से इस काम को करेंगे और यह राशि उन्हें प्रतीकात्मक रूप में ही दी जाएगी। केन्द्र सरकार की ओर से प्रति कार्यकर्ता प्रति माह 1000 रुपए दिए जाते हैं और इसके ऊपर राज्य सरकार कुछ और पैसे दे सकती है। फोकस सर्वेक्षण में जो राज्य आए उनमें से सिर्फ तीन ने केन्द्र द्वारा निर्धारित पैसे से ऊपर रकम देना शुरू किया है : हिमाचल प्रदेश में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को 1200 रुपए प्रति माह, तमिलनाडु में 1368 रुपए और महाराष्ट्र में 1400 रुपए मिलते हैं। अन्य तीनों

राज्यों में उन्हें वहीं 1000 रुपए मिलते हैं। यह न्यूनतम मजदूरी से भी कम है – खासतौर से यह देखते हुए कि इस काम में पढ़ाई और कौशल की कितनी जरूरत है। जैसे राजस्थान में न्यूनतम मजदूरी 73 रुपए है, जाहिर है वहां आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को महीनें के काम के बदले में 14 दिनों से कम की न्यूनतम मज़दूरी मिलती है जबकि उनका काम 'अकुशल' मज़दूरी का नहीं है।

एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों (सुपरवाइजर, प्रोग्राम अधिकारी वगैरह) की तरह इन आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को सरकारी कर्मचारी होने से जुड़े अन्य लाभ भी नहीं मिलते। उन्हें न तो स्वास्थ्य बीमा मिलता है न मातृत्व अवकाश, न पेंशन। उन्हें पक्की नौकरी भी नहीं मिलती। उन्हें कभी भी छोटी शिकायत पर निकाला जा सकता है। और स्थिति तब और गड़बड़ लगती है जब हम पाते हैं कि अधिकांश राज्यों में उन्हें समय से वेतन नहीं मिलता। इसमें काफी देर होना आम है। फोकस सर्वेक्षण में आई अधिकांश आंगनवाड़ी, कार्यकर्ताओं ने कहा कि उन्हें अभी पिछले महीने का वेतन नहीं मिला है। (देखें चार्ट 6.2) प्रत्येक पांच में से एक कार्यकर्ता को तीन महीनों से ज्यादा में वेतन नहीं मिला था। उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में इससे भी ज्यादा देरी होना सामान्य बात है। इस मामले में भी तमिलनाडु अपवाद हैं वहां नियम से हर माह वेतन दिया जाता है।

अपर्याप्त प्रशिक्षण

प्रशिक्षण न मिलने या कम मिलने से भी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की स्थिति कमजोर होती है। कायदे से आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को अपना काम शुरु करने से पहले तीन महीने का बुनियादी प्रशिक्षण और हर 18 महीने काम करने के बाद 15-15 दिनों का प्रशिक्षण लेना चाहिए। पर फोकस सर्वेक्षण में पाया गया कि तमिलनाडु को छोड़कर बाकी सभी राज्यों में प्रशिक्षण के इस तरह के काम नहीं होते। सर्वेक्षण में आई एक चौथाई आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को बुनियादी प्रशिक्षण ही नहीं मिला था। (चार्ट 6.4) और सम्भवतः यह हैरान करने वाला तथ्य है, कि प्रशिक्षण के काम में महाराष्ट्र सबसे पिछड़ा है जहां की आधी आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को एक दिन का भी बुनियादी प्रशिक्षण नसीब नहीं हुआ। काम के बाद रिफ्रेशर ट्रैनिंग से वंचित आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का अनुपात जहां तमिलनाडु में 6 फीसदी है, तो छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश में एक तिहाई से ज्यादा, राजस्थान में आधा और महाराष्ट्र में तीन चौथाई।

तमिलनाडु में प्रशिक्षण का यह इतना नियमित क्रम प्रशिक्षण व्यवस्था को विकेन्द्रीय करने से जुड़ा हो सकता है। वहां प्रशिक्षकों की टोलियां प्रखंड और जिला स्तर पर बनाई गई हैं जो स्थानीय जरूरतों के हिसाब से जुट कर प्रशिक्षण देती हैं। इसमें से कुछ टोलियों ने प्रशिक्षण में बहुत अच्छे तरीके भी विकसित कर लिए हैं और कई बार वे आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के साथ-साथ स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों को भी प्रशिक्षण देती हैं। प्रशिक्षण की व्यवस्था विकेन्द्रित होने से आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को भी प्रशिक्षण लेने में सुविधा होती है – उन्हें घर से ज्यादा दूर नहीं जाना पड़ता। तमिलनाडु में इस योजना को लेकर जो कल्पनाशील प्रयोग और बदलाव हुए हैं उनमें यह भी एक हैं। इन प्रयोगों पर हम अगले अध्याय में चर्चा करेंगे।

इस कल्पनाशील प्रयोग की तुलना में जब हम अलग राज्यों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में करते हैं तो वे कभी और उबाऊ लगते हैं। ज्यादातर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को ये प्रशिक्षण बहुत ज्यादा किताबी और ज़मीनी हकीकत से अलग लगती है। जैसे, प्रशिक्षण के दौरान कभी अगर वक्त 'पीएमई किटों' के प्रयोग के बारे में लगाया जाता है जबकि आंगनवाड़ियों में ऐसे किट कहीं उपलब्ध ही नहीं है। इस प्रकार कुछ आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को यह सब बताना पढ़ाना भी अटपटा लगता है कि जिन घरों में खाने को पूरा अनाज नसीब न हो उनको भी हरी पत्तेदार सब्जियों, दूध और अण्डे के स्वस्थकर भोजन का पाठ पढ़ाया जाये। चूंकि प्रशिक्षण के दौरान दिया गया अधिकांश ज्ञान व्यवहार में काम नहीं आता इसलिए काफी सारी आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को 'रिफ्रेशर ट्रेनिंग' वक्त की बर्बादी ही लगती है। इन तकनीकी प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आंगनवाड़ियों के वास्तविक कामकाज में लाभ भी संदेहात्मक ही है।

प्रशिक्षण कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा करने की बुनियादी शर्त को भी अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है। जैसे, राजस्थान में लगभग सारे 'प्रशिक्षक' पुरुष हैं, और उनमें से अनेक को खुद भी ढंग का प्रशिक्षण नहीं मिला है। यह विश्वास करना मुश्किल है कि राजस्थान जैसे परम्परावादी और परदा प्रथा वाले समाज में सिर्फ पुरुषों वाली प्रशिक्षण टोलियां आंगनवाड़ी की महिला कार्यकर्ताओं को ढंग से प्रशिक्षित कर सकती हैं। इसके उलट तमिलनाडु में

पूरी की पूरी बाल विकास सेवा योजना का काम लगभग महिलाएं ही संभालती हैं। सिर्फ आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और प्रशिक्षक ही नहीं देखरेख और निगरानी के स्तर तक का काम उनके ही जिम्मे हैं।

जहां सक्रिय ढंग से प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलता भी है, वहां उनके मौजूदा स्वरूप में काफी कमियां हैं। जैसे स्कूल पूर्व शिक्षा देने वाले हिस्से को लगभग भुला दिया गया है या यह बहुत कमजोर हैं। शायद यह मान लिया गया है कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को छोटे बच्चों को पढ़ाने-सिखाने का गुण स्वाभाविक रूप से होता है या असल में यह काम मुश्किल है और इसके लिए दिशा निर्देश और कार्य अनुभव ज़रूरी है। इस प्रशिक्षण कायर्कम की और कमी है – तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों की देख रेख वाले पक्ष को छोड़ देना। इसमें नवजात बच्चों की देखरेख, स्तनपान सम्बन्धी परामर्श, नवजात बच्चों की बीमारियों का ज्ञान और भारी कुपोषण का शिकार हुए नवजातों को व्यापक अच्छे स्वास्थ्य की स्थिति में लाने के उपाय बताना शामिल है।

मौजूदा प्रशिक्षण कार्यक्रमों को लेकर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में क्षोभ तो है ही वे नई चीजें जानने-सीखने की इच्छुक भी हैं, इन ज़रूरतों को प्रशिक्षण के नए और बेहतर कार्यक्रम में शामिल करने के आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को कौशल में तो वृद्धि होगी ही उनका विश्वास और उनकी प्रेरणा में भी वृद्धि होगी।

निगरानी का अनुपयुक्त तरीका

नियमित रूप से देखरेख और हर जरूरत को पूरा करने, गड़बड़ियों को तुरंत दुरुस्त करने वाली ऊपरी व्यवस्था के बिना आंगनवाड़ियों का काम व्यवस्थित रूप में नहीं चल सकता – खास तौर से दूर दराज के इलाको में दुर्भाग्य से देखरेख का काम न सिर्फ नियमित है बल्कि इसका तरीका भी बहुत ज्यादा तानाशाही वाला है। एकीकृत बाल विकास सेवा के दिशा-निर्देश के अनुसार हर आंगनवाड़ी का निरीक्षण हर माह स्थानीय सुपरवाइजर द्वारा होना चाहिए। यह दिखा कि ऐसे दौरे बहुत कम होते हैं। इसका एक बड़ा कारण तो सुपरवाइजरों के पदों पर भारी संख्या में रिक्तियों का होना है जिनकी चर्चा अध्याय 4 में हो चुकी है। सर्वेक्षण के समय चम्बा जिला (हिमाचल प्रदेश) के भरमौर प्रखंड में एक भी सुपरवाइजर नियुक्त नहीं था। पड़ोस के मेहला प्रखंड में सुपरवाइजर के आठ पदों में से सात पद खाली पड़े थे और एक सुपरवाइजर के जिम्मे 163 आंगनवाड़ियों की देखरेख का काम था। इतना ही नहीं अक्सर ये रिक्तियां लम्बे समय तक बनी रहती हैं। जैसे राजस्थान के बाड़मेर जिले में फोकस सर्वेक्षण के समय में तीन साल पहले में परियोजना अधिकारी का पद खाली पड़ा था जिसके जिम्मे अब कुल मिलाकर करीब 375 आंगनवाड़ियों का काम आ गया था। और इस अधिकारी के मन में काम के प्रति चाहे जितना उत्साह हो वह दो वर्ष में एक बार भी एक आंगनवाड़ी पर नहीं जा सकती थी।

"इस केन्द्र के लिए कोई ए.एन.एम. नहीं है। साथ ही पिछले दो वर्षो में यहां कोई सुपरवाइजर नहीं आया है और तीन वर्ष से परियोजना अधिकारी भी नहीं आया है।"

(आंगनवाड़ी सहायिका, चुनौटा गांव, भरमौर प्रखंड, चंड जिला हिमाचल प्रदेश)

जब इन रिक्त पदों पर भरती हो जाती है तब अक्सर वह काम भी जैसे-तैसे किया जाता है और पद के अनुभव और काम की ज़रूरत की खास चिन्ता नहीं की जाती। उत्तर भारत के अनेक जिलों में परियोजना अधिकारी के पद पर पुरुष अधिकारी थे जो दूसरे विभागों में डिपुटेशन पर लाए गए थे। उनका न तो इस योजना के कामों की कोई योग्यता थी न इनमें उनकी दिलचस्पी थी। राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिले के कपासिन प्रखंड के परियोजना अधिकारी के जिम्मे तीन पदों वाले काम थे – तहसीलदार, प्रखंड विकास अधिकारी, और एकीकृत बाल विकास सेवा के परियोजना अधिकारी का और इस परियोजना के बारे में उनका एकमात्र फैसला यही था कि इसका कोई भी काम नहीं करना है।

अगर सुपरवाइजर दौरा करते भी हों तो इससे कितना फायदा होता है? इस बारे में अनुभव मिश्रित किस्म का मिला। आंगनवाड़ी की 90 फीसदी से ज्यादा कार्यकताओं का मानना था कि ऐसे दौरों से लाभ होता है (देखें से चार्ट 6.5)। लेकिन उनकी बात को आसानी से गले के नीचे उतारना मुकिश्ल है। क्या आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को अपने कामों की आलोचना और डांट फटकार अच्छी लगती है। यह मत भी हो सकता है कि सुपरवाइजरों के दौरों को लेकर ज्यादा अपेक्षा ही नहीं रख जा रही हो, इसलिए थोड़ा भी लाभ ज्यादा लगता है।

और जब ज्यादा गहराई से पड़ताल की गई तब स्पष्ट हो गया कि सुपरवाइजरों के दौरे अक्सर ज्यादा दिखावटी होते हैं। अधिकांश सुपरवाइजर रुटीन किस्म के काम जिसमें रिकार्ड और रजिस्टरों की जांच प्रमुख है, करके अपनी जिम्मेदारी

की इतिश्री कर लेते हैं। और साफ दिखने वाली समस्याओं पर उनकी नजर ही नहीं जाती। जैसा कि हमने अध्ययन में देखा है कि अधिकांश आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के पास बुनियादी सुविधाओं और उपकरणों का घोर अकाल रहता है लेकिन सुपरवाइजर इस तरफ से आंखे फेर लेते हैं। वे इस की सूचना ऊपर के अधिकारियों को नहीं देते और जब आंगनवाड़ी कार्यकर्ता खुद से शिकायत करती है तो उनके पक्ष में रिपोर्ट देने का काम भी नहीं किया जाता। दरअसल अनेक आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं ने महसूस किया कि अगर उनकी शिकायतों पर कोई ध्यान देने वाला ही नहीं है तो फिर इस काम में समय बर्बाद करने का क्या लाभ।

इसी प्रकार सुपरवाइजर शायद ही कभी बच्चों के माँ-बाप से भी मिलने का कष्ट उठाते हैं। परिणाम यह है कि कार्यक्रम के बारे में लोगों की राय सही ढंग से नहीं मिल पाती और माँ-बाप की शिकायतों को कोई सुनता भी नहीं। जिन राज्यों में इस योजना के दिशा-निर्देश में जच्चा-बच्चा के लिए घर में सुविधाएं और परामर्श उपलब्ध कराने की बात की गई है वहां भी ऐसा कुछ नहीं होता। जैसे राजस्थान में सुपरवाइजरों और परियोजना अधिकारियों के लिए घर जाकर जांच करने का प्रावधान है लेकिन फोकस सर्वेक्षण में यह बात सामने आई कि ऐसा कभी नहीं होता।

अगर निगरानी और इंस्पेक्शन का काम गड़बड़ ढंग से हो तो इसका बुरा प्रभाव आंगनवाड़ी कार्यकता के काम और मनोबल पर भी पड़ता है। घर जाकर परामर्श और देखरेख का काम, पोषण सम्बन्धी परामर्श और स्कूल पूर्व भी शिक्षा पर निगरानी और जांच करने वालों की तरफ से जोर न होने से आंगनवाड़ी कार्यकर्ता भी इसकी उपेक्षा करने लगती हैं। वे इन्हें महत्वपूर्ण नहीं मानतीं। इनके लिए रजिस्टरों को भरना, खाना बांटना और इसी तरह के वे काम महत्वपूर्ण बन जाते है जिनके बारे में पूछताछ होती रहती है। इतना ही नहीं आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को प्रशंसा और लाभ देने का काम भी ऋणात्मक बातों पर निर्भर

बाक्स 6.6. महिला मंडल का ज़िम्मा

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक कॉरपोरेशन और चाइल्ड डेवल्पमेंट का एक हालिया अध्ययन आई.सी.डी.एस. के दोनों "समुदाय आधारित" और "सरकारी" क्रार्यक्रम के बारे बताता है। यह ambivalence इस मुद्दे पर नीति निर्माताओं में विचार और काम के एक गम्भीर कमी की ओर इशारा करता है। इसी बीच ऐसे भी मामले मिलते हैं जहाँ समुदाय ने आई.सी.डी.एस. के मामले में सक्रिय और सचेत भागीदारी दिखाई है। हिमाचल प्रदेश की एक सच्ची घटना इस बिन्दु को विस्तार देती है। यह अब तक सफलता की एक पूरी कथा नहीं है लेकिन अगर भाग्य साथ दे तो यह ऐसी ही एक दृष्टांत हो सकता है।

जब एक आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ने शादी कर ली और काम छोड़ दिया तो आंगनवाड़ी सहायिका को इस स्थिति से बगैर किसी के सहयोग के निपटना मुश्किल लगने लगा। यह सहायिका अनपढ़ थी और एक दलित समुदाय से आती थी। लेकिन वह, एक एन.जी.ओ. द्वारा दिये गये आई. सी.डी.एस. के प्रशिक्षण सत्रों में शामिल रही थी और साथ ही पाँच साल तक स्थानीय पंचायत की चुनी हुई सदस्य रही थी। उपर्युक्त कार्यकर्ता को वहाँ लाने के क्रम में इस सहायिका ने सुपरवाइजर, हाल ही में चुने गये ग्राम पंचायत के प्रधान और स्थानीय महिला मंडल से सम्पर्क स्थापित किया। प्रधान ने मसले पर टाल-मटोल की और कहा कि नियुक्ति कार्यक्रम सरकारी विभाग का विशेषाधिकार है। सुपरवाईजर ने उससे कहा कि वो महिला मंडल के पास जाये और एक 'राजीमन्द' कार्यकर्ता को खोजे।

इस पर महिला मंडल के सदस्य सलाह के लिए उस एन.जी.ओ. के पास गये और इस पर आधारित होकर महिला मंउल की एक बैठक बुलाई, मसले पर बारीकी से चर्चा हुई और एक प्रस्ताव पातिर किया गया, जो इसका सुझाव देता था कि उसी गाँव की 'ए' (एक शादीशुदा महिला, जिसने शादी के बाद अपनी पहल पर दसवीं की परीक्षा पास की थी, काफी प्रेरित थी, वह दलित थी, आई.आर.डी. पी. परिवार से आती थी और महिला मंडल की सदस्य थी), पूरी तरह से मानद तौर पर बतौर कार्यकर्ता के काम को करेगी। 'ए' महिला मंडल में एकमत से चुनी गई। प्रस्ताव को बाकायदा तिथि के साथ लिखा गया और हताक्षर किया गया तथा उसे रजिस्टर पर चढ़ाया गया।

इसके बाद महिला मंडल ने इस मसले को ग्राम सभा की अगली बैठक में रखा जहाँ बड़ी संख्या में महिलाएं उपस्थित थीं। ग्राम सभा की इस बैठक में वही 'लचार' प्रधान इसका सभापति था। मसले को वहाँ उठाया गया, उसको समझाया गया और वहाँ मौजूद सभी के द्वारा स्वीकृत किया गया, पारित किया गया और पंचायत सचिव ने उसे कार्यवाही में दर्ज किया। प्रस्ताव में कहा गया कि जब भी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की नियुक्ति की जायेगी – 'ए' को ही नियुक्त किया जाना चाहिए।

महिला मंडल ने सारे दस्तावेजों को लिया – उनके खुद के प्रस्ताव की प्रति, ग्राम सभा के प्रस्ताव की प्रति के साथ-साथ अनुसूचित जाति का प्रमाण पत्र, उसका आई.आर.डी.पी. का प्रमाण पत्र और 'ए' से सम्बन्धित अन्य निजी जानकारियाँ और इन सभी की सी.डी.पी.ओ. को भेज दिया। उसके बाद विभाग ने रिक्त पद का विज्ञापन दिया और 'ए' ने अपनी उम्मीदवारी रखी। महिला मंडल इस बारे में स्पष्ट था कि उसके उम्मीदवार को चुना जाना चाहिए – अन्यथा इसे करने के लिए उन्होंने अपनी योजना व रणनीति बना रखी थी।

इसी बीच 'ए' ने अपने काम को प्रभावशाली तरीके से करना जारी रखा, पिछले आठ महीने से बगैर किसी भुगतान के ही। चूँकि वह रजिस्टर में अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं कर सकती थी इसलिए उसने अपनी दैनिक डायरी बना रखी थी। यहाँ के एन.जी.ओ. ने बताया कि डायरी को काफी 'बेहतर' तरीके से तैयार किया गया था। वह इससे भी काफी खुश थी कि उसे आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के तौर पर काम करने का अनुभव मिल रहा था।

सहयोग – सी.पी. सुजाया

करता है। लोगों की वाहवाही वगैरह को खास महत्व नहीं दिया जाता।

और सबसे बुरा तो तब होता है जब सुपरवाइजर अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं से घूस या दूसरे लाभ लेने लगते हैं। यह कहना गलत होगा कि इस योजना में इस तरह की घूसखोरी बहुत आम है। (अधिकांश आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं ने इसकी शिकायत नहीं की।) पर कई बार निगरानी और जांच के क्रम में भ्रष्टाचार होता है। बल्कि उत्तर प्रदेश में तो इसे 'व्यवस्थित' रूप से दिया गया है जहां वैसे भी भ्रष्टाचार का बोलबाला अन्य जगहों से ज़्यादा है। जैसे बनारस जिले में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता आम तौर पर सुपरवाइजर को उनके दौरों के वक्त 200-300 रुपए देते हैं वरना सुपरवाइजर उनको अनेक तरह से परेशान करते हैं। अन्य राज्यों में भी वेतन समय पर देने, भोजन, दवा और अन्य चीजों का स्टॉक उपलब्ध कराने के लिये घूस मांगने के उदाहरण भी मिले।

"डांट-फटकार और परेशानियों से बचने के लिए आंगनवाड़ी कार्यकर्ता सुपरवाइजर को दौरे के समय 200-300 रुपए देती है। अगर वह पैसे नहीं देती या पैसे मांगने की शिकायत करने की बात करती है तो सुपरवाइजर उसके खिलाफ आरोप लगाने की धमकी देते हैं।"

(जांचकर्ता का निष्कर्ष, पिंडरा प्रखंड, बनारस जिला, उत्तर प्रदेश)

6.3 आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और स्थानीय समुदाय

एकीकृत बाल विकास योजना का स्वरूप ऊपर से नीचे की तरफ आने वाले कार्यक्रम का है। इसके स्वरूप, योजना या इसको लागू करने में स्थानीय समुदाय की भागीदारी न्यूनतम है, हालांकि कई राज्य सरकारों ने इस दिशा में उपयोगी कदम उठाए हैं। पर सरकारी योजना में कार्यक्रम के लगभग सारे लोग सरकारी अधिकारी हैं, अधिकांश की नौकरी पक्की है, तो ग्रामीण समुदाय में उनका कोई नाता हो यह जरूरी नहीं है। एकमात्र अपवाद आंगनवाड़ी कार्यकर्ता हैं जिसे न तो पक्की नौकरी होती है, न तनख्वाह और उस पर ही स्थानीय समुदाय में संबंध बनाने और उसमें पूरा सहयोग लेने की जिम्मेदारी होती है।

दरअसल इस पूरे कार्यक्रम का दारोमदार आंगनवाड़ी कार्यकर्ता पर ही होता है, जो उसी गांव की होती है, और इसी के चलते वह गांव के लोगों में मदद पा लेती है और जहां सरकारी कायदे कानून में बहुत ज्यादा औपचारिकता होती है वहां भी वही उसे थोड़ा अनौपचारिक बनाती है। स्थानीय होने के चलते लोगों में इसे 'सरकार' नहीं माना जाता। आम तौर पर उसे 'बहन जी' कहा जाता है – आंगनवाड़ी वाली बहनजी।

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की यह पहचान और मौजूदगी इस पूरे कार्यक्रम के घोर सरकारी और औपचारिक स्वरूप से एकदम उलट है। परियोजना, प्रखंड, जिला और उससे ऊपर के स्तर पर घोर सरकारी तौर तरीके चलते हैं। स्थानीय समुदाय के लोगों में किसी भी किस्म की भागीदारी या निकट सम्पर्क रखते हुए काम करने का कोई प्रावधान इस कार्यक्रम में नहीं है – न तो उनके कार्यक्रम के संचालन में कुछ पूछने का प्रावधान है न नियमित रूप से उनमें जानकारी ही लेने का। इसलिए कार्यक्रम में अधिकारियों का समुदाय का लोगों में किसी अन्य का सम्पर्क नहीं रहता। समुदाय के प्रति उनकी कोई जवाबदेही भी नहीं होती। यह सारी ज़िम्मेदारी अकेले आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की होती है।

इसके साथ ही आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और स्थानीय समुदाय में सक्रिय सहयोग बनाने के लिए भी योजना के स्तर पर कोई काम नहीं किया गया है। और इस सहयोग के न रहने का कार्यक्रम पर ऋणात्मक प्रभाव भी पड़ रहा है।

और यह चीज फोकस सर्वेक्षण में बहुत बेहतर ढंग से सामने आई है। जैसाकि अध्याय चार में बताया गया है इस योजना में स्थानीय समुदाय की भागीदारी काफी कम है। तमिलनाडु और महाराष्ट्र में तो लोगों ने दिलचस्पी ली है और आंगनवाड़ी केन्द्र की रंगाई-पुताई, शौचालय बनाने, बच्चों के खिलौने, बर्तन, वर्दी, पंखा, दीवार घड़ी वगैरह खरीदने के लिए चंदा दिया है। महाराष्ट्र में दो जगह कुपोषित बच्चों को रोज एक-एक गिलास दूध देने का इंतजाम भी स्थानीय लोगों ने किया था। लोगों की भागीदारी और देखरेख, दोनों स्तर पर इन राज्यों में काफी कल्पनाशील प्रयोग भी हुए है। जैसे महाराष्ट्र में 'माताएं' इन केन्द्रों पर निगरानी रखती हैं। तमिलनाडु में आंगनवाड़ियों में बालवाड़ियां भी है और वहां की औरतें इस बात पर चौकस रहती हैं कि केन्द्र रोज खुलें। हिमाचल प्रदेश में भी ऐसी चौकसी दिखी। पर अन्य राज्यों में ऐसी सक्रियता नहीं दिखी। कुछ जगहों पर जाकर ग्राम पंचायतों ने आंगनवाड़ी के लिए जगह देने या उसके बिजली का बिल चुकाने का काम जरूर किया था। आम तौर पर माँ-बाप भी ज्यादा चौकस नहीं रहते और लोग इस कार्यक्रम को लेकर ज्यादा उम्मीद भी नहीं करते।

'जब सहायिका न हो तो बच्चों के

माँ–बाप ही आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की मदद करते हैं। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की गांव भर के लोगों से दोस्ती है और बच्चों के माँ–बाप को जब भी जरूरत होती है वे बहन जी की मदद के लिए आ जाते हैं।"

(फोकस सर्वेक्षणकर्ता की टिप्पणी, अलवारतिरूनगरी, तूतीकोरिन, तमिलनाडु)

कई बुरे मामलों में यह सम्बन्ध एकदम उलट भी जाता है और आरोप–प्रत्यारोप शुरू हो जाते हैं। कई आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को लगता है कि माँ–बाप उनके काम का महत्व ही नहीं देते और जबकि ही गैर–जिम्मेदार हैं, जो बच्चों को आंगनवाड़ी नहीं भेजते। उधर माँ–बाप आंगनवाड़ी की बदहाली का दोष कार्यकर्ता के ऊपर पढ़ते हैं जबकि उनको उन स्थितियों का अंदाजा भी नहीं होता जिसमें वह काम करती हैं। यह एक दुश्चक्र जैसा मामला है। अगर स्थानीय स्तर पर लोगों की भागीदारी न होगी तो जवाबदेही और सेवाओं के स्तर में भी कमी होगी। इधर जब सेवाओं का स्तर खराब होता है तो लोगों का उत्साह घटता है और वे भागीदारी नहीं करते।

इस दुश्चक्र को तोड़ने का एक तरीका यह है कि इस योजना के तहत ऐसी सेवायें दी जाये जिनको सभी लोग, खासकर महिलाएं भी अपने लिए (सिर्फ बच्चे ही नहीं) महत्वपूर्ण मानती हैं। जैसे, तमिलनाडु में घर के बाहर काम करने वाली औरतें आंगनवाड़ी केन्द्रों पर बालवाड़ियों चलाने को सबसे महत्वपूर्ण मानती हैं और जहां यह व्यवस्था है वहां के काम में वे खूब दिलचस्पी लेती हैं। अगर लोगों को आंगनवाड़ी का महत्व अपने लिए या अपने बच्चे के लिए नहीं लगे तो वे उत्साह में हिस्सा क्यों लेंगे।

अगर स्थानीय समुदाय से सक्रिय सम्बन्ध रखना है तो फिर आंगनवाड़ी वाली बहन जी की भूमिका को भी महत्व देना होगा। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता का समाज में दर्जा बढ़े इसके कई तरीके हैं। सर्वेक्षण में आई अनेक कार्यकर्ताओं ने कहा कि अगर वे लोगों की जरूरत की दवाएं बांटती हैं तो लोगों में उनकी पूछ बढ़ती है। स्कूल पूर्व शिक्षा देने का बढ़िया

बाक्स 6.7. आन्ध्र प्रदेश में समुदाय की लामबन्दी

भारत में शिशुओं और बच्चों का स्वास्थ्य सार्वजनिक सरोकार का मसला नहीं है। अगर किसी कम वजन के बच्चे का जन्म होता है या कोई शिशु मर जाता है तो इसे महज माता की एक समस्या की तरह देखा जाता है। इस नजरिए को बदलने और आंगनवाड़ी और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में उत्तरदायित्व लाने के के लिए एम.वी. फाउंडेशन, रंगारेड्डी जिले के तीन सौ गांवों में काम कर रहा है।

पोषण और स्वास्थ्य सम्बन्धी बच्चों के अधिकार को लेकर सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को बनाने के लिए ग्राम पंचायत के सदस्यों, महिलाओं, युवाओं व अन्य के साथ सार्वजनिक बैठकें की गईं। 0–6 वर्ष तक के बच्चों से सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किये गये व प्रत्येक बच्चे की मौत के कारणों पर चर्चा की गई। समूहों को आई.सी.डी.एस. और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की भूमिका के बारे में बताया गया। यह तय किया गया कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ता (ए.डब्ल्यू.डब्ल्यू.), आंग्जीलरी नर्स मिडवाइफ (ए.एन.एम.), स्कूल हेडमास्टर, ग्राम पंचायत के सदस्य और समुदाय के अन्य लोग मिलकर प्रति माह गांव के बच्चों की स्थिति की समीक्षा करेंगे।

इन समीक्षा बैठकों के चलते कई परिवर्तन महसूस किये गये। उाहरण के लिए बुरगुपल्लै गांव (मोनिन पेट मंडल) में आगनवाड़ी कार्यकर्ता पन्द्रह दिनों में केवल एक बार आती थी। समीक्षा बैठक के दौरान सरपंच ने उसे चेतावनी दी कि अगर वह नियमित रूप से नहीं आयेगी तो वह उसके खिलाफ शिकायत करेगा। यह कार्यकर्ता राजनैतिक तौर पर प्रभावशाली थी और उसने चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब सरपंच, युवा नेताओं और माता समूह ने सी.डी.पी.ओ. को एक याचिका भेजी। तब सी.डी.पी.ओ. ने उस कार्यकर्ता को एक मेमो (चेतावनी पत्र) भेजा और अन्ततः वह उस दबाव में झुक गई।

गांव के युवाओं ने यह देखा कि बच्चों को जो पोषक पाउडर दिये जाते हैं उन्हें या तो उनकी जेब या प्लास्टिक के कागज में दिया जाता है, जिसे वे अपने घर जाने के रास्ते में बिखरते हुए जाते हैं या रास्ते में गिरा कर भाग लेते हैं। अगली समीक्षा बैठक में कार्यकर्ता को पाउडर से लड्डू बनाने को कहा गया और उसे बच्चों को आंगनवाड़ी केन्द्र पर ही खिलाने को कहा गया।

अब आंगनवाड़ी कार्यकर्ता अपनी समस्याओं पर ग्राम पंचायत से चर्चा करते हैं। फिर ये समस्यायें सरपंच द्वारा मंडल की सामान्य सभा में उठाई जाती है जिसमें की सभी विभाग के अधिकारी/कर्मचारी आते हैं। कुछ मुद्दों, जैसे खाने के प्लेट की कमी या खेलकूद के सामानों की मरम्मत को गांव के स्तर पर ही निपटा लिया जाता है।

एम.बी. फाउंडेशन ने आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को 0–3 साल के बच्चों के उन समूहों की सघनतापूर्वक नियमित देखरेख में शामिल किया है जो ग्रेड-III और ग्रेड-IV के कुपोषण से ग्रस्त हैं। एम.वी. फाउंडेशन के स्वैच्छिक कार्यकर्ता और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता मिलकर इन बच्चों के घरों पर जाते हैं, वहाँ माता को सलाह देते हैं और पूरक पोषण का दुगना आहार देते हैं। पहले आंगनवाड़ी कार्यकर्ता अपने सुपरवाईजर के डर से इन बच्चों को 'छुपाते' थे। अब वे इन्हें अपने सफलता के प्रमाण के तौर पर अपने सुपरवाइजर और सी.डी.पी.ओ. को गाँव के दौरे में दिखाती हैं।

इन समीक्षा बैठकों और 30,000 से ज्यादा बच्चें के सघन पर्यवेक्षण से रंगारेड्डी जिले के आठ मंडलों के कई आंगनवाड़ी सक्रिय हो चुके हैं। यहाँ पर नियमित तौर पर बच्चे आते हैं, कुपोषणग्रस्त बच्चों की देखरेख की जाती है और शिशुओं व छोटे बच्चों का स्वास्थ्य अब सार्वजनिक सरोकार का मसला है।

सहयोग – दीपा सिन्हा

प्रशिक्षण भी लोगों की नज़र में उनकी इज्जत बढ़ा देता हैं। पर हाल में स्कूल पूर्व शिक्षा को आंगनवाड़ी योजना से निकालकर शिक्षा विभाग के हवाले करने का शासनादेश चीजों को एकदम उल्टी तरफ मोड़ने वाला है। इससे आंगनवाड़ी कार्यकर्ता का दर्जा सहायिका की तरह बच्चों के लिए भोजन बनाने वाली रसोइया भर का रह जाएगा।

नर्स को सब पूछते हैं, बल्कि उसे डॉक्टर 'अम्मा' कहा जाता है और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को भी लगता है कि अगर उसे भी नब्ज देखने, बच्चों को आला लगाने वगैरह का प्रशिक्षण दे दिया जाए तो गांव में उसका आदर बढ़ जाएगा।

(फोकस सर्वेक्षणकर्ता, पालाकोड, धर्मपुरी जिला, तमिलनाडु)

इनके अलावा भी स्थानीय समुदाय की भागीदारी बढ़ाने के अनेक दूसरे तरीके हैं। पूर्ण साक्षरता अभियान की तरह इस योजना के पक्ष में भी जन साधारण और चेतना अभियान चलाने जरूरत है जिसमें लोग इसके प्रति सचेत हों। साक्षरता के मामले में फैली चेतना ने पिछले कई वर्षों में काफी फर्क ला दिया है। इससे हर बच्चे के स्कूल जाने की अधिकार के बारे में भी चेतना बढ़ी है। इसी प्रकार यह अभियान भी चलाना चाहिए कि लोग हर बस्ती के प्राथमिक स्कूल की तरह आंगनवाड़ी भी खोलें।

दूसरे, सामुदायिक भागीदारी को संस्थगात आधार की भी जरूरत होती है। ये चीजें न तो शून्य में चल सकती हैं या जैसे-तैसे हड़बड़ी में बनी कमेटियों के सहारे। अगर कोई कमेटी किसी काम से जुटी है तो उसका काम सिर्फ बैठक करने के अलावा भी होता है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत मासिक 'स्वास्थ्य एवं पोषण दिवस' मनाने (देखें अध्याय पाँच) जैसे काम लोगों की भागीदारी को बढ़ा सकते हैं। एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के हिसाब-किताब का साल में एक बार 'सामाजिक ऑडिट' करना भी एक महत्वपूर्ण काम तो हो सकता है।

तीसरी चीज इन संस्थाओं और गतिविधियों को चलाने के लिए संसाधनों की जरूरत है। कुछ ख़ास गतिविधियों के लिए स्थानीय स्तर पर चंदा करके धन जुटाया जा सकता है। लेकिन अगर स्थानीय समुदाय की लगातार भागीदारी बनाए रखनी हो तो साधनों का स्थायी इंतजाम होना चाहिए। यह चीज आंगनवाड़ियों को वार्षिक अनुदान देने के रूप में हो सकती है। ऐसे पैसे का उपभोग भवन को रंगने, सुधारने, बेहतर उपकरण लाने और खास आयोजनों के लिए हो सकता है।

चौथी चीज कार्यक्रम में जुड़े फैसलों में स्थानीय समुदाय की भागीदारी है। उनसे आंगनवाड़ी की जगह और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के चुनाव जैसे मामलों में तो जरूर पूछा जाना चाहिए। फोकस सर्वेक्षण के दौरान यह बात सामने आई कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के चुनाव में मनमानी को लेकर स्थानीय लोगों में काफी नाराजगी थी और अगर यह काम पारदर्शी ढंग से हो तो लोगों का भरोसा काफी बढ़ेगा।

आखिरी बात इस योजना के संचालन और देखरेख में पंचायती राज की संस्थाओं की भागदारी है। संविधान के 11वें अनुच्छे में पंचायती राज संस्थाओं के कामों में 'महिला और बाल विकास' का भी उल्लेख है। पर अभी तक इस योजना में पंचायतों का संबंध बहुत कम है। सर्वेक्षण में आई केवल आधी आंगनवाड़ी कायकर्ताओं ने ही स्वीकार किया कि आंगनवाड़ी के प्रबन्धन में सरपंच किसी भी किस्म की कोई भूमिका निभाते हैं और पंचायत जितने तरह से इस योजना से जुड़कर इसे ज्यादा लाभकर रूप दे सकता है, उनकी कोई कमी नहीं है, जैसा कि बाक्स 6.7 से जाहिर है।

यह सब कहना आसान है, करना मुश्किल, और इसके लिए सबसे जरूरी है सामुदायिक भागीदारी के महत्व को मानना और यह काम कैसे हो सकता है उस पर विचार करना। अधिकांश लोगों को नन्हें बच्चे पसंद हैं और उनके भले के काम में उनकी भागीदारी करना मुश्किल नहीं है। और इस हिसाब से एकीकृत बाल विकास सेवा योजना में सामुदायिक भागीदारी की अपार सम्भावनाएं हैं। आखिरी अध्याय में हम इस क्षमता के बेहतर उपाय पर विचार करेंगे।

सामुदायिक भागीदारी में सिर्फ इस योजना की सेवाओं को बेहतर रूप ही नहीं दिया जा सकता घर और आंगनवाड़ी के बीच के फासले को भी पाटा जा सकता है। बाल विकास में ये दोनों ही ठिकाने महत्वपूर्ण हैं। अभी तो इनमें द्वंद्व-सा है जो दोनों को अपनी क्षमता भर काम नहीं करने देता है। माँ-बाप भी अपने बच्चों की देखरेख करते हैं और आंगनवाड़ियां भी। यह दोनों अपने-अपने प्रयासों को साझा करें इसकी कोई व्यवस्था नहीं है। इस मामले में घर जाकर बात करना, सेवा और परामर्श देने की व्यवस्था को आंगनवाड़ी से जोड़ना इस योजना की सबसे बड़ी चुनौती है।

बाक्स 6.8. आंगनवाड़ी के अन्दर और बाहर के आदिवासी बच्चे

छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले की प्राचीन जनजातियाँ – पांडो, पहाड़ी और कोरवा – सम्प्रायोजन की अभ्यस्त हो चुकी हैं। पांडो पहले जंगलों में रहते थे और झूम वाली खेती किया करते थे। वन सम्पदा के नष्ट होने तथा वनों पर जीवन यापन के लिए आश्रित लोगों के लिए खतरा पनप जाने की चिंता थी। इस कारण पांडों जाति के लोगों को एक स्थायी और व्यवस्थित जीवन से परिचित कराने के उद्देश्य से, उन्हें कुछ जंगल के गांवों में स्थापित किया गया। जंगल से वन-ग्रामों का यह बदलाव 1960 के दशक में हुआ। पहाड़ी कोरवाओं का इतिहास इससे अलग है। सख्त पहाड़ी जमीन पर सामान्य फसलों की खेती करना उनके जीवन-यापन का प्रमुख साधन है। लकड़ी के अतिरिक्त जंगल के उत्पाद जैसे – महुआ, चारा बीज, साल के बीज और तेन्दू पत्ता इकट्ठा करना भी दोनों जनजातियों के गुजर-बसर के लिए महत्वपूर्ण पूरक साधन हैं।

इन जनजातियों में बच्चे अक्सर, खेती और जंगल के उत्पाद एकत्रित करने में ही अपने माता-पिता का हाथ बंटाते हैं। परन्तु उनका एकमात्र महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व बैल-बकरी चराना है। घरों के पास आई.सी.डी.एस. और विद्यालयी शिक्षा उपलब्ध कराए जाने से पहले इन जनजातियों के बच्चों के जीवन का तरीका कुछ ऐसा ही था।

हाल ही में छत्तीसगढ़ जिले के 3 पांडों और 1 पहाड़ी कोर्वा गांवों में कराया गया सर्वेक्षण यह दर्शाता है कि प्राथमिक स्कूलों में उपलब्ध कराए जाने वाले दोपहर के भोजन और आंगनवाड़ी में उपलब्ध कराए जानेवाले पूरक आहार, माताओं और उनके बच्चों को काफी संतुष्टि व आश्वासन उपलब्ध कराते हैं।

हमें पांडों के एक गांव सेमीघोरा की आंगनवाड़ी से होने वाली रोजमर्रा की गतिविधियों को देखने का एक अवसर मिला। यह आंगनवाड़ी 1960 के आस-पास बने एक पुराने घर में चलता था जब पंडित नेहरू के कार्यकाल में वन-ग्राम स्थापित किया गया। वहाँ बच्चे खेल रहे थे, माँएं पारम्पारिक गीत गा रहीं थीं, जिसने हमें केन्द्र की ओर आकर्षित किया। वहां की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहयोगी दोनों ही स्थानीय जनजातियों की थीं, वे पारम्परिक ढंग से हमारा स्वागत करने आगे आए। हमारे पूछे जाने पर बताया गया कि उस दिन के खाने में दाल-चावल बनाए गए। हफ्ते में एक या दो दिन पूरी-सब्जी भी बनाई जाती थी परन्तु बच्चे चावल ही ज्यादा पसंद करते थे। हमने माँ और बच्चों से खाने की नियमितता और गुणवत्ता के बारे में पूछा, और वे दोनों ही इस पक्ष से संतुष्ट दिखे।

हमारे सर्वेक्षण ने अन्य मुद्दों पर भी रोशनी डाली, जिनमें स्कूल में उपस्थिति और उसमें उतार चढ़ाव के कारण शामिल थे। सर्वेक्षण सुझाता है कि आधे से कम (43%) या 195 में से 83 बच्चे, जो 1 से 5 वर्ष की आयु के हैं, आंगनवाड़ी आते हैं। परिवार की आर्थिक स्थिति और आंगनवाड़ी से दूरी जैसे अन्य कारक, उपस्थिति को प्रभावित करते हैं। जिन गांवों में बड़ी संख्या में लोगों को खेती से महीने भर की जरूरत से कम के लिए खाना मिलता है, वहाँ उपस्थिति के बेहतर आंकड़े दिखते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि आंगनबाडी से मिलने वाले लाभ आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो के लोगों के लिए, तुलनात्मक तौर पर, अमीर वर्ग से ज्यादा महत्ता रखते हैं? यह कटाई के मौसम और वन उत्पाद एकत्रित किए जाने के दिनों में गिरते उपस्थिति दर के आंकड़ों से भी मेल खाता है। इस दौरान बच्चे माँ के साथ इन आर्थिक गतिविधियों के लिए खेतों या वनों में जाते हैं। यह पांडो निवासीय गावों से हमारी प्रमुख खोज थी। पहाड़ी कोरवा गांव की स्थिति अलग थी। यहाँ उपस्थिति दर केवल 37% थी, जो पांडों गांवों की तुलना में काफी कम है। इसका प्रमुख कारण घरों के बसने का तरीका स्थापना है; जो पहाड़ों की चोटियों पर बिखरे हुए हैं। बच्चों के लिए, एक चोटी से दूसरी चोटी पर आंगनवाड़ी तक जाना कठिन कर देता है। यह ऐसी जगहों पर अतिरिक्त आंगनवाड़ियाँ स्थापित करने की स्पष्ट जरूरत की ओर भी इशारा करता है।

अन्ततः हमने कोशिश की इसको समझने की कि कहाँ तक आंगनवाड़ी एक संस्थान के रूप में इस समाज को प्रभावित करता हैं। पहला सकारात्मक प्रभाव यह था कि हमने पाया इस संस्थान को सिर्फ एक खाना वितरण करने के साधन की तरह नहीं, बल्कि अपने समाज और संस्कृति के अभिन्न अंग की तरह स्वीकारा गया। इस तथ्य से भी बल मिलता है कि आंगनवाड़ी के प्रमुख कायकर्ता सभी आदिवासी महिलाएं हैं। आंगनवाड़ी बच्चों के खेलने को व महिलाओं के लिए सामाजिक बातचीत के लिए एक जगह देती है जो सांस्कृतिक बन्धन और अपने जनजातिय अस्तित्व को मजबूती प्रदान करता है।

आंगनवाड़ी का दूसरा सकारात्मक प्रभाव शिक्षा और उससे जुड़ी गतिविधियों पर था। यह इसलिए है क्योंकि जो बच्चे पहले चरवाहों की भूमिका निभाते थे अब प्राथमिक स्कूल या आंगनवाड़ी जाते हैं। यह सभी सकारात्मक कारक आंगनवाड़ी के भविष्य और उसमें बदलाव लाने के एक साधन के रूप में बेहतर प्रयोग को लेकर आशा देते हैं। परन्तु एक बड़ी चुनौती उन बच्चों को आंगनवाड़ी में सम्मिलित करना है, जो अभी इससे बाहर हैं।

सहयोग – गोविन्द रथ, इसमें छत्तीसगढ़ किसान मजदूर आन्दोलन तथा बाहरी कोखा महापंचात और चौपल अम्बिकापुर का इनपुट है।

7. तमिलनाडु का अनुभव

अनिता खेमका

उत्तर भारत में आंगनवाड़ियों के कामकाज को जानने वाले व्यक्ति के लिए तमिलनाडु की आंगनवाड़ियों को देखना एक नया और सुखद अनुभव है। गांव की दो साधारण-सी औरतें थोड़े से समर्थन में गांव में सामाजिक बदलाव और विकास की देवियां बन सकती हैं, तो इसे तमिलनाडु में देखा जा सकता है। बच्चों को स्थानीय संसाधनों के ही उपयोग में जीवन की दमदार शुरुआत कराई जा सकती है, तमिलनाडु के उदाहरण में इस योजना की अपार सम्भावनाओं को बताने के साथ अन्य राज्यों द्वारा उल्टे चूक जाने की ओर इशारा करने की कोशिश भी करता है। देश भर में सभी बच्चों को स्तरीय बाल विकास सेवाएं उपलब्ध कराने की बात की दमदार वकालत के लिए भी तमिलनाडु के उदाहरण पर गौर करना जरूरी है।

तमिलनाडु में एकीकृत बाल विकास

सेवाओं की सफलता कोई संकोच यात्रा नहीं है। यह एक पक्की और निरंतर चलने वाली राजनैतिक प्रतिबद्धता, पर्याप्त संसाधनों, रचनात्मक प्रयोगों, उपयोगी सामाजिक माहौल और वहां की महिलाओं की कर्मठता में सफल हुआ है। इतना ही नहीं इस सफलता को ढंग से चलते स्कूलों और स्वास्थ्य सेवाओं में अलग करके भी नहीं देखा जा सकता। तमिलनाडु के अनुभवों से सीखने का मतलब इन वृहत्तर मुद्दों पर ध्यान देना भी है – एकीकृत बाल विकास सेवा को लागू करने के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देने के साथ ही।

7.1 तमिलनाडु की सफलताओं के सन्दर्भ

बाल विकास के क्षेत्र में तमिलनाडु की सफलताओं का गुणगान पहले के अध्यायों में होता रहा है। जैसे, हमने अध्याय 2 में देखा कि बाल विकास के ऐसे तर्कों पर जिनमें शिशु मृत्यु दर कम करना, टीका करण की दर, पोषण के स्तर और स्कूलों में भागीदारी शामिल है, तमिलनाडु किस तरह अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन कर रहा है। दरअसल वहां दिए गए 'शिशु एवं बाल विकास की उपलब्धियों' के सूचकांक – एबीसी मूल्यांकन में, यह केरल के बाद दूसरे नम्बर पर है।

चार्ट : 7.1. स्वास्थ्य संकेतक : राजस्थान और तमिलनाडु 2005-06

	राजस्थान	तमिलनाडु[a]	भारत
शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जन्म पर)	65	31 (3)	57
तीन वर्ष से कम के ऐसे बच्चों का (%) अनुपात जो कम वजन के हैं।	44	33 (4)	46
कुल प्रजनन दर (%)	3.2	1.8 (2)	2.7
पिछले प्रसव से पहले के कम से कम तीन बार जांच कराने वाली माताओं का प्रतिशत (%) अनुपात	41	97 (1)	51
अस्पताल/स्वास्थ्य केन्द्रों का प्रसव का (%) अनुपात	32	90 (2)	41
जन्म से एक घंटे के अन्दर मां का दूध पीने/स्तनपान वाले तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों का (%) अनुपात	13	55 (2)	23
12-23 माह के बच्चों का अनुपात जिन्हें सारे टीके लगे है।	27	81 (1)	44
'एड्स' के बारे में सनुने वाली वयस्क महिलाओं का (%) अनुपात	34	94 (2)	57

[a] *कोष्ठक में भारत के 20 प्रमुख राज्यों (जिनकी जनसंख्या 1991 में कम से कम 50 लाख थी) में तमिलनाडु का दर्जा बताया गया था।*

स्रोत : तीसरा राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2005-06 (अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान, 2006), 15-19 वर्ष उम्र समूह की विवाहित औरतों में से रैंडम प्रणाली से लिए गए सर्वेक्षण पर आधारित।

चार्ट 7.1 में अन्य संकेतकों में तमिलनाडु की तुलना राजस्थान और पूरे भारत से की गई है। तमिलनाडु और राजस्थन दोनों की जनसंख्या 2001 की जनणगना में 5-6 करोड़ के आसपास थी। इस आबादी में गरीबी रेखा के नीचे ज़ीवन बसर करने वालों की संख्या के अनुपात के संकेतक मानदंड के हिसाब से दोनों राज्यों में गरीबी का स्तर भी करीब-करीब बराबर है। लेकिन, जैसा कि इस चार्ट से स्पष्ट होता है, बच्चे से संबंधित सामाजिक संकेतकों के हिसाब से उनमें काफी अंतर है और लगभग हर मामले में तमिलनाडु, राजस्थान से काफी अच्छा प्रदर्शन कर रहा है। यह तुलना तमिलनाडु की उपलब्धियों में औरतों की भूमिका के सन्दर्भ में खास दिलचस्पी की है। हम लोग आगे इस मुद्दे पर चर्चा करेंगे।

इन उपलब्धियों को तमिलनाडु में, सामाजिक नीति के ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखना होगा। जैसे तमिलनाडु के नजरिए की एक विशेषता यह है कि हर किसी को बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है। यहां केवल लक्षित समूहों या लक्षित प्रतिभा के लिए सभी कुछ करने का प्रयास नहीं हुआ है। 1930 के दशक से तमिलनाडु में चले समाज सुधार आन्दोलन का राज्य की राजनीति और शासन की भूमिका पर गहरा असर हुआ है और उसी से सभी के लिए अवसर उपलब्ध कराने का नजरिया विकसित हुआ है। जैसे कुछ-कुछ विशेष अस्पतालों या क्षेत्रों पर केन्द्रित विशेषज्ञता की जगह सबकी पहुंच वाले प्रभावी प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा केन्द्रों को बनाने-चलाने पर जोर दिया गया। इसी प्रकार तमिलनाडु में सबके लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली चलाई गई है

बाक्स 7.1. उत्तर भारत के नजरिए से तमिलनाडु

कई बार थोड़े समय ही फील्ड में काम करना वर्षों के अकादमिक अध्ययन के बराबर होता है। तमिलनाडु के ग्रामीण इलाकों में घूम कर लौटने के बाद पिछले माह मुझे भी ऐसा ही अनुभव हुआ। अपने एक पूर्व छात्रा के साथ मैं वहां गया था और वहाँ देखी गई चीजें मेरे लिए आँख खोलने वाली अनुभव थीं।

हमारा मुख्य उद्देश्य गांवों के स्कूलों, स्वास्थ्य केन्द्र और इनसे सम्बन्धित गतिविधियों को देखना था। उत्तर भारत में मैं जब-तब ग्रामीण इलाकों में जाकर ऐसा करता हूँ और हर बार काफी निराश होता हूँ। एकदम ही काम न करने वाले स्कूलों में लाखों बच्चे अपना वक्त बर्बाद करते हैं। अगर कहीं स्वास्थ्य केन्द्र हैं भी तो वे महिला वंध्याकरण के अलावा कोई काम नहीं करते। राशन की दूकानें ज्यादातर समय बंद मिलती हैं। सड़क, पेय जल से लेकर बिजली जैसी बाकी सारी सार्वजनिक सेवाओं का हाल बुरा ही मिलता है।

तमिलनाडु में स्थिति एकदम अलग नजर आई। हमने सिर्फ तीन जिलों (कांचीपुरम, नागमट्टिनम और धर्मपुरी) का दौरा किया पर सभी जगह एक सी स्थिति दिखी और सम्भवतः पूरे राज्य की स्थिति ऐसी ही थी। जैसे हम जिन नौ स्कूलों में गए वहां जो-जो सुविधाएँ दिखीं वे उत्तर के लिए असामान्य और कल्पना से बाहर की चीजें हैं। साफ-सुथरे भवन, पर्याप्त फर्नीचर, शैक्षिक उपकरण, साफ-सुथरे शौचालय, पेयजल, दोपहर का भोजन, मुफ्त पाठ्यपुस्तकें और नियमित स्वास्थ्य की जांच की व्यवस्था सभी जगह मिली। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात थी कि शिक्षक पढ़ा रहे थे और वे ब्लैकबोर्ड का प्रयोग भी कर रहे थे। जबकि उत्तर भारत में यह दृश्य प्रायः दिखता ही नहीं। वहाँ भी चीजों में सुधार की गुंजाइश थी पर बच्चों को पढ़ाई और सीखने में कोई परेशानी न थी और उन्हें काफी अच्छा वातावरण मिल रहा था।

सरकारी स्कूलों में दोपहर का भोजन की अच्छी व्यवस्था देखना सुखद आश्चर्य हुआ। हर जगह ठीक समय पर भोजन बंटता था। बच्चे कुल मिलाकर काफी संतुष्ट और खुश थे और पूरी व्यवस्था को लेकर शिक्षकों में भी उत्साह था। दोपहर के भोजन से पेट खराब होने, खराब खाना मिलने या पढ़ाई में हर्ज होने जैसी सामान्य शिकायतें यहां कहीं भी देखने में नहीं आई। इसे प्रत्यक्ष देखने के बाद हर कोई इस बात को समझ जायेगा की प्राथमिक स्कूलों में ब्लैक बोर्ड वगैरह की तरह दोपहर का भोजन भी अनिवार्य रूप में होना चाहिए।

हम स्वास्थ्य केन्द्रों पर भी जाकर काफी प्रभावित हुए। ये साफ-सुथरे, जीवंत थे और इनमें स्टाफ की कमी न थी। बाकी सारी दवाएं मुफ्त दी जा रही थीं और काम काज की नियमित निगरानी भी चल रही थी। रोज के कार्यक्रम, उपलब्ध सुविधाओं, विभिन्न कार्यक्रमों की प्रगति और सम्बन्धित सूचनाओं वाले चार्ट दीवारों पर लगे थे। मरीज लोग बहुत आराम से आ जा रहे थे और ऐसा लगता था कि वे यहां के कामकाज से पूरी तरह वाकिफ हैं उत्तर भारत के स्वास्थ्य केन्द्रों की तुलना में यह एकदम अलग स्थिति थी क्योंकि वे सुनसान, गंदा, अंधकारमय होते हैं और कोई मदद करने वाला नहीं दिखता।

अधिकांश गांवों में आंगनवाड़ियों का चुस्त-चौकस काम देखना भी एक नया अनुभव था। उत्तर भारत में आंगनवाड़ियाँ कहीं-कहीं ही हैं और जहां हैं वहां भी उनमें खास सक्रियता नहीं दिखती। पर तमिलनाडु में ग्रामीण वातावरण में ठीक-ठाक काम करती आंगनवाड़ी का होना एकदम सामान्य समझा जाता है। आंगनवाड़ियों की अपनी इमारत हैं, पर्याप्त स्थल है, वहीं तैयार करके भोजन बंटता है, बच्चों को पढ़ाने वाले उपकरण हैं, स्वास्थ्य की नियमित जांच होती है और आंगनवाड़ियों का इंस्पेक्शन होता है। जिन आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं से हमारी भेंट हुई वे सभी प्रशिक्षित थीं और उन्होंने अपने रोजाना के कामकाज के विश्वसनीय विवरण दिए।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भी उत्तर की तुलना में तमिलनाडु की स्थिति एकदम अलग लगी। उत्तर भारत में राशन की दुकान में गेहूं या चावल पा लेना एवरेस्ट जीतने जैसा काम लगता है। ज्यादातर राशन वाले गड़बड़ ही हैं और पूरा तंत्र भ्रष्टाचार में डूबा है। लोगों को भी पता नहीं होता कि उन्हें क्या-क्या और कितना मिल सकता है। गड़बड़ होने पर वे दोषी को सजा भी नहीं दिलवा सकते। पर तमिलनाडु में हमने पाया कि अशिक्षित दलित महिलाओं को भी पता है कि उन्हें राशन में क्या-क्या और कितने पाने का अधिकार है। सरकारी आंकड़ें भी इस चीज की गवाही देते हैं, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण बताता है कि तमिलनाडु में लगभग पूरा राशन उठता है। दूसरी तरफ उत्तर भारत में राशन का ज्यादतर अनाज काला बाजार में जाता है।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तमिलनाडु सार्वजनिक सेवाओं के मामले में आदर्श स्थिति में है। वहां भी नागरिक सुविधाएं संविधान द्वारा तय मानकों से कम हैं। सार्वजनिक सेवाओं में सामाजिक असमानता काफी दिखती हैं। पर वहां कम से कम बुनियादी सेवाएं ठीक हैं और तमिलनाडु का अनुभव (केरल की ही तरह) बताता है कि इस क्षेत्र में काफी सम्भावनाएं हैं।

– ज्यां द्रेज, (टाइम्स ऑफ इंडिया, मई 2003 में प्रकाशित)

और 1997 के बाद जहां अन्य राज्यों में लक्षित समुहों के लिए राशन प्रणाली चलाने पर जोर बढ़ा हैं। तमिलनाडु में, अभी भी सभी को राशन का लाभ दिया जाता है। तमिलनाडु में 1982 से ही सभी बच्चों को दोपहर का भोजन दिया जाता है और गरीब वृद्ध लोगों को भी यह भोजन दिया जाता है। तमिलनाडु ने औपचारिक क्षेत्र में सामाजिक सुरक्षा योजना को लागू करने जैसी अद्‌भुत पहल भी की है। तमिलनाडु में पार्टियों का चुनाव घोषणा पत्र हो या विधान सभा की बहसें, मीडिया की खबरें हो या मंत्रियों, अधिकारियों पर सामाजिक दबाव बनाने के अन्य साधन, सब में सामाजिक मुद्दों को पर्याप्त स्थान मिलता है।

इन सार्वजनिक प्राथमिकताओं का लाभ राज्य के आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में

CH-100 15663

बाक्स 7.2. माँ और बच्चे के लिए चिंता : तमिलनाडु में मातृत्व लाभ

गर्भावस्था और पहले दो वर्ष, शिशु के पोषण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। विशेषज्ञ जन्म के साथ ही स्तनपान और पहले छह महीने तक बच्चे को सिर्फ मां के दूध पर रहने की सलाह देते हैं उसके बाद दिन में चार से पांच दफे कुछ नरम ठोस आहार के साथ मां का दूध पिलाते रहना उसके लिए लाभदायक होता है। सबसे मुश्किल समय छह से अठारह महीने की अवधि वाला होता है जब मां को बच्चे का पेट भरने लायक दूध नहीं होता और एक बार जब बच्चा कुपोषण का शिकार हो जाए तो उसके स्वास्थ्य को साामन्य स्थिति में लाना खासा मुकिश्ल हो जाता है। सो इसी समय बच्चे को अतिरिक्त पोषण आहार देना शुरू करना जरूरी है। पर बच्चे को सही पोषण देने का सबसे मुश्किल दौर भी यही है। तमिलनाडु में तिरूवन्नमलाई जिले भी खेतिहर मजदूर पोन्नम्मा का उदाहरण ही लें वह और इसके पति सेल्वम के पास दूसरों के खेत में काम करने के अलावा आमदनी का कोई और जरिया नहीं है। पर यह काम भी साल में मुश्किल से 100 दिनों का होता है। इसमें वे परिवार का ढंग से पालन करना सोच ही नहीं सकते। मुश्किल से वे किसी तरह पेट भर पाते हैं जब गांव में काम न हो तो सेल्वम पास के शहर जाकर बोझ ढोने या किसी मकान के निर्माण में मजदूरी करने की कोशिश करता है व पोन्नम्मा गांव में रहती है। उसे अपने दो साल के बेटे, अपनी झोंपड़ी के साथ बनी बाड़ी, दो बलीयों और झुग्गियों की देखरेख वाली होती है। गांव में जो थोड़ा बहुत काम मिलता है। वह उसे कर लेती है। अब उसे दूसरा बच्चा होने वाला है। अब वह अपना पेट भरने, अपने बीमार रहने वाले बेटे के साथ-साथ नए आने वाले बच्चें की जरूरते कैसे पूरी कर सकती है? नवजात शिशु की देखरेख के लिए वह काम बंद भी नहीं कर सकती?

इस राज्य में नयी शुरू हुई तमिलनाडु प्रसव सहायता योजना में उसे ठीक ऐसा ही करने की सुविधा मिल गई है। बच्चे के जन्म में दो माह पूर्व और चार माह बाद तक उसे हर महीने सरकार की ओर से 1000 रुपए की सहायता मिलेगी। गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली, 19 वर्ष से बड़ी हर औरत को पहले दो बच्चों के लिए ऐसी सहायता दी जाती है। इसलिए पोन्नम्मा को काम नहीं करना पड़ेगा और बच्चे तथा अपने परिवार के लिए ज्यादा परेशान होने की जरूरत नहीं है। उसके नए बच्चे के अच्छे स्वास्थ्य और पोषण की शुरुआत हो जाएगी। उसके गांव की आंगनवाड़ी से बड़े बच्चे के लिए जो घर ले जाने लायक तैयार पौषाहार मिलता है, उससे वह दोनों बच्चों के लिए आहर बना सकती है। बच्चा इतनी छोटी अवस्था में घर में बनने वाला सामान्य खाना नहीं खा सकता, इसलिए अतिरिक्त पोषाहार ज़रूरी है।

पोन्नम्मा मुल्क की कुछ ही भाग्यशाली माताओं में हैं जिन्हें इस तरह के मातृत्व लाभ मिल पाते हैं। ऐसी सुविधाएं तो सिर्फ संगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को ही मिलती हैं और असंगठित क्षेत्र की महिलाओं को अभी तक ऐसा कोई लाभ नहीं मिलता था। पर हर औरत को ये सुविधाएं मिलनी चाहिए क्योंकि ये माँ और बच्चा दोनों की सुरक्षा और स्वास्थ्य के लिए काफी महत्वपूर्ण हैं।

पर क्या पोन्नम्मा की सारी समस्याएं इसी में खत्म हो गई हैं? जब काम का समय होगा और उसे काम करके जाना पड़ेगा तब क्या होगा? वह अपने दो नन्हें बच्चों को कहां छोड़कर काम करने जाएगी? अपनी झोंपड़ी में उन्हें यूं ही छोड़ देगी या पड़ोसी की बूढ़ी अम्मा से उनको देखते रहने को कहेगी? या फिर अपनी दस साल की भतीजी का पढ़ना छुड़ाकर उसको यह ज़िम्मा सौंपेगी? अगर घर में खाना हो तब भी उन्हें दिन भर में चार-पांच बार कौन खिलाएगा? या हर गरीब घर की यही कहानी है और बच्चों को इसी तरह की कीमत चुकानी पड़ती है। इस जैसे मामले में बालवाड़ियां कहां है? क्या हम मान लेते हैं कि सबसे गरीब परिवारों के काफी सारे दयालू रिश्तेदार होते हैं, जो नन्हें बच्चों की देखरेख कर देते हैं। क्या हम बिना बालवाड़ियों के शिशुओं में कुपोषण और अल्प पोषण के मामले रोक सकते है?

सहयोग – मीना स्वामीनाथन

हर कहीं दिखाई देता है। बच्चों पर धन और साधन लगाने का महत्व हर कोई जानता है।

इन भौतिक सुविधाओं के साथ सामाजिक पहुँच पर भी बराबर बल दिया गया। उदाहरण के लिए डॉक्टर, शिक्षक और ऐसी ही सेवाओं को देने वालों में महिलाओं की खासी तादाद है। खासतौर से आई.सी.डी.एस. के सभी कार्यकर्ता, सहायिका, सी.डी.पी.ओ. और प्रशिक्षक महिलाएं ही हैं। इससे कई तरह से मदद मिलती है। जैसे महिलाओं की भागीदारी में व आई.सी.डी.एस. को उनकी जरूरतों व आकांक्षाओं के मुताबिक बनने में। पूरी तरह से महिलाओं द्वारा चलाये जाने वाले ऐसे किसी कार्यक्रम की मिसाल सारी दुनिया में बामुश्किल ही होती है। सामाजिक बाधाओं को पार करने का महत्व इसको लेकर तमिलनाडु में बनी जन समझ में देख सकते है। जैसा कि लीला बर्से बताती हैं कि तमिलनाडु में इन स्वास्थ्य सेवाओं के अपेक्षाकृत अच्छे होन का एक कारण यह है कि डॉक्टर और मरीज में "सामाजिक दूरी" कम है (यह कह सकते हैं कि जन सेवाओं को देने वाले और इस्तेमाल करने वालों के बीच)। इस घटी हुई दूरी की वजह सकारात्मक कार्यवाही और आरक्षण की नीति है। जबकि राजस्थान में ठीक उलट स्थिति है। जैसा कि कहा जाता है "अगर चिकित्सा अधिकारी किसी तरह काम पर मिल जाए तो श्रेष्ठता बोध से भरा

बाक्स 7.3. तमिलनाडु में स्वास्थ्य सेवाओं का सामाजिक संदर्भ

अपनी ज़रूरतों और अपने बच्चों के लिए सरकारी स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ उठाने के प्रति चौकस रहने की तमिल महिलाओं की क्षमता ने राज्य में 1930 के दशक में सामाजिक चेतना आंदोलन की बड़ी भूमिका निभाई हैं। पेरियार रामस्वमी नायकर द्वारा शुरू किए गए इस आंदोलन में ब्राह्मणवादी फर्क को नकारा गया था और छुआछूत को समाप्त किया गया था। उन्होंने औरतों की हालत सुधारने की ज़रूरत को समझा और शादी की उम्र बढ़ाने तथा छोटा परिवार रखने की वकालत की। इस आंदोलन में पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों के लोग शामिल हुए और इसका असर उन सभी राजनैतिक पार्टियों पर भी पड़ा जिनका नेतृत्व गैर-ब्राह्मण नेताओं के हाथ में था।

फिर आरक्षण की नीति ने शिक्षा, नौकरियों और अन्य चीज़ों में पिछड़ों को आगे बढ़ाने में मदद की है। समाज में प्रभावी पुराने समूहों को इससे खतरा लगा पर आरक्षण की नीति में किसी तरह की कोताही नहीं बरती गई। परिणाम यह है कि पिछली आधी सदी में इंजीनियरिंग और मेडिकल जैसी पेशेवर शिक्षा भी गांवों और कस्बों के पिछड़े बच्चों को उपलब्ध होने लगी है। गांवों या कस्बों की पृष्ठभूमि वाले डॉक्टर, अध्यापक और सरकारी कर्मचारी उत्साह से गांवों में जाकर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, स्कूलों और प्राखंड कार्यालयों में काम करते हैं। अभी भी तमिलनाडु के ग्रामीण इलाकों के स्वास्थ्य केन्द्रों पर जाने पर आपको पिछड़े समाज के ऐसे डॉक्टर मिलेंगे जिनका हाव-भाव और भाषा गांव के लोगों से मिलती जुलती है। उनसे बात करने और अपनी समस्याएं बताने में किसी गांव वाले स्त्री पुरुष को खास परेशानी नहीं होती। उत्तर भारत के राजस्थान जैसे राज्यों में ग्रामीण या जिला स्तर की स्वास्थ्य सुविधाओं का हाल एकदम अलग है। एक तो वहाँ डॉक्टर मिलते नहीं और अगर मिलें भी तो वे महिलाओं से तिरस्कार की भाषा में बात करते हैं, गांव के मरीज़ों को हाथ लगाने से बचते हैं। उनको गंदा, बेवकूफ और असभ्य बताने से नहीं चूकते।

अगर ग्रामीण और कस्बाई पृष्ठभूमि के डाक्टर हों तो वे विशेषज्ञता या विदेशी डिग्री लेने के चक्कर में ज्यादा समय नहीं गंवाते। उनके पास शहर में अथवा क्लिनिक या नर्सिंग होम शुरू करने के लिए साधन नहीं होता। उनके सामने सामान्य प्रैक्टिस करने या सरकारी नौकरी में जाने का ही विकल्प होता है। गांव है, और कस्बाई पृष्ठभूमि वाले ज्यादातर डाक्टर सरकारी नौकरी में ही जाना चाहते थे।

तमिलनाडु में पिछड़े समुदायों की लड़कियों ने भी पढ़ाई लिखाई-खासकर डॉक्टरी में काफी तरक्की है। उनके लिए सरकारी नौकरियों पाना आसान है क्योंकि आरक्षण है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर नियुक्त काफी सारी महिला डॉक्टर ऐसी ही हैं। हाल के एक अनुमान के अुनसार राज्य में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर तैनात डॉक्टरों में महिलाओं का अनुपात 60 फीसदी तक है। महिला डॉक्टर होने से महिलाएं ज्यादा आसानी से अपनी समस्याएं उनको बता सकती हैं। इसकी तुलना राजस्थान से करने पर एकदम अलग स्थिति दिखती है क्योंकि वहां ज्यादातर डॉक्टर पुरुष है और औरतें उनसे अपनी समस्याएं बताने में हिचकती हैं।

डॉक्टर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर जाएं, उपस्थित रहें इसके लिए तमिलनाडु सरकार ने वहां की नियुक्ति को कई अतिरिक्त फायदे देकर ज्यादा आकर्षक बना दिया है। उन्हें कुछ खास स्थितियों में प्राइवेट प्रैक्टिस करने की भी इजाजत है। फिर ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्रों पर काम करने का तीन साल का अनुभव रखने वालों को ऊपरी पदों या 20 फीसदी आरक्षण मिलता है। विशेषज्ञता और उच्च शिक्षा में दाखिलों में भी उनको लाभ मिलता है। फिर उनकी नियुक्ति क्षेत्रीय आधार पर होने से डॉक्टरों को ज्यादा दूर की पोस्टिंग मिलने का डर भी नहीं होता। मेडिकल और दंत चिकित्सा महाविद्यालायों में कुछ सीटें ग्रामीण पृष्ठभूमि के लड़के-लड़कियों के लिए आरक्षित हैं। जिन परिवार में पहले कोई स्नातक न हो उनके बच्चों की मेडिकल पढ़ाई का सारा खर्च राज्य सरकार उठाती है।

निश्चित रूप से तमिलनाडु में स्वास्थ्य के क्षेत्र में जो सुधार दिखाई देता है उसकी अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। इसमें समाज सुधार आंदोलनों की अपनी भूमिका है पर इसमें सरकार की चौकसी की भी कहीं भूमिका है। स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ सभी को, खासकर समाज के गरीब और कमजोर वर्ग के लोगों को मिले इसके लिए सरकार पूरी तरह चौकस है और स्वास्थ्य केन्द्रों पर जाने पर इसे कोई भी महसूस कर सकता है।

सहयोग – लीला विसारिया

व्यवहार करता है और गरीब ग्रामीण मरीजों से दूरी बरतता है।"

तमिलनाडु के अधिकांश बच्चे दसवीं तक की पढ़ाई पूरी करते हैं। जबकि अन्य राज्यों के एक तिहाई बच्चे पांचवीं तक आते-आते पढ़ाई छोड़ देते हैं। (देखें चार्ट 2.5 और 7.5) राज्य के जातिगत और लैंगिक सम्बन्धों में भी एकदम बदलाव आ गया है। अनेक अध्ययनों में

यह बात सामने आई कि अपने मुद्दों पर तमिलनाडु की औरतें ज्यादा आजादी से फैसले लेती हैं। ये चीजें एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं – औरतों की शिक्षा उन्हें सशक्त बनाती है जबकि औरतों का सशक्तीकरण शिक्षा और बाल विकास के मामलों में बहुत लाभ करता है। तमिलनाडु में एकीकृत बाल विकास सेवा योजना की सफलता इसी वृहत्तर सामाजिक सन्दर्भ में आई और अब यह उसे भी ताकतवर कर रही है। अगले हिस्से में हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

7.2 बाल विकास सेवाओं का फर्क

तमिलनाडु में एकीकृत बाल विकास सेवा योजना की अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति की चर्चा पहले के अध्यायों में होती रही है। चार्ट 7.2 में इसके और प्रमाण दिए गए हैं। हम ढांचागत सुविधाओं पर नजर डालें या आंगनवाड़ी आने वाले बच्चों की उपस्थिति दर पर, स्कूल की शिक्षा की क्वालिटी पर गौर करें या टीकाकरण की दर या माताओं की राय पर फोकस सर्वेक्षण में आए अन्य राज्यों की तुलना में तमिलनाडु कहीं आगे नजर आता है – खासकर उत्तर के राज्यों में तो बहुत आगे। असली उपलब्धि का सबसे बड़ा प्रमाण है कि तमिलनाडु की 96 फीसदी माताओं को यह योजना अपने बच्चों के लिए कल्याणकारी लगती है और उनमें आधी तो इसे 'बहुत महत्वपूर्ण' का तमगा भी देते हैं।

तमिलनाडु में इस योजना के अनुभव का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है इसके पक्ष में हुई पहल और कल्पनाशील प्रयोग। अनेक दूसरे राज्यों के विपरीत तमिलनाडु ने इस योजना को 'लपक' लिया, उसमें पर्याप्त वित्तीय, मानवीय और राजनैतिक संस्था धन लगाए, जबकि अन्य राज्यों ने इसे केन्द्र से आई एक योजना मानकर उसे जैसे-तैसे लागू करने का कर्मकांड भर माना। अगर उत्तर भारत के राज्यों की आंगनवाड़ियां रोज औसतन तीन घंटे खुलती हैं तो तमिलनाडु में यह रोज छह घंटे खुलती हैं। तमिलनाडु की आंगनवाड़ियों में 0.5 उम्र समूह के बच्चों की उपस्थिति जितनी ज्यादा है वह बताती है कि वहां नन्हें शिशुओं के लिए बालवाड़ियां समेत अन्य सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। (चार्ट 7.2) तमिलनाडु में कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने के लिए बहुत अचछे कार्यक्रम और सक्रिय प्रशिक्षित टोलियां बनाई गई हैं। स्वास्थ्य विभाग से मिलकर भी प्रशिक्षण का प्रयोग चलता है तो आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को नियमित रूप से 'रिफ्रेशर' प्रशिक्षण भी मिलता है। योजना के अधिकारी एक-दूसरे के यहां जाकर वहां के अनुभवों का लाभ लेते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि बुनियादी सुविधाओं के मामले में तमिलनाडु की स्थिति मुल्क

चार्ट : 7.2. तमिलनाडु का अलग रूप

	तमिलनाडु	फोकस वाले अन्य राज्य
आंगनवाड़ियों का प्रतिशत जिनके पास है :		
अपनी इमारत	88	22
रसोई	85	29
भंडार की सुविधा	88	50
मैडिकल किट	81	23
शौचालय	44	15
आंगनवाड़ी के खुलने का औसत समय (माताओं के अनुसार)	6½ प्रतिदिन घंटे	3½ प्रतिदिन घंटे
नियमित आने वाले बच्चों का (%) अनुपात[a]		
उम्र 0-3 वर्ष	59	19
उम्र 3-6 वर्ष	87	60
प्रतिशत अनुपात माताओं का मानना था कि :		
आंगनवाड़ी में स्कूल-पूर्व शिक्षा दी जाती है	89	42
आंगनवाड़ी वाली बहन जी मन लगाकर काम करती हैं	67	45
आंगनवाड़ी कार्यकर्ता उनके घर भी आई थी	58	26
पिछले गर्भ के समय कम से कम एक बार चेकअप कराने वाली महिलाओं का अनुपात[b]	100	65
पूरे टीके लगवा चुके बच्चों का (%) अनुपात	71	43
आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को प्रशिक्षण मिलने के बाद की औसत अवधि	6	30
पिछले ती महीनों से वेतन न पाने वाली आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का (%) अनुपात	0	17

[a] *जिनके बच्चों के नाम स्थानीय आंगनवाड़ी में दर्ज थे।*

[b] *पिछले 12 महीनों में बच्चे जनने वाली औरतों का जवाब।*

स्रोत : फोकस सर्वेक्षण 2004, साथ ही देखें अध्याय 4 के चार्ट 4.1 तथा 4.2.

बाक्स 7.4. तमिलनाडु की जीवन्त आंगनवाड़ियां

"हे प्रभु आनन्द दाता, ज्ञान हमको दीजिए, शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।"
ठीक दस बजे गोल घेरे में खड़े होकर इस प्रार्थना के साथ बच्चे आंगनवाड़ी की अपनी दिनचर्या शुरू करते हैं। अगले पांच घंटों में उन्हें खेल-खेल में पढ़ना सीखना सिखाया जाएगा, अच्छा पोषणयुक्त भोजन मिलेगा, दोपहर में थोड़ा विश्राम करेंगे और फिर अपनी माताओं के साथ घर लौट जाएंगे। माताओं को भी इतनी देर तक अपने बच्चों की देखरेख से मुक्त करती हैं, वे काम के समय आंगनवाड़ी को लेकर बहुत उत्साहित रहती हैं।

प्रार्थना के तत्काल बाद व्यायाम और इसके साथ-साथ गाए जाने वाले गीत-तुकबन्दियाँ, सिर्फ इसी वक्त बच्चे आंगनवाडी वाली बहनजी के कहने के अनुसार काम करते हैं। इसके बाद 'पढ़ाई' शुरू होती है। पर बच्चों को यह बोझ नहीं लगता। उनके लिए यह भी एक बड़ा खेल ही है।

शिक्षिका को भी स्कूल पूर्व शिक्षा के लिए प्रशिक्षण मिला हुआ है। वह खेलने वाले अंदाज में ही निर्देश भी देती है। जिस बार हम गए थे उस पखवाड़े की पढ़ाई का विषय था 'फूल', इसको लेकर तरह-तरह के खेल चल रहे थे। उसने रंगे हुए कार्डों में खेल करवाने से पढ़ाई शुरू की। बड़े बच्चे फूलों का नाम भी जानते थे। फिर बच्चे फूलों का जोड़ा लगाने, चेहरे पर फूल वाले मुखौटे लगाकर उनका नाम बताने, फिर जमीन पर बने फूलों पर चलने उछलने और कमल तथा मधुमक्खी की कहानी सुनने में जुटे।

इन साधारण दिखने वाले कामों के पीछे काफी सोच और बुद्धि लगी थी। हर खेल 3-6 वर्ष के बच्चों को तुलना, पहचान, बताने वाली भाषा में अभिव्यक्त करना सिखाने के लिए बनाया गया हैं। हर पखवाड़े बच्चों को फूल, फल, वाहन, जानवर जैसी एक-एक चीज के बारे में सिखाया पढ़ाया जाता है।

जब यह चल रहा था तब आंगनवाड़ी सहायिका भोजन तैयार करने में व्यस्त थी। बच्चों को परोसने के पहले वह खुद चखकर देखती है और शिक्षिका से भी चख लेने के लिए कहती है। स्टील के एक साफ डिब्बे में भी थोड़ा खाना रख दिया जाता है। जिससे 'फूड प्वाइज़निंग' की स्थिति में उसकी जांच हो सके। बच्चे बारह बजे हाथ-मुंह धोकर खाने आ जाते हैं। वहां उन्हें पांत में बैठाया जाता है। और साफ बरतनों में भोजन दिया जाता है। जब खाना परोसा जा रहा था तब बच्चे सहायिका की ओर देख रहे थे कि वह कब कहेगी और वे खाना शुरू कर देंगे। उन्हें सभी के लिए खाना बंट जाने और प्रार्थना कर लेने तक रुकने को कहा जाता है। ये छोटी-छोटी बातें बच्चों को दुनियादारी के तौर तरीके सिखाने में काफी समय तक मददगार होती हैं। आंगनवाड़ी में बच्चे कक्षा में एक दूसरे से दोस्ती बनाते हैं उनकी सामाजिकता और भोजन में साझा करने का काम भी विकसित होता है।

भोजन पर्याप्त स्वादिष्ट और पौष्टिक था। सांभर में दाल के साथ ही हरी मजेदार सब्जियां और गाजर भी पड़े थे। शिक्षिका ने हमें बताया कि अक्सर किसी न किसी किस्म का पालक डाला जाता है क्योंकि यह आयरन का सबसे अच्छा स्रोत है और इससे रक्तल्पता दूर होती है। तमिलनाडु की बाकी सारे आंगनवाड़ियों की तरह इस आंगनवाड़ी की अपनी बाड़ी थी जिसमें टमाटर और कई अन्य सब्जियां लगी थीं। सहायिका ने बहुत गर्व से बताया कि बच्चे अपनी बाड़ी की सब्जियां खायेंगे।

भोजन के बाद जब शिक्षिका ने बच्चों को आराम करने के लिए भेज दिया तब भी हम उससे बाते करते रहे। उसने बताया कि एक या दो घंटे आराम करने के बाद बच्चे कुछ देर खेलते हैं और फिर तीन बजे के आसपास घर चले जायेंगे। कामकाजी माताओं के लिए यह व्यवस्था अतिरिक्त आकर्षण का कारण है क्योंकि आंगनवाड़ी के चलते उन्हें दिन में काफी समय तक बच्चों की देखरेख के झंझट से मुक्ति मिल जाती है।

शिक्षिका का काम तीन बजे खत्म नहीं हुआ। उसे कुछ गर्भवती महिलाओं के घर जाकर उन्हें परामर्श देना था। किसी दिन उसे 'पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा' पर महिलाओं की कक्षा लेनी होती है तो कभी नवजात बच्चों का वजन, लंबाई वगैरह लेना। अक्सर उसका समय पाठ्यक्रम के अगले हिस्से के लिए खेल तैयार करने में बीतता है।

जब हम अपनी यात्रा समाप्त करके लौट रहे थे तब हम इसी पर चर्चा और हैरानी जता रहे थे कि इस महिला का काम कितना बड़ा और महत्वपूर्ण है। वह गांव की दसवीं पास लड़की थी जिसे बाद में इस काम का प्रशिक्षण मिला था। उसे बहुत कम खर्च; काफी धीरज और श्रम के साथ बच्चे को स्कूल जाने लायक बनाना और स्वस्थ पारिवारिक जीवन का आधार तैयार करना था। जब हम वहां से बाहर निकले तो पास के स्कूल में भी छुट्टी हो गई थी और बच्चे बाहर आ रहे थे। शिक्षिका ने एक बच्ची की तरफ इशारा करते हुए बताया, "यह पहले यहीं थी और अब स्कूल चली गई है, स्कूल की अध्यापिकाएं बताती हैं कि आंगनवाड़ी से निकले अधिकांश बच्चों की तरह इसका प्रदर्शन भी काफी अच्छा है।" उसकी आवाज में गर्व और लगन का भाव था और हम उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

सहयोग - एस. विवेक

के अन्य राज्यों से अलग नहीं है। इस मामले में भारत सरकार ने जो दिशा-निर्देश दिए हैं, तमिलनाडु में उनका पालन हुआ है। पर तमिलनाडु में इस काम में विचारों और कल्पनाशीलता में काफी फर्क आ गया है। और उसी से इसका कामकाज एकदम बदल गया है। तमिलनाडु में इस योजना के हर हिस्से को लागू करने में काफी कल्पनाशीलता और सोच-विचार दिखाया गया है और फिर उसमें पर्याप्त संसाधन भी लगाए गए हैं इस अध्याय के आगे के हिस्सों में योजना की सेवा के सन्दर्भ में इसी बात को स्पष्ट किया गया है।

बाक्स 7.5. आंगनवाड़ियों में खेल

तमिलनाडु की आंगनवाड़ियों में बच्चे जो-जो खेल खेलते हैं उन्हें छह वर्ष के बच्चों में सीखने का कौशल विकसित करने के लिए बहुत सोच समझ कर तैयार किया गया है। फोकस के एक सर्वेक्षणकर्ता ने कोचीकुरम की एक आंगनबाड़ी में होने वाले खेलों के बारे में अपनी राय कुछ इस तरह रखी। दौरा फूल वाले सप्ताह में हुआ जब खेलों का मुख्य विषयवस्तु फूल था।

जोड़े ढूंढों : विभिन्न किस्म की तस्वीरों के जोड़े को आपस में मिला दिया जाता है। फिर बच्चों से उनमें से जोड़ा ढूंढ़ने को कहा जाता है। हमने पाया कि थोड़े ही समय में अपेक्षाकृत बड़े बच्चे सभी फूलों के नाम सीख गए। जैसे वे कह रहे थे, "यह है कमल का जोड़ा, इसे अलग रखो।"

फूल को छू कर जानों : बच्चों को आमने सामने पांत में बैठा दिया जाता है। एक पांत के हर बच्चे के आगे आंगनवाड़ी वाली बहन जी किसी फूल के नाम का एक-एक अक्षर लिखती जाती हैं। फिर वह एक बच्चे की आंख बांधकर कहती हैं, "फूल, फूल, चमेली के फूल, मुझे आकर छुओ।" जिस बच्चे के आगे 'च' लिखा था वह आकर आँख पर बंधी पट्टी वाले बच्चे की नाक छूती है और वापस अपनी जगह पर जाकर बैठ जाती है। फिर आँख खोलकर उस बच्चे से कहा जाता है कि जिसने उसे छुआ है उसका नाम बताओ, बच्चे खेल में पूरा मजा ले रहे थे। बहन जी भी हर बच्चे की आंख बंद करने से लेकर पूरे खेल में अब भी जुटी थीं। छोटे बच्चों को व्यक्ति और अक्षर मनवाने में दिक्कत हो रही थी लेकिन बड़े बच्चे आसानी से ऐसा कर लेते थे।

गोल घेरे में दौड़ो : इस खेल को बच्चे सबसे ज्यादा पसंद करते हैं। बहन जी एक बड़े घेरे में तीन फलों की तस्वीर बनाती हैं और घेरे को तीन हिस्सों में बांट देती है। तीन बच्चों को घेरे के बाहर-बाहर दौड़ने को कहा जाता है जबकि बाकी बच्चे तालियां बजाते रहते हैं। जैसे ही ताली बजना बंद होती है दौड़ने वालों को जल्दी से जल्दी एक फूल की तस्वीर के ऊपर जाकर खड़ा होना होता है। फिर बच्चे को जिस पर वह खड़ा होता है उस फूल का नाम और उसके फूलने की जगह बतानी होती है। कहना न होगा कि हर बच्चे की अपनी पसंद के फूल मिलते हैं, जिन पर वह खड़ा होना चाहता है।

फूलों में रंग भरो : आंगनवाड़ी वाली बहनजी ज़मीन पर रेखाओं के ज़रिए फूल बनाती हैं। (ज़बरदस्त रफ्तार से)। फिर वह कुछ रंगीन पत्थर निकालती हैं। ये पत्थर बच्चे ही लाते हैं, जिन्हें वह अलग-अलग रंगों से रंग देती है। फिर बच्चे फूल के रंग वाले पत्थर सजाकर उस चित्र को रंगने का प्रयास करते हैं, यह जबरदस्त फूल बनता है – बच्चों का खेल देखना और भी अच्छा लगता है।

सीढ़ी का खेल : दो पांत और पांच खानों वाली एक सारणी जमीन पर खींची जाती है। एक बाजार में अलग-अलग फूल बनाए जाते हैं और उसमें सामने दूसरी पांत के खानों को खाली रखा जाता है। फिर बच्चा हर खाने में कूद कर जाता है। और वहां फूल का नाम लेता है।

मुखौटा : बच्चों को विभिन्न फूलों वाले मुखौटे पहनाए जाते हैं और उसे मुखौटे वाले फूल के नाम से अपनी पहचान बताने को कहा जाता है।

फूलों से खेलो : तमिलनाडु में लड़कियाँ घर से निकलते हुए अपने बालों में गजरा जरूर लगतीं हैं या सीधे फूल खोंस लेती हैं। उस दिन बच्चियों ने कई तरह के फूल लगाए थे जिन्हें बहन जी ने चुनकर रखा था। फिर बच्चों को घेरे में बैठाकर उनसे हर फूल के नाम, उसके रंग और गंध के बारे में पूछा जा रहा था। वह कैसा लगता है – मुलायम या कठोर, यह भी पूछा जा रहा था।

किस्सा कहना : बहन जी ने बच्चों को एक घेरे में जमा किया। उन्होंने तख्ती पर कमल का फूल, रानी मधुमक्खी और छोटी मधुमक्खियां बना रखी थीं। वह जादूगर की तरह इन कार्डों को फेंट रही थीं। और फिर कहानी सुनाती थीं। रानी मधुमक्खी छोटी मधुमक्खी से कहती है कि मेरे बिना साथ के कहीं भी नहीं जाओ। फिर वह खाना जुटाने जाती है। जल्दी ही छोटी मधुमक्खियों को कमल में शहद का आनन्द आने लगता है। तभी एक बच्चा चिल्ला पड़ता है, "बहन जी, बहन जी, मैंने कल ही शहद खाया था पर वह कमल का शहद नहीं था।" कहानी जारी रहती है। छोटी मधुमक्खी कमल का शहद खाने चल देती है और इतना शहद पी लेती है कि उसे वहीं नींद आ जाती है। शाम हो जाती है और कमल अपनी पंखुड़ियों को समेट लेता है। कहानी में जब यह ब्यौरा आता है तो खिले कमल की जगह बंद कमल वाला कार्ड सामने आ जाता है। बहन जी पूछती हैं, "फिर क्या हुआ?" बच्चे एक साथ बोल पड़ते हैं, "छोटी मधुमक्खी फूल के अन्दर ही बंद हो गई है?" घर लौटने पर जब रानी मधुमक्खी को अपना बच्चा नहीं मिला तो वह चिंतित हो गई और उसने बेचैनी में हर जगह उसकी तलाश की। छोटी मधमक्खी की नींद खुल गई थी। वह बाहर नहीं निकल सकी। दोनों रात भर रोते रहे। सुबह जब फूल फिर से खिला तो छोटी मधुमक्खी बाहर आई और मां से मिल सकी। इसके बाद बहनजी कई सवाल पूछती हैं, "इससे हमें क्या सीख मिलती है।", "कि तुम भी अपनी मां के साथ हुए बिना बाहर न निकलना।" वह यह भी पूछती हैं कि तुम्हें पता है कि कमल कहां खिलता है। एक बच्चा बताता है, "तालाब में, पर मेरे घर के पास जो तालाब है उसमें तो कमल नहीं निकलता।" बच्चे कहानी वाले सत्र को खूब पसंद करते हैं।

इसमें से अधिकांश खेलों के बारे में प्रशिक्षण के दौरान बताया जाता है या तमिलनाडु में आंगनवाडी कार्यकर्ता अक्सर नए खेल के विकसित कर लेती हैं, उनके द्वारा कविता, कहानी पर खेल तैयार करने के अनेक किस्से हैं। एक कार्यकर्ता ने "कौन बनेगा करोड़पति" जैसा खेल बनाया था। इसमें एक बच्चा अमिताभ बच्चन बनकर सवाल पूछता है (जो कई चीजों के ब्यौरों के बारे में होते हैं।) वह चार विकल्प भी देता है। अन्य बच्चे जवाब देते हैं जिन्हें 'लॉक' किया जाता है। खेल के आखिर में शो चलाने वाला बच्चा 'चेक' भी देता है।

सहयोग – एस. विवेक

स्कूल पूर्व शिक्षा

तमिलनाडु में एकीकृत बाल विकास सेवा योजना की एक प्रमुख विशेषता स्कूल-पूर्व शिक्षा की सफलता है। वहां आंगनवाड़ियों को 'दलिया केन्द्र' की जगह 'बेबी स्कूल' कहना ही इस बात का प्रमाण है। इस तरह के अनेक दूसरे हल्के संकेत भी यही बताते हैं। जैसे जब सर्वेक्षण के दौरान उत्तर प्रदेश की एक आंगनवाड़ी में स्कूल-पूर्व शिक्षा के बारे में सवाल पूछा गया तो जवाब था, "इस उम्र के बच्चों को क्या पढ़ा सकते हैं?" तमिलनाडु की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ऐसा जवाब देती, इसकी सम्भावना नहीं है। वहां की एक कार्यकर्ता ने सर्वेक्षणकर्ताओं को बताया कि इसी उम्र में बच्चों की पहचान, तुलना, भाषा और आसपास की चीजों का ज्ञान विकसित होता है। इन्हीं गुणों को विकसित करने वाले खेल बनाए गए हैं और बच्चों में मेल-जोल को बढ़ावा दिया जाता है। यह पूरा ही तरीका खेल-खेल में बातें सिखाने का है।

इस बात का भी पूरा खयाल रखा जाता है कि किस उम्र के लिए कौन सी चीज उपयुक्त होगी। बच्चे अभी संकेतों को ही समझने का कौशल विकसित कर रहे होते हैं। इसलिए उनको अक्षर ज्ञान नहीं दिया जाता। उन्हें अपने आसपास की चीजों में से (फूल, फल, वाहन वगैरह) किसी एक चीज की जानकारी हर पखवाड़े दी जाती है। इसी के इर्द-गिर्द कई तरह के खेल विकसित किए गए हैं। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को बच्चों को सिखाने और शैक्षिक सामग्री बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता हैं (बाक्स 7)। आंगनवाड़ी सहायिका को भी इस काम में सहायता का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रखंड स्तर के प्रशिक्षकों के दौरे और एक रंगीन पत्रिका के ज़रिए भी उनके इन कौशलों को लगातार नया किया जाता है।

कई और तरह के दिलचस्प प्रयोग भी इस मामले में होते हैं। रंगीन कार्ड और आंगनवाड़ी की दीवारों पर रंगीन तस्वीरें बनाने का प्रयोग आम है। फिर परिसर के एक किनारे 'रेल की पट्टी' बना दी जाती है जिसमें छोटे-छोटे कार्ड और शैक्षिक सामग्री को ऐसे लगाया जाता है कि हर किसी की नजर पड़े। इस सामग्री को हर दिन सीखने वाले विषय के हिसाब से बदलकर लगाया जाता है। इन गतिविधियों में बच्चों और उनके माँ-बाप की भी भूमिका होती है। अनेक आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं ने बताया कि वे बच्चों को अंग्रेजी कविताएं याद कराती हैं। क्योंकि उनके माँ-बाप भी यही चाहते हैं और शिक्षाशास्त्री तो नन्हें शिशुओं को पढ़ाने से मना करते हैं, पर माँ-बाप के दबाव में ही आमतौर पर बच्चों को वर्णमाला का ज्ञान कराना शुरू कर दिया जाता है। अब माँ-बाप के दबाव से ऐसे बदलाव को बहुत उचित नहीं कहा जा सकता या इससे यह तो जाहिर होता ही है कि इस व्यवस्था में संचालन में उनकी भी सक्रिय भूमिका है। फिर बच्चे अपनी पसंद के खिलौने से खेलना पसंद करते है। सो आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को उनकी पसंद का भी ख़याल रखना पड़ता है।

भोजन और पोषाहार

बच्चों के पोषाहार के मामले में मददगार दखल देने के मामले में भी इस योजना ने काफी सफलता पाई है और तमिलनाडु की राजनीति में बाल पोषाहार के प्रति स्पष्ट रुझान ने इसमें मदद की है। पूरक पोषाहार कार्यक्रम के तीन हिस्से हैं : आंगनवाड़ी आने वाले बच्चों के लिए ताजा भोजन देना, बच्चों को रोजाना तैयार खाना देना और तीन वर्ष से कम आयु के शिशुओं गर्भवती माताओं और लरकोरी औरतों को पोषक तैयार आहार की आपूर्ति कराना। फिर दूध छोड़ने वाले बच्चों के लिए विशेष आहार का भी इंतजाम है क्योंकि उनकी जरूरतें अलग होती है। बच्चों के विकास पर नियमित निगरानी के क्रम में मिले कुपोषित बच्चों के लिए अलग से राशन देने का इंतजाम भी है।

इन कामों में आंगनवाड़ी सहायिका की भूमिका प्रमुख है। वह रोज सुबह सात बजे से 'सत्तू मानु' (पोषक मिश्रण) को उबालती है, उनका लड्डू बनाती है और उन सभी घरों में बांट आती हैं जहां तीन वर्ष से कम के बच्चे हों। वापस आकर वह उन बच्चों के लिए दोपहर का भोजन बनाना शुरू करती है जो आंगनवाड़ी आते हैं। इसमें भी हफ्ते के हर दिन के लिए आलू, किसी दिन हरा चना, किसी दिन कोई और सब्जी बनती है। कई दिन चालव और सांझा या पुलाव जैसी चीज भी दी जाती है। अगर बच्चों की दिलचस्पी किसी और व्यंजन में हुई तो वह भी तैयार होता है।

तमिलनाडु की अनेक आंगनवाड़ियों में सब्जी की अपनी क्यारियां बनी हुई हैं और आंगनवाड़ियों ने बड़े शान से इन्हें सर्वेक्षण करने वालों को दिखायाा भी। ये सब्जियाँ बजट में आई सब्जियों से अलग होती हैं। अक्सर स्थानीय लोग भी मीठा पोंगल और कोई अच्छी चीज बनाकर देते हैं या यहीं आकर तैयार कर देते हैं। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को इस बात के लिए अधिकारियों की तरफ से प्रोत्साहित

बाक्स 7.6. तमिलनाडु का दो कार्यकर्ता मॉडल

अपने प्रदेश में कुपोषण और अल्प पोषण में मामलों को काफी कम कर लेने का तमिलनाडु के शानदार रिकार्ड के लिए वहां की आंगनवाड़ियों में दो कार्यकर्ता रखने वाला मॉडल काफी हद तक मददगार है। पच्चीस वर्ष पहले तमिलनाडु में कुपोषण का स्तर मुल्क के अनेक दूसरे राज्यों जितना ही था। आज छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों में तीसरे और चौथे स्तर का कुपोषण तो लगभग पूरी तरह दूर किया जा चुका है और दूसरे दर्जे के कुपोषण के मामले भी बहुत कम मिलते हैं। सिर्फ पहले दर्जे का कुपोषण अभी भी दिखता है। पर यह हुआ कैसे?

1980 में तमिलनाडु ने एकीकृत पोषण योजना विश्व बैंक के सहयोग से शुरू की। इस लक्षित योजना में दो वर्ष से कम उम्र के सबसे कमजोर अवस्था वाले बच्चों को चुनकर उनको रोज पोषक आहार खिलाया जाता था। माताओं को बच्चों के लिए पोषण आहार बनाने का परामर्श दिया गया और बच्चों के स्वास्थ्य पर नियमित रूप से नजर रखी गई। माताओं को भी पूरक पोषाहार दिया गया। जैसे ही बच्चे के स्वास्थ्य के संकेतक सामान्य होते थे पोषाहार बंद कर दिया जाता था पर उनके स्वास्थ्य पर नजर रखी जाती थी।

चूंकि स्कूल जाने से कम उम्र के (3-6 वर्ष) बच्चों को एकीकृत बाल विकास केन्द्रों में दोपहर का भोजन (यह योजना स्कूलों में 1982 से शुरू हुई) मिलता था। इसलिए नई योजना को इस कार्यक्रम में जोड़ लिया गया। राज्य की इस विशेष योजना में भोजन मिलता रहा और कुछ स्कूल की शिक्षा भी दी जाने लगी। उधर एकीकृत बाल विकास योजना में दो वर्ष आयु तक के बच्चों को तैयार आहार बांटा जाता था। जल्दी ही राज्य भर में बच्चों की देखरेख वाले केन्द्र खोले गए जिनमें शुरू का जोर पोषाहार पर था तो कुछ का भी पढ़ाई था।

तमिलनाडु और अन्य दक्षिणी राज्यों में केन्द्र दिन में छह घंटे तक चला करते हैं – 9 बजे से 3 बजे तक या 10 बजे से 4 बजे तक। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता पर पहले से ही काफी कार्यो का बोझ होता है इसलिए उन पर अतिरिक्त काम का बोझ नहीं डाला जा सकता। ऐसे में ऐसी योजना को सफल बनाने के लिए सिर्फ उनके लिए काम करने वाले कार्यकर्ता की जरूरत महसूस की गई। इस प्रकार दो कार्यकर्ता मॉडल बना – एक के हिस्से दो वर्ष से कम के बच्चों का ध्यान रखना, उनका आहार बनाना, उनके विकास का चार्ट रखना। घर-घर जाकर माताओं और गर्भवती औरतों को परामर्श देने का काम था तो दूसरे के जिम्मे मुख्यतः थोड़े बड़े बच्चों का। पहला सामुदायिक पोषण कार्यकर्ता है तो दूसरी स्कूल पूर्व शिक्षा देने वाली शिक्षिका। कुछ बड़े केन्द्रों में दो-दो सहायक हैं।

इसी तरीके से तमिलनाडु ने बाल कुपोषण को काफी हद तक सिमटा दिया है और पूरे मुल्क के लिए एक मॉडल बना गया है। पर क्या शेष भारत उसका अनुशरण करेगा? अगर हम भूख को मिटाने के लिए गम्भीर है तो यह काम करना ही होगा। पर ऐसा लगता है कि कुछ मामलों में तमिलनाडु ही शेष भारत का अनुसरण करने लगा है। 2001 में विश्व बैंक द्वारा अनुदान बंद करने के बाद से तमिलनाडु सरकार को यह कार्यक्रम चलाने में परेशानी हो रही है। धन के अभाव में जगह-जगह दो कार्यकर्ता मॉडल को छोड़ा जा रहा है पर पोषण और शिक्षा दोनों हिसाब से इसका नुकसान बहुत बड़ा होगा।

सहयोग – मीना स्वामीनाथन

भी किया जाता है कि ये स्थानीय लोगों की भागीदारी कराऐं।

तैयार खाना खराब न हो इसके लिए कई सारी सावधानियां बरती जाती है। अधिकांश आंगनवाड़ियों के पास खाना बनाने और रखने की अच्छी जगह है। साफ पानी का अच्छा इंतजाम और अहाते के सफाई का खास ध्यान रखा जाता है। सहायिका को साफ सुथरे ढंग से और भोजन के पोषक तत्वों को नष्ट होने से बचाने वाला तरीका बताया जाता है। वह भोजन सामग्री को 'टेस्टी' बनाने के लए सदा तत्पर रहती है। कभी कभार खाना खराब होने या बच्चों को खाना न पचने की शिकायतें आई, पर ज्यादतर माँ-बाप, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिका को ऐसे मामले याद न थे।

पोषाहार सम्बन्धी परामर्श का कार्यक्रम सहायक नर्स/दाई को साथ लेकर चलाया जा सकता है। इसमें सफाई, खाना बनाने का तरीका, स्वास्थ्यकर खाद्य पदार्थों से लेकर अन्य जरूरी बातों की जानकारी दी जाती है। इसे "कुपोषण मुक्त तमिलनाडु" कार्यक्रम से बल मिल रहा है। इस नीति का उद्देश्य सन 2020 तक" "हर तरह से मानव कुपोषण को दूर करके दुनिया के सबसे उन्नत मुल्कों के स्तर तक पहुंचाना है।" इस नीति में कुपोषण दूर करने के लिए खान-पान की आदतों में बदलाव और पोषण तथा स्वास्थ्य शिक्षा पर जोर देने का कार्यक्रम है।

एकीकृत बाल किवास सेवा योजना के पोषाहार कार्यक्रम में तमिलनाडु की सफलता का एक और पक्ष उल्लेखनीय है – हर आंगनवाड़ी में दो कार्यकर्ता रखने का प्रयोग। जैसा कि अध्याय पाँच में कहा गया है कि तीन वर्ष से कम आयु के शिशुओं पर ज़्यादा ध्यान दिए बगैर बाल पोषण के मामले में सफलता पाना मुश्किल है। चूंकि एक ही आंगनवाड़ी कार्यकर्ता दोनों उम्र समूहों के बच्चों के

पोषण का पर्याप्त ख़याल नहीं रख सकती इसलिए एक और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता आ जाए तो यह काम आसान हो जाता है। तमिलनाडु एकीकृत बाल पोषण कार्यक्रम-2 में दो कार्यकर्ता रखने की व्यवस्था की गई है। अच्छे परिणाम देने के बावजूद यह व्यवस्था खत्म होने का खतरा है, क्योंकि तमिलनाडु की इस योजना को एकीकृत बाल विकास योजना में ही समाहित कर दिया गया है जिसमें केन्द्रीय दिशा निर्देश के अनुसार दूसरी कार्यकर्ता रखना सम्भव नहीं है। फोकस सर्वेक्षण में तमिलनाडु के जो तीन जिले आए थे उनमें सिर्फ एक में आंगनवाड़ियों में दो-दो कार्यकर्ता रखने की व्यवस्था थी।

स्वास्थ्य सेवाएं

तमिलनाडु में एकीकृत बाल विकास सेवा योजना स्वास्थ्य सेवाओं के साथ अपेक्षाकृत ज्यादा जुड़ी हुई है। टीकाकरण के अलावा भी आंगनवाड़ियों में बच्चों को स्वास्थ्य संबंधी अनेक सेवाएं दी जाती हैं और इसमें आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की भी भूमिका रहती है। गर्भवती महिलाओं और लरकोरी औरतों को स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने का काम आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और नर्स मिलजुल कर करते हैं। जैसे, बच्चा होने के तत्काल बाद आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को अस्पताल जाना और यह देखना होता है कि नवजात शिशु स्वस्थ है या नहीं और फिर उसे उनकी देखभाल संबंधी सलाह देनी होती है।

स्वास्थ्य सेवाओं में तालमेल का काम कई स्तरों पर होता है। दैनिक आधार पर भी नर्स/दाई की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के साथ मिलकर काम करना होता है। नर्स के जिम्मे भी कई काम और कई गांव होते हैं उसके आने का दिन और तारीख पहले से तय होता है। उसके पास कई सारी दवाइयां और स्वास्थ्य सम्बन्धी चीजें होती है। फिर जरूरत पड़ने पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की मदद की जाती है जो अक्सर ज्यादा दूरी पर नहीं होते।

प्राथमिक स्वास्थ्य की देखरेख का मुद्दा राज्य की राजनीति में प्रमुख है तो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के पास दवा या उपकरणों की कमी प्राय: नहीं होती। इसमें बच्चों के स्वास्थ्य की निगरानी और जरूरी सेवाएं दे पाना सम्भव रहता है। समय-समय पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर स्वास्थ्य विभाग और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं – सुपरवाइजरों की साझा बैठकें होती हैं। प्रशिक्षण कार्यकमों में भी नर्सो से लेकर स्वास्थ्य कार्मिक तक की भागीदारी रहती है। हमें यह भी बताया गया है कि इस योजना संबंधी बैठकों में अक्सर विभिन्न विभाग के सचिव दिन-दिन भर बैठते हैं। अलग-अलग विभागों के वरिष्ठ अधिकारियों की भागीदारी होने से बाकी सारी समस्याओं को चुटकी बजाते सुलझा दिया जाता है जबकि निचले स्तर पर उनको निपटाना मुकिश्ल हो जाता है।

तमिलनाडु में एकीकृत बाल विकास सेवा कार्यक्रम की सफलता को इससे जुड़े खास प्रशिक्षण कार्यक्रम को जाने बगैर ठीक से नहीं समझा जा सकता। योजना के प्रशिक्षण कार्यक्रम में जुड़े लोगों ने महसूस किया कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को लंबे-लंबे समय में प्रशिक्षण के लिए राज्य की राजधानी आना परेशानी का काम है, पर अगर उनको आने में दिक्कत है तो प्रशिक्षण ही उनके पास जा सकते हैं। इसी के चलते प्रखंड स्तर के प्रशिक्षण का कार्यक्रम बना। (अधिक विवरण के लिए देखें बाक्स 7.8)

7.3 उपयोगी माहौल और बच्चों की राजनीति

हमने देखा है कि तमिलनाडु में इस कार्यक्रम की सफलता उसके मूल स्वरूप से जुड़े न होना उसके कार्यान्वियन की कल्पनाशीलता, अतिरिक्त संसाधनों के योगदान, रचनात्मक सोच और जिम्मेदार प्रशासन के चलते हैं। ऐसे में यह सवाल स्वाभाविक रूप से उठता है, कि इस मामले में तमिलनाडु अलग क्यों है और क्या इस सफलता को कहीं और दोहराया जा सकता है। इन सवालों का पूरा जवाब देना मुश्किल है, पर कुछ उपयोगी माहौल और स्थितियों की चर्चा तो की ही जा सकती है।

इस दृष्टि से पहला उल्लेखनीय मुद्दा तमिलनाडु में सामाजिक क्षेत्र के प्रति राजनैतिक निष्ठा का है। जो निरंतर बना रहा है – खासकर पोषाहार से जुड़े कार्यक्रमों के सन्दर्भ में। सत्ता चाहे जिस पार्टी के हाथ में आए, सभी सरकारों ने सामाजिक नीतियों के मामले में एक निरंतरता बनाए रखी है। उसके लिए धन और संसाधन उपलब्ध कराए हैं। राज्य की राजनीति में कई दशकों में पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य और बाल विकास राजनैतिक प्राथमिकता के मुद्दे रहे हैं, सबके लिए राशन व्यवस्था और आंगनवाड़ियों तथा स्कूलों में बच्चों के आहर के कार्यक्रमों के ज़रिए भूख और कुपोषण के खिलाफ मुहिम चलती ही रही है। ये सभी कार्यक्रम साथ मिलकर राज्य की आबादी के काफी बड़े हिस्से

बाक्स 7.7. तमिलनाडु में सार्वजनिक स्वास्थ्य की पहल

आम लोगों, खासकर कमजोर वर्ग के लोगों को बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ देने के मामले में तमिलनाडु भारत में अन्य राज्यों में ज्यादा सफल रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र की कुछ पहलों से यह सम्भव हुआ है जिनका जिक्र नीचे किया जा रहा है।

ऊपर के स्तर पर तालमेल

अन्य राज्यों के विपरीत तमिलनाडु ने मेडिकल और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं के अलग विभाग बनाए हैं और इन दोनों का अपना-अपना निदेशालय है। इन विभागों के लोग स्वास्थ्य और परिवार कल्याण सचिव के निकट सम्पर्क रखते हुए काम करते हैं। एक दूसरे के ज्ञान, अनुभव, विशेषज्ञता और मुद्दों की समझ के मामले में सभी एक दूसरे का आदर करते हैं। स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने में आने वाली समस्याओं को दूर करने के लिए वे नियमित बैठकें करके कार्यक्रम बनाते हैं। इससे समस्या सुलझने के साथ फैसले लेने में परेशानी नहीं रहती।

दवा का प्रावधान

1994 में तमिलनाडु मेडिकल सेवा निगम के रूप में दवा खरीद और वितरण की स्वास्थ्य एजेंसी बना देने से राज्य में दवाओं और ऑपरेशन के काम आने वाले कुछ उपकरणों की आपूर्ति में बाधा नहीं आती। सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और सरकारी अस्पतालों में ये सुविधाएं उपलब्ध हैं। निगम हर केन्द्र और अस्पताल को एक-एक पास बुक दिए हुए है जिसमें इस बात का ब्यौरा रहता है कि निगम के पास उपलब्ध जरूरी दवाओं सूची में से कुछ दवाएं खरीदने पर वह कितना खर्च कर सकते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशा निर्देशों के मद्देनजर यह सूची बदलती भी रहती है। किस केन्द्र और अस्पताल में कितने मरीज आते हैं उसी हिसाब से उसे दवा खरीदने की रकम दी जाती है और इसमें नए आंकड़ों के हिसाब से बदलाव भी किया जाता है। सारी दवाएं राजधानी में बांटने की जगह राज्य के विभिन्न हिस्सों में स्थित 24 क्षेत्रीय गोदामों से बंटती है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र अपना आर्डर देने के तीन दिन के अंदर इन केन्द्रों से दवा ले सकते हैं। विभिन्न केन्द्रों और अस्पतालों की मात्रा के क्रम में हमने शायद ही किसी मरीज मां को बिना दवा के जाते देखा और दवा के लिए पैसे देते हुए किसी को भी नहीं देखा।

24 घंटे वाले प्राथमिक केन्द्र

शिशु एवं प्रजनन स्वास्थ्य कार्यक्रम के तहत तमिलनाडु सरकार के 24 घंटें सेवा देने, खासकर प्रजनन वाली के लिए पहल की। इसमें एक प्रसव केन्द्र और कम से कम तीन नर्सों वाले केन्द्र बनाने की जरूरत हुई। ऐसे प्राथमिक केन्द्रों पर आपात स्थिति में डाक्टर को बुलाने की सुविधा भी है। इस योजना का विस्तार किया जा रहा है और उम्मीद की जा रही है कि इस दशक के अंत तक सारे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर ये सुविधाएं उपलब्ध हो जाएंगी।

वैसे तो तमिलनाडु के काफी सारे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर दो-दो डॉक्टर हैं। पर अब सरकार इस व्यवस्था पर सवाल कर रही है। उसे लगता है कि प्रसव संकेत ज्यादातर छोटे-मोटे काम करने वाली प्रशिक्षित नर्स सम्भाल सकती है और मुश्किल या आपात मामलों को बड़े अस्पतालों में भेजा जा सकता है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में आने वाले डॉक्टर इसे एक साधन की तरह इस्तेमाल करके उच्चतर शिक्षा में जाते हैं या अपना धंधा शुरू कर देते हैं, पर नर्सें गांवों में जमकर रहती और काम करती हैं। फिर प्राथमिक केन्द्रों को 30 बिस्तरों वाले प्रखंड अस्पताल में बदलने में नर्सों की पदोन्नति का मार्ग भी खुलने लगा है।

हाल के अनुमानों के अनुसार तमिलनाडु में आज 90 फीसदी से ज्यादा प्रसव विभिन्न स्वास्थ्य संस्थानों में होने लगे हैं जिनमें से आधे से अधिक सरकारी हैं। देश के किसी भी अन्य राज्य में प्रसव में औरतों को सरकारी संस्थांओं से उतनी सहायता नहीं मिलती। तमिलनाडु के प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर प्रति दिन 100 से ज्यादा मरीज आते हैं जिनमें औरतों और बच्चों का अनुपात 60 से 75 फीसदी होता है। ग्रामीण इलाकों में तो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र ही मुख्यतः सेवा देती हैं। यहाँ औरतें सिर्फ बीमारी का इलाज कराने ही नहीं आतीं, अपने गर्भ की जांच और अन्य सेवाओं के लिए भी आती हैं। तमिलनाडु की लगभग सभी गर्भवती महिलाओं की प्रसव पूर्व कम से कम एक जांच तो जरूर हो जाती है जबकि 75 फीसदी से ज्यादा औरतों की चार या उसमें अधिक दफे जांच होती है।

रिकार्ड रखने का प्रभावशाली रिकार्ड

तमिलनाडु सरकार ने स्वास्थ्य सम्बन्धी रिकार्ड को रखने का सरल लेकिन प्रभावी तरीका विकसित किया है। यह काम उप केन्द्रों से लेकर ऊपर तक होता है। ग्रामीण नर्सों से बातचीत करने के बाद सरकार ने सरल रंगों वाला रजिस्टर बनाया है। प्रखंड स्तर के अस्पताल में कम्प्यूटर लगे हैं। जहां प्रशिक्षित व्यक्ति इन उप केन्द्रों तक की सूचनाएं कम्प्यूटर में भरता जाता है। चूंकि सारे आंकड़े कम्प्यूटर पर उपलब्ध हैं इसलिए विभिन्न प्रवृत्तियों और बदलावों को देखना समझना सम्भव हो गया है। और फिर नीतियों और कार्यक्रमों में जो बदलारव जरूरी लगे वह करना भी आसान हो गया है। सभी प्राथमिक केन्द्रों के आंकड़ों का मासिक ब्यौरा बनता है और सारे प्रमुख कार्यक्रमों और उनके नतीजों का चार्ट बनाया जाता है। इससे जिला स्वास्थ्य अधिकारी अपने यहां के प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के कामकाज की तुलना दूसरों से कर सकते हैं। माना जाता है कि इससे एक स्वस्थ्य प्रति प्रतिस्पर्धा की भावना विकसित होती है और उनमें अपने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की सेवाओं को सुधारने की प्रेरणा मिलती है।

सहयोग – लीला विसारिया

को अपने दायरे में ले लेते हैं। जैसे, दो वर्ष से लेकर 15 वर्ष तक का लगभग हर बच्चा दोपहर में मुफ्त भोजन पाने का हकदार है। (वरिष्ठ नागरिकों, विधवाओं और परित्यक्ताओं को भी आहार के ऐसे कार्यक्रमों का लाभ मिलता है।) जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है। सबको राशन प्रणाली के दायरे में रखने पर भी राज्य के बजट का काफी बड़ा

बाक्स 7.8. तमिलनाडु में प्रशिक्षण कार्यक्रम

अगर एकीकृत बाल विकास सेवाओं को सामाजिक बदलाव का माध्यम और आंगनवाड़ी को बच्चों को आगे के जीवन के लिए तैयार करने वाले केन्द्र के रूप में बनाना है तो आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देना एक अनिवार्यता बन जाती है। तमिलनाडु में जो कल्पनाशील प्रखंड स्तरीय प्रशिक्षण की शुरूआत हुई है वह इस मामलों में उसके रचनात्मक पहल को बताता है।

यह एक विकेन्द्रित प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक प्रखंड में एक प्रशिक्षण टोली बना दी जाती है जो निरंतर आंगनवाड़ी स्टाफ को प्रशिक्षित करती है। इस टोली में तीन महिलाएं होती हैं जो पोषण, स्कूल पूर्व शिक्षा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकार होती है, उन्हें 'ग्रेड-1 सुपरवाइजर' कहा जाता है। उनके जिम्में एक प्रखंड में स्थित 70 के 80 आंगनवाड़ियों की कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने का जिम्मा होता है। प्रशिक्षण देने के बाद वे लोग क्षेत्र में जाकर काम की स्थिति पर लोगों की राय जानने का प्रयास करती है। वे विशेष सवालों में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की मदद भी करती है। उनके काम में 'ग्रेड 2 सुपरवाइजर' भी मदद करते हैं। जिनके जिम्मे 15-20 आंगनवाड़ियों का काम होता है। इस समूह का काम प्रशिक्षण देना नहीं है पर वे 'ग्रेड-1 सुपरवाइजरों' की मदद करते है और साल भर नियमित रूप से दौरे करते हैं। फिर उनसे मिलने वाले 'फीडबैक' के आधार पर प्रशिक्षण के कार्यक्रम में सुधार किया जाता है। ये सारे प्रखंड प्रशिक्षक चेन्नई स्थित मुख्य प्रशिक्षक के दिशा निर्देश लेते हैं।

ग्रामीण जिलों में प्रखंड स्तर की टोलियां नियुक्त होती है लेकिन सात जिलों के शहरी प्रखंडों के लिए घुमंतु प्रशिक्षक नियुक्त किए जाते हैं। ये तय कार्यक्रम के अनुसार प्रशिक्षण देते हैं। इन सबके और प्रखंड टोलियों की विशेष प्रशिक्षण के लिए जिला स्तरीय तकनीकी टोलियां बनाई गई हैं यहां शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य, सेवाएं और प्रचार के चार विशेषज्ञ प्रशिक्षण देते हैं। चेन्नई के तारामणि में केन्द्रीय प्रशिक्षण केन्द्र हैं जो सारी गतिविधियों को संचालित करता है।

तमिलनाडु की विकेन्द्रित प्रशिक्षण व्यवस्था वहां की विशेषता है। राष्ट्रीय सार्वजनिक सहयोग एवं बाल विकास संस्थान ने ही प्रशिक्षण की अवधि और विषयों के मानक तय किए हैं। यह काम केन्द्रीय स्तर पर हुआ है पर राज्य के इन्हें लागू कराने का बहुत ही कल्याणशील तरीका ढूंढ़ लिया है। प्रशिक्षण के लैंगिक पहलू पर ज्यादा जोर नहीं दिया जा सकता। अधिकांश जिला प्रशिक्षण और प्रखंड स्तर के प्रशिक्षण महिला ही है। वे महिलाओं और बच्चों के मुद्दों पर बहुत संवेदनशील है। किशोरियों और नई माताओं के स्वास्थ्य और पोषण के सवाल पर भी उनमें काफी चेतना जगाई जाती हैं।

निरन्तर और सघन प्रशिक्षण का स्पष्ट लाभ हर कहीं दिखाई देता है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और उसकी सहायक अपने-अपने कार्यो में नियुक्त हैं और वे बाल विकास के मुद्दों पर भी काफी सचेत हैं। इस प्रणाली से राज्य सरकार को लगातार बदलाव करने और कई चीजों को जोड़ने में सहायता मिलती है। जैसे 2004 में राज्य सरकार ने बच्चों में विक्लांगता की खोज को प्राथमिकता बनाया और इस कार्यक्रम ने तत्काल इसमें मदद शुरू कर दी। जब फोकस की एक टीम के प्रशिक्षण केन्द्र का दौरा लिया तब वहाँ नवजात शिशु को हर तरह की जांच कर प्रशिक्षण किया जा रहा है। इससे प्राथमिकता के मामलों पर भी आसानी से जोर देना सम्भव होता है। अपने दौरों के समय आंगनवाड़ी कार्यकर्ता लगातार विक्लांगता की बात करती है और उनकी शुरू में चलने के महत्व का पता बताती है।

सहयोग – एस. विवेक

हिस्सा खर्च होता है – खासकर 1997 के बाद से जब केन्द्र सरकार ने सिर्फ लक्षित जमातों को राशन देने की व्यवस्था की है। इन कार्यक्रमों में से कई तो केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित हैं पर अक्सर राज्य सरकार भी क्वालिटी और मात्रा या आकार को ठीक करने के लिए उनमें काफी धन लगा देती है। जब राजनैतिक स्तर पर ऐसी तत्परता दिखती है तो नौकरशाही पर भी स्वाभाविक दबाव बनता है कि वह गड़बड़ न करे और अच्छे परिणाम दे।

तमिलनाडु मुल्क का सम्भवतः एकमात्र राज्य है जहां पोषण भी एक बड़ा राजनैतिक मुद्दा है। दोपहर का भोजन समेत अन्य पोषाहार कार्यक्रमों का राज्य में लम्बा इतिहास है। पर 1982 के बाद से इनके दायरे में आने वाले लोगों की संख्या काफी बढ़ गई है। हाल के एक अध्ययन के अनुसार 1981-82 से 1994-95 के बीच पोषण कार्यक्रमों का बजट सौ गुना बढ़ गया और सन् 2000 तक तमिलनाडु अकेले पोषाहार के कार्यक्रमों पर जितनी रकम खर्च कर रहा था उतना बाकी सभी राज्य मिलकर नहीं करते थे। दोपहर का भोजन सबके लिए उपलब्ध कराने में राजनैतिक इच्छाशक्ति की महत्त्वपूर्ण

भूमिका इस बात में और बड़ी लगती है कि, मीडिया, आर्थिक विशेषज्ञों, विशेष सलाहकारों और अन्य जानकार लोगों ने इसका विरोध किया। (हेरिस वॉइट 2004, प्रताप, 2003) इसे सिर्फ राजनैतिक जिद से लागू किया गया और इसी के चलते ये केन्द्र सरकार, अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों और दूसरों की मदद के वगैर जारी रख सकीं।

सत्ता में चाहे जो पार्टी आए, इन योजनाओं को चलाने के प्रति राजनैतिक वचनबद्धता का बने रहना यह बताता है कि यह काम किसी खास नेता अथवा नेताओं की दृष्टि या सोच के चलते होने की जगह जनता की मांग या इच्छा को देखते हुए करना पड़ा है। सबको दोपहर का भोजन योजना का श्रेय अक्सर एल. जी. रामचन्द्रन को दिया जाता है, पर बाद की सरकारों ने न सिर्फ इसको चालू रखा बल्कि इसमें सुधार भी किया और यह राज्य की चुनावी राजनीति में मुख्य मुद्दा बन गया। इसलिए राजनैतिक इच्छा शक्ति और किसी खास नेता की उदारता या सार्वजनिक हितैषी, दोनों के बीच भेद को खत्म करने की जरूरत नहीं है। अन्य जगहों की तरह ही तमिलनाडु के नेताओं पर भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, मौकापरस्ती और रंगीन मिजाजी के आरोप लगते हैं। (और कई बार वे दोषी भी पाए गए हैं।) एन.जी. रामचंन्द्रन का शासन भी इन चीजों से मुक्त नहीं था। लेकिन राज्य में सामाजिक सेवाओं में उनके दौरे में और बाद के शासनों में भी काफी विस्तार हुआ है और इसने वहां सामाजिक बदलाव भी किए हैं।

राजनैतिक इच्छाशक्ति या निष्ठा का मामला सिर्फ संसाधन जुटाने में काफी आगे आने तक जाता है। यह जरूरी है कि संसाधनों का अच्छा उपयोग हो और जवाबदेही सुनिश्चित रहे। जैसाकि अनुराधा राजीवन के पास है कि, ऐसा हो नहीं सकता कि तमिलनाडु में कोई आंगनवाड़ी केन्द्र रह जाए और पूछताछ न हो। आंगनवाड़ियों के कामकाज की निगरानी सिर्फ सुपरवाइजर ही नहीं करते, स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों, चुने हुए प्रतिनिधियों और स्थानीय मीडिया की भी उनपर नजर रहती है। इसके उलट उत्तर भारत में आंगनवाड़ियां लंबे-लंबे समय तक बन्द रह सकती हैं और कोई पूछने वाला नहीं होता। 'इसमें क्या होने वाला है' का भाव भी माँ-बाप को अपनी शिकायत करने से रोकता है, अधिकारी स्तर पर उपेक्षा और लोगों की तरफ से जड़ता, एक-दूसरे को मजबूत करते हैं।

यह कहने की भी खास जरूरत नहीं हैं कि जवाबदेही के सवाल को भी सिर्फ छोटे-बड़े वाले हिसाब में नहीं समझा जा सकता। तमिलनाडु में आंगनवाड़ी हो या पोषाहार के अन्य कार्यक्रम लोगों की चौकसी और मांग ही राजनेताओं को भी मजबूर करती है कि उनकी चिन्ताओं पर ध्यान दें। जैसे, 2004 में अन्नाद्रमुक संसदीय चुनाव हार गई तो मुख्यमंत्री जयललिता ने अपनी और पार्टी की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए जो पहला कदम उठाया, वह था स्कूलों और आंगनवाड़ियों के पोषाहार कार्यक्रम में फिर से अंडे बांटना शुरू करना। फोकस सर्वेक्षण में एक व्यक्ति ने बड़े शान से कहा, "हमने अपनी वोट की ताकत से अंडा वापस पा लिया ('वोटु पोहु मुराई वंगीवोम')। इसी प्रकार जब 1997 में केन्द्र सरकार के निर्देश पर राज्य सरकार ने सबको राशन की जरूरत के बदले लक्षित समूहों को राशन देने का फैसला करना चाहा तो, विरोध के चलते उसे चार दिनों के अंदर ही अपना फैसला वापस लेना पड़ा।

वरिष्ठ अधिकारियों को मालूम हो न हो पर बच्चों के माँ-बाप को आंगनवाड़ियों की हर गतिविधि की जानकारी रहती है। उन्हें अपने अधिकारों और शक्ति का भी एहसास होता है और इसी के बल पर वे आंगनवाड़ियों के काम में गड़बड़ी या कमी नहीं आने देते। जैसे सर्वेक्षण में आई अनेक आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं ने बताया कि बच्चों के माँ-बाप के जोर देने से ही वे बच्चों को ए.बी,सी, डी पढ़ाना शुरू करती हैं। एक अन्य कार्यकर्ता ने कहा कि वह किसी बच्चे पर हाथ उठाने की हिम्मत नहीं कर सकती क्योंकि तुरंत माँ-बाप शिकायत करने पहुंच जाते हैं।

आखिरी लेकिन काफी महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इस योजना को सक्षम बनाने में महिलाओं की भागीदारी ने भी बड़ी भूमिका निभाई है। जैसा कि पहले बताया गया है तमिलनाडु में सिर्फ आंगनवाड़ियों का काम ही नहीं योजना में ऊँचे स्तर का काम भी पूरी तरह महिलाओं द्वारा संचालित होता है। सिर्फ महिलाओं के चलते ही इस

बाक्स 7.9. तमिलनाडु में बाल पोषाहार की राजनीति : सामाजिक और राजनैतिक फायदों का मेल

बच्चों को घर से बाहर आहार देने का तमिलनाडु का इतिहास काफी पुराना है। सार्वजनिक रूप में दिखाई देने वाला भोजन खिलाने में राजनैतिक मूल्य को यहाँ काफी पहले समझ लिया गया था। और किसे अच्छा खाना पसंद नहीं हैं? अच्छे खाते-पीते लोग भी सामाजिक अवसरों या सरकारी बैठकों के बाद मिलने वाले खाने-पीने की चीजों पर हाथ आजमाने से परहेज नहीं करते। ग़रीबों में तो खैर भूख और कुपोषण एक गम्भीर मुद्दा है ही। राजनैतिक पदों के आकांक्षी भूख का महत्व जानते हैं और उन्होंने बुनियादी जरूरत और चुनावी जीत के दोहरे उद्देश्य को अच्छी तरह पहचाना है। 1982 में शुरुआत करके तमिलनाडु ने दोपहर का भोजन योजना को एकीकृत बाल विकास से योजना के साथ सफलतापूर्वक जोड़ दिया। अपने विशाल नेटवर्क को उसने इस योजना के हवाले किया और नीति को भूख की जगह कुपोषण और बाल विकास की तरफ मोड़ दिया। सुप्रीम कोर्ट द्वारा दखल देने के बाद केन्द्रीय स्तर पर बाल कुपोषण और भूख को प्राथमिकता का विषय काफी बाद में बनाया गया जबकि तमिलनाडु ने यह काम पहले ही कर दिया था। अन्य राज्यों में यह काम बाद में हुआ। यह स्पष्ट रूप से दिखाता है कि जब नेतृत्व किसी मसले में सामाजिक और राजनैतिक, दोनों लाभ देखता है तो उसके व्यापक स्तर पर लागू होने और धन वगैरह की कमी न होने की सम्भावना बढ़ जाती है। कुपोषण दरिद्रता से कम स्पष्ट दिखाई देने वाली चीज है और इसमें मौत वाली नाटकीयता भी नहीं है। इसे शायद ही 'आपात स्थिति' वाले अंदाज में देखा जाता है। पर इसका असर बहुत घातक होता है और यह सिर्फ मौजूद पीढ़ी तक नहीं रहता। अगर माँ कुपोषित हुई तो उसकी सन्तान भी स्वस्थ नहीं होती। दक्षिण एशिया के देशों का अब तक सारा जोर आमदनी वाली दरिद्रता मिटाने पर है मानवीय वंचना? कुपोषण को मिटाने पर नहीं। आमदनी वाली दरिद्रता में तो थोड़ी कमी आई है पर कुपोषण जान छोड़ने का संकेत नहीं दे रहा है। एक डालर रोज से कम आमदनी वाली आबादी का अनुमान तो 33 फीसदी है पर सामान्य से कम या अत्यधिक कम वज़न वाले बच्चों का अनुमान 46 फीसदी है। किशोर वय के लड़के-लड़कियों, गर्भवती और लरकोरी औरतें तथा बुजुर्ग जैसी श्रेणी के कुपोषित लोगों का हिसाब इसमें अलग है, अगर किशोरियों और औरतों में रक्तल्पता, लोगों में सूक्ष्म पोषकों का अभाव और नए तरह की जीवन शैली से होने वाले कुपोषणों का हिसाब लगाएं तो आधी से ज्यादा आबादी जिसमें गरीब ही नहीं अमीर भी शामिल है – कुपोषित मिलेगी। शीतल पेय और प्रसंस्कृति भोजन आज अमीर परिवारों में ही नहीं गरीब परिवारों में भी घुस गए हैं। वे भी इसे शान की चीज मानकर अपनी छोटी कमाई का बड़ा हिस्सा इस पर खर्च करने लगे हैं। जबकि उनमें अच्छे और पौष्टिक भोजन की कमी आती जा रही है। स्पष्ट है कि सिर्फ गरीबी कम करने में कुपोषण खत्म नहीं होगा। और इसमें लड़ने का एक हथियार – एकीकृत बाल विकास योजना – भारत के पास अभी भी मौजूद है जो कुपोषित बच्चों की देखरेख करने के साथ-साथ नई पीढ़ी को इस दुष्चक्र में जाने से रोक सकती है।

तमिलनाडु में 2 से 15 वर्ष का लगभग हर बच्चा दोपहर में सरकारी खर्च पर गर्म अच्छा भोजन पाने का हकदार है। स्कूल जाने वाले बच्चों को वहाँ खाना मिलता है। स्कूल जाने वाले बच्चों को वहाँ खाना मिलता है और उससे कम आयु के बच्चों को आंगनवाड़ी केन्द्रों में अनेक सेवाओं के साथ भोजन मिलता है। घर ले जाने वाला राशन गर्भवती और लरकोरी औरतें, किशोरियाँ, अनाथ, विक्लांग, पैंशनभोगी जैसी श्रेणियों के लोग भी इस योजना के दायरे में आते हैं। स्कूल पूर्व की शिक्षा में 3,0000 से ज्यादा केन्द्रों पर लगभग 15 लाख बच्चों और लोगों इन योजनाओं का लाभ उठाते हैं। आज का फैसला है पर व्यवहार में हर चाहने वाले बच्चें को भोजन मिलता है। सबको भोजन देने का एक व्यवहारिक फायदा है। कुछ बच्चों को भोजन देकर, कुछ को न देने का काम मुश्किल था। उसके लिए सूची बनाना, लाल राशन कार्ड एवं आधार बनाने जैसी परेशानियां तो थीं ही, खाना बनता देखने वाले सारे बच्चों में से कुछ को रोकना अनुचित लगता था। सामूहिक भोजन से सामाजिक मेल-मिलाप भी बढ़ता है, आंगनवाड़ियों में गरीब घरों के बच्चें ही ज्यादा होते हैं। उत्तरी राज्यों की तुलना में यहां सेवाओं का स्तर बढ़ता है। केन्द्र ज्यादा देर के लिए खुलते हैं, तीन वर्ष से कम के बच्चे ज्यादा अनुमान में आते हैं। अपनी इमारत, बरतन-भांडा, रसोई घर, भंडार जैसी संरचनागत सुविधाएं बेहतर हैं। ज्यादा और सक्षम स्टाफ है और उन्हें नियमित वेतन मिलता है।

तमिलनाडु का उदाहरण कई दिलचस्प संकेत देता है। राजनैतिक इच्छाशक्ति ऊपर से दबाव बनाए तो सार्वजनिक नीति पीर आंच नहीं आती और इसे नियमित बल मिलता है। दूसरे, यदि कोई कार्यक्रम एक अधिकार की तरह लगे और लोकप्रिय हो जाए तो उसके लिए नीच से भी दबाव बन जाता है। स्थानीय लोग और मीडिया किसी आंगनवाड़ी को बंद देखकर खामोश नहीं रह सकते। तीसरे, अगर नीचे से दबाव बनाना शुरू हो जाए तो चाहे जो पार्टी शासन में आए सभी इस दबाव को नजरंदाज नहीं कर सकते। चौथा, अगर कार्यक्रम का लाभ दिखने लगे तो क्वालिटी अच्छा रखने का चौतरफा दबाव बनता है। तथा स्टाफ और अधिकारियों में भी इस सवाल पर चौकसी बढ़ जाती है। पोषण लगभग सबको भोजन देना, पोषण पर बच्चों के अधिकार को स्वीकार करने जैसा है। जब कुपोषण गरीबी के दायरे तक सीमित न हो तब यहा बात और महत्वपूर्ण हो जाती है। छठा, जब सबको इसका लाभ मिलने लगता है तो लोग दूसरी चीजों के प्रति भी जागरूक होते हैं जैसाकि स्कूल पूर्व भी शिक्षा के मामले में दिख रहा है। जाति और वर्ग में बंटे भारतीय समाज में सभी जातियों के बच्चों का साथ-साथ खाना-पीना, उठना-बैठना, पढना-सीखना साथ होने का मतलब सार्वजनिक रूप से भी काफी है।

पोषण के हिसाब से कमजोर और मुश्किल झेलने वाले समूहों के हित लोकतांत्रिक सफलता से भी जुड़ सकते है; यही है सामाजिक और राजनैतिक फायदों का मेल।

सहयोग – अनुराधा खाती राजीवन

व्यवस्था में ज़्यादा ज़वाबदेही आ गई है। नीचे से दबाव बनाने का काम भी मुख्यत: औरतों की तरफ से आया है, क्योंकि नन्हें-मुन्नों की ज्यादा परवाह उन्हें ही रहती है। फिर महिलाओं ने ही स्वास्थ्य और पोषाहार को राजनैतिक मुद्दा बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है। राज्य की राजनीति में महिलाओं का वोट बहुत महत्वपूर्ण है और कोई भी राजनैतिक दल बाल विकास समेत किसी भी मुद्दे पर उनकी भावनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता और यह कोई संयोग नहीं कि हमारे सर्वेक्षण में इस कार्यक्रम में अच्छा प्रदर्शन करने वाले एकमात्र राज्य हिमाचल प्रदेश में भी तमिलनाडु की तरह महिलाओं की जागरूकता और भागीदारी के इस कार्यक्रम को सफल बाने में बड़ी भूमिका निभाई है।

संक्षेप में कहें तो तमिलनाडु में इस योजना की सफलता में जिन चीजों ने बड़ी भूमिका निभाई है, उसमें बच्चों के विकास के प्रति राजनैतिक वचनबद्धता और उसके लिए सामाजिक आंदोलनों के दबाव तथा सामजिक और राजनैतिक जीवन में महिलाओं की वृहत्तर भागीदारी शामिल है। सशक्त, शिक्षित और राजनैतिक रूप से जागरूक माताओं के दबाव में ऐसी व्यवस्था बनाने और चलाने में जो भूमिका निभाई है उसे समझना जरूरी है, और तमिलनाडु ने दिखा दिया है कि एकीकृत बाल विकास सेवा कार्यक्रम को एक बहुत ही प्रभावी कार्यक्रम बनाया जा सकता है। लेकिन इस काम के लिए मजबूत राजनैतिक इच्छाशक्ति और सामाजिक-राजनैतिक जीवन में महिलाओं की भूमिका में तेज विकास का होना भी जरूरी है।

बाक्स 7.10. फोकस सर्वेक्षण : एक आकलन

फोकस सर्वे के लिए मैंने लंबी यात्राएं की – हिमाचल प्रदेश के पहाड़ों से राजस्थान तक और तमिलनाडु के सुदूरवर्ती गांवों तक। वह काफी व्यस्त समय था। घड़ी की चाल की तरह काम हो रहे थे। प्रश्नावली भरना, उन्हें चेक करना, अकाउंट ठीक करना। मुझे इसके लिए चिंतित नहीं होना पड़ा कि मुझे फील्डवर्क का अनुभव नहीं है। जिनका साक्षात्कार लेना था उनके साथ बेहतर संपर्क बनाने में टीम के सहयोगियों के दबाव और जिन लोगों से मिला उन्हें गहराई से समझने पर मेरे लिए यह काम अनुमान से काफी आसान हो गया।

हमलोग जैसे–जैसे एक आंगनवाड़ी से दूसरे में गए, हमलोगों ने जो देखा उसकी रेंज काफी व्यापक थी। एक दिन हम खुश हो जाते थे और दूसरे दिन दुखी होते थे। कई जगह ऐसे आंगनवाड़ी थे, जो खुले हुए थे, लोगों को अपनी ओर आमंत्रित करते, खुश और बिल्कुल जीवंत तो दूसरी ओर ऐसे भी थे, जिनमें ताले लगे हुए थे और मैं दावा कर सकता हूं कि वे महीनों से बंद थे। हालांकि एक ही जिले के अंदर कई तरह की चीजें देखने को मिलीं, लेकिन अंतिम रूप से कहा जा सकता है कि तमिलनाडु में खुशियों की निरंतरता सबसे ज्यादा रही। दूसरी जगहों के मुकाबले अगर बुनियादी ढांचा या दूसरी सुविधाएं बहुत अच्छी नहीं थीं, तब भी तमिलनाडु के आंगनवाड़ी बच्चों और समुदाय को अपनी ज्यादा सेवा देते हुए दिखे। टीचर्स जिस तरह से बच्चों के इस स्कूल को चला रहे थे, उसमें एक निश्चित किस्म का पेशेवर नजरिया दिखा। तमिलनाडु के अभिभावक भी ज्यादा जागरूक दिखे और शायद इसी कारण दूसरे राज्यों के अभिभावकों के मुकाबले वे ज्यादा सुविधाएं मांगते भी रहे। उदाहरण के लिए हमलोग हिमाचल और राजस्थान दोनों जगह माओं से मिले, जिन्हें आंगनवाड़ी के बारे में बहुत मामूली जानकारी थी। इसके उलट तमिलनाडु के एक सुदूरवर्ती पिछड़े गांव धर्मपुरी में हमलोग एक ऐसे व्यक्ति से मिले, जिसे यहां तक पता था कि उसके बच्चे को रोज 80 ग्राम चावल मिलना चाहिए।

सबसे स्वादिष्ट पूरक पोषण था तमिलनाडु का सत्तू और सांबर के साथ चावल। हिमाचल का चना दूसरे नंबर पर रहा। राजस्थान के क्रंची मुरमुरे के साथ मेरा अनुभव अच्छा नहीं रहा। हालांकि बच्चे शिकायत नहीं करते, लेकिन मुझे नहीं लगता कि उनका अनुभव इससे कुछ अलग होगा। इस मामले में मैंने देखा कि तमिलनाडु दूसरे से काफी आगे है, कई जगह अच्छा किचेन नहीं होने के बावजूद, वहाँ पोषक भोजन बनाने पर खास ध्यान दिया जाता था और भोजन में से थोड़ा सा हिस्सा साफ–सुथरे स्टील के बर्तन में रखा जाता था, उच्च अधिकारियों के सम्भावित निरीक्षण के लिए। कांचीपुरम के एक गांव में सब्जियों का स्रोत आंगनवाड़ी का परिसर ही था।

दरअसल दूसरी जगहों पर हमारा फोकस नियमितता और आपूर्ति की उपलब्धता पर ज्यादा था, तमिलनाडु में मसला इससे थोड़ा अलग था। धर्मपुरी गांव के आंगनवाड़ी की एक कर्मचारी इस बात से नाराज थी उसे नारियल का इस्तेमाल कंजूसी से करने को कहा गया था, 'जैसे यह सोना हो'। इसी तरह से पड़ोसी गांव के एक अभिभावक ने बच्चों को मिलने वाली सब्जियों में से एक खास सब्जी के बारे में बताया कि उसमें पोषक तत्व कम होता है और बच्चों को पोषण के लिए दूसरी वेराइटी देनी चाहिए।

इन तीन राज्यों में से हिमाचल प्रदेश और तमिलनाडु के अभिभावक आंगनवाड़ी में मिलने वाली शिक्षा को भी उतना ही महत्व देते दिखे, जितना की पूरक पोषण के लिए मिलने वाला भोजन। कई बार शिक्षा उन्हें ज्यादा संचालित करने वाला फैक्टर दिखा। कांचीपुरम के एक अभिभावक ऐसे भी मिले, जो अपने तीन साल के बच्चे को आंगनवाड़ी के बजाय ज्यादा महंगे अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूल में भेजते थे। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि आंगनवाड़ी में मिलने वाली प्री–स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता भिन्न–भिन्न थी। यह गुणवत्ता वहां के कर्मचारियों के मोटिवेशन लेवल पर निर्भर करती है। गुणवत्ता का फर्कएक ही जिले के विभिन्न संस्थानों में देखा जा सकता था।

कई आंगनवाड़ियों में हमने देखा - खास कर तमिलनाडु और राजस्थान में कि आंगनवाड़ी कर्मचारियों का काम काफी प्रोत्साहित करने वाला था। उनमें से कई तो बच्चों के लिए खिलौने खरीदने और उन्हें अल्फाबेट पढ़ाने के लिए चार्ट तैयार करने में वे अपना पैसा खर्च करते थे। कुछ लोगों को काम के प्रति सहानुभूति थी, तो कुछ शिकायत करने वाले थे। धौलपुर में आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने हमलोगों को बताया कि उनलोगों से न सिर्फ बहुत काम लिया जाता है, बल्कि उन्हें वहां आने–जाने वाले हर वीआईपी को रिसीव करने रेलवे स्टेशन भी जाना होता है और छुट्टियों के दिन भी काम करना होता है। एक कर्मचारी ने कहा - यहां कुछ भी नहीं है, जिसमें हमको खींचा नहीं जाता। हम इन महिलाओं की काम करने की क्षमता देख कर खुश थे, तो हमलोगों ने अनेक ऐसे आईसीडीएस अधिकारियों को भी देखा, जो बिना कुछ किए अपना समय बिता रहे थे। हिमाचल प्रदेश के सीडीपीओ ने तो एक नाटकीय रूपक का इस्तेमाल करते हुए कहा कि यहां तक कि भगवान कृष्ण को भी आईसीडीएस को चलाने में मुश्किल होती।

हम लोग लगातार आंगनवाड़ी के काम को प्रभावित कर सकने वाले राजनीतिक मसलों के बारे में पूछते थे। हमारे एक सहयोगी को इसमें खास महारत हासिल थी। हमलोगों ने महसूस किया कि जो कर्मचारी स्थानीय राजनेताओं से जुड़ाव वाले थे, वे आंगनवाड़ी का कामकाज नहीं करते थे। वे सारे कामों की अलग से निगरानी करते थे और सहायकों पर काम छोड़ देते थे। हिमाचल प्रदेश के एक हिस्से में यह खासतौर से दिखा। हमने यह भी महसूस किया कि इसमें व्यापक समुदाय की भागीदारी बहुत सीमित है। हिमाचल के एक गांव में जब हमने एक ठीक से काम नहीं करने वाले आंगनवाड़ी के बारे में पूछा तो लोगों पर इसका कोई खास असर नहीं हुआ। इसी तरह से तमिलनाडु के एक गांव में पंचायत अध्यक्ष की भूमिका के बारे में पूछा गया तो लोगों ने हंसते हुए कहा कि उसने आंगनवाड़ी के एक कुएं का वादा किया था, लेकिन एक गड्ढा खोद कर भाग गया।

सर्वेक्षण का सबसे प्रसन्नता का क्षण बच्चों के साथ घुलने–मिलने वाला था। पहले तो वे हमें देख कर भाग जाते थे। वे समझते थे कि हम एएनएम हैं, जो उन्हें इंजेक्शन लगाने आए हैं। (एक स्तर पर आश्वस्ति देने वाला भी है, इससे

लगता है कि उनका नियमित टीकाकरण होता है) जब वे भागते नहीं थे, तो हम काफी उत्साह जगाते थे। वे खूब मजे करते थे और हमारा भी मजाक उड़ाते थे। वे अक्सर हमलोगों को अपने कामकाज में शामिल होने के लिए बुलाते थे और हमलोग उनकी इच्छा पूरी करते थे। वे हमारे लिए कविताएं भी गाते थे। हिमाचल के एक गांव में हमने वह कविता सुनी, जो हम खुद बचपन में सुनते थे – जॉनी, जॉनी यस पापा... और कुछ हफ्ते बाद वहां से दो हजार किमी दूर तमिलनाडु के एक आंगनवाड़ी में भी बच्चों ने यही कविता सुनाई। बच्चे हमें प्रभावित करने की कोशिश कर रहे थे और मैं सोच रहा था कि यह शायद सबसे ज्यादा टिकाऊ और पूरे देश में सबसे अधिक पहुंच वाली कविता है।

हमें कई तरह की मुश्किलों का सामना भी करना पड़ा, लेकिन मुझे लगता है कि ज्यादा सुदूरवर्ती इलाकों में जाने वाले हमारे दोस्तों को इससे ज्यादा मुश्किलें हुई होंगी। एक गांव में लोगों ने समझ लिया कि हम किसी विज्ञापन की शूटिंग करने आए हैं। हम सफाई देते उससे पहले ही बात चारों तरफ फैल गई। इसके बाद दिन का आधा हिस्सा हम उन्हें समझाते रहे कि हम किस काम के लिए आए हैं। एक दूसरे मौके पर हमारे एक सहयोगी को एक पुलिस वाले ने जिले में हुई एक हत्या के मामले में पूछताछ के लिए रोक लिया। हम उसकी संदेह से भरी नजरों को कभी नहीं भूल पाएंगे।

सर्वेक्षण के दौरान कई अच्छे अनुभव भी हुए। गांव के गांव और हर दिन हमलोग ऐसे लोगों से मिलते रहे, जो अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए कठोर मेहनत करते थे और उनके पास जो थोड़ा-बहुत होता था, उसे भी पूरे जोश के साथ हमें ऑफर करते थे, इसे बयान करना मुश्किल है। तमिलनाडु के एक हांव में हमारी मेजबानी एक ऐसे परिवार ने की, जो बंगलोर के एक कंस्ट्रक्शन साइट पर काम करने वालों का था।

धर्मपुरी में हमें कन्या भ्रूण हत्या की समस्या की एक झलक मिली। एक एनएनएम ने हमें बताया कि एक डॉक्टर ने अवांछित लड़कियों के लिए एक आवास बनाया है और उम्मीद करता है कि लोग उन्हें मारेंगे नहीं, बल्कि उसके पास छोड़ जाएंगे। उस एएनएम ने खुद भी एक बच्ची को गोद लिया है। हमलोग हर क्षेत्र में जातीय विभाजन से भी दो-चार हुए, लेकिन कुछ इलाकों में यह बहुत ज्यादा था। हिमाचल प्रदेश में हमें कुछ अभिभावकों और आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने बताया कि वहां किसी तरह का जातीय विभाजन नहीं है, लेकिन उसी दिन गांव के एक सवर्ण के यहां हो रही शादी में आधा गांव आमंत्रित नहीं था, और उन्हें शादी समारोह के आसपास फटकने की इजाजत भी नहीं थी।

मेरे लिए आंगनवाड़ी की सहायिकाओं की निजी कहानियों को भूलना संभव नहीं है। जिन लोगों का मैंने इंटरव्यू किया, उनमें से कई के घर उजड़े हुए थे या विधवाएं थीं और खास कर अनुसूचित जातियों की। अगर सभी राज्यों के बीच कुछ समानता थी तो वह यही थी। इस तरह के इंटरव्यू भावनात्मक रूप से काफी सघन रहे क्योंकि वे हमारे साथ अपने जीवन की दर्दनाक घटनाओं को बांटती थीं। उनका हर दिन खुद को बचाने का बचाए रखने का संघर्ष भी था। कई बार हमलोग ऐसे बच्चों से मिले, जो बीमारी के कारण अशक्त हो गए हैं और जिनके माता-पिता के पास उनके इलाज के लिए कोई साधन नहीं था वे अपनी सारी उम्मीदें खो चुके थे। लेकिन कई आंगनवाड़ी में हम ऐसे बच्चों से मिले जो खुश थे, उन्मुक्त और चतुर भी थे। हम उम्मीद करते हैं कि उनका भविष्य उज्जवल होगा।

जब सर्वेक्षण पूरा हुआ, एक बात स्पष्ट हो चुकी थी। हमने सर्वे की शुरुआत बच्चों की भलाई में रुचि के साथ की थी, लेकिन कुछ हफ्तों के बाद इसकी गहराई बढ़ती गई और आज यह एक जिम्मेदारी से ज्यादा प्रतिबद्धता महसूस होती है।

सहयोग – सुधा नारायणन

8. हम क्या कर सकते हैं

शशि पंडित

हर बस्ती में एक सक्रिय आंगनवाड़ी हो, इसके लिए अनेक काम किए जा सकते हैं। आंगनवाड़ी का होना ही पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षा सम्बन्धी बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए काफी महत्वपूर्ण है। इसके लिए दूर-दराज के गांवों से लेकर मुल्क की राजधानी तक हर स्तर पर सक्रियता की जरूरत है, और इसमें हर आदमी – माँ-बाप, अध्यापक, पत्रकार, राजनेता, अनुसंधानकर्ता या समाज के सचेत सदस्य – की एक भूमिका है और इस काम को करने का कोई एक बंधा-बंधाया तरीका नहीं है। काफी कुछ स्थानीय स्थितियों और लोगों की कल्पनाशीलता पर निर्भर करता है। इस आखिरी अध्याय में हर किसी को उसकी भागीदारी करने के लिए कुछ सुझाव हैं।

8.1 नीतिगत प्राथमिकताएं

इस तरह की रिपोर्टों का अंत प्राय: नीतिगत सुझावों से होता है। यह इस

दोहरी धारणा से किया जाता है कि सरकार ही बदलाव का एक वाहक है और यह कि सरकार की प्राथमिकताएं 'नीति निर्धारक' लोग तय करते हैं। ऐसे में हर किसी को यह लोभ होता है कि वह नीति निर्धारकों को अपनी राय पहुंचाये और फिर यह उम्मीद, कि वे उसकी सुनकर नीतियों में बदलाव ला देंगे। इस रिपोर्ट में सरकारी कामकाज की इस अवधारणा को नहीं माना गया है। हम यह जरूर मानते हैं कि बाल अधिकारों की रक्षा में सरकार की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। यहाँ हमने सरकारी कामकाज को लोकतांत्रिक राजनीत में बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की कोशिश की है। जैसाकि हमने अध्याय एक में देखा है, भारतीय लोकतंत्र में बच्चों के अधिकारों के प्रति न्याय करने की क्षमता काफी सीमित है। पर यह स्थिति जड़ नहीं है और हम कभी इसे बदलने में अपनी-अपनी भूमिका निभा सकते हैं। इसलिए यह रिपोर्ट लोगों को संबोधित है, नीति निर्माताओं से नहीं।

यह बात स्पष्ट करने के बाद इस बात का लिया जाना जरूरी है कि सचेत नागरिकों के तौर पर हम किस-किस में नीतिगत बलदाव लाना चाहेंगे। इस मुद्दे पर काफी चर्चा और विचार हुआ है – खास कर रिपोर्ट तैयार करने के कुछ पहले की महीनों में। जैसे, हैदराबाद में अप्रैल 2006 में "बच्चों का भोजन का अधिकार" विषय पर सम्मेलन हुआ जिसकी समाप्ति पर पास प्रस्ताव में कई बातों के साथ 'सबको स्तरीय सेवा' की बात जोर शोर से कही गई। फिर देश के अलग-अलग हिस्सों में अनेक मंचों से भी इन सवालों पर विचार हुए हैं। अनुलग्नक 1 में हमने इन संवादों और कार्यक्रमोन्मुख विचार विमर्शों से उभरे मुख्य सुझावों को सिलसिलेवार ढंग में दिया है। यह कहने की जरूरत नहीं है कि इस अनुलग्नक को भी नीतियों में बदलाव का ब्ल्यू प्रिंट नहीं मानना चाहिए, इसे भी संवाद की निरंतरता ही मानना चाहिए।

इस दस्तावेज को यहां जोड़ने का एक कारण यह बताना भी है कि सिर्फ केन्द्र के स्तर पर ही नहीं राज्य सरकारों और यहां तक कि ग्राम पंचायतों के स्तर पर भी बड़े नीतिगत बदलाव करने की जरूरत है। हर स्तर पर कुछ न कुछ नई उपलब्धियां हासिल करने की गुंजाइश है और इस बात की ज्यादा सम्भावना है कि व्यवस्था जितनी विकेन्द्रीकरण की तरफ बढ़ेगी उतना ही ज्यादा प्रभावी ढंग से काम हो पाएगा। जैसे प्रशिक्षण में काम को तमिलनाडु में प्रखंड के स्तर पर कर दिया गया और इससे स्थानीय स्तर पर सक्रियता से काफी सारे बदलावों की सम्भवना निकल पड़ती है। संक्षेप में कहें तो हम अपने वांछित बदलावों के बारे में जितना ज़यादा स्पष्ट होते जाएंगे हम हर सम्भव अवसर पर सक्रिय होकर काम करने के लिए बेहतर ढंग से तैयार होंगे और ज्यादा प्रभावी काम कर पाएंगे। हमने इसी भावना में अनुलग्नक 1 में एकीकृत बाल विकास सेवाओं के स्वरूप और कार्यान्वयन के बारे में सुझाए गए व्यावहारिक बदलावों को शामिल किया है।

8.2. क़ानूनी पहल

हमने पहले कहा कि शासन की नीतियों में बदलाव के लिए सिर्फ 'नीति निर्माताओं' के भरोसे नहीं बैठा जा सकता। फिर सवाल उठता है कि तब किस तरह से सरकार की प्राथमिकताओं को प्रभावित किया जाए। हमारा जवाब है कि किसी भी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में ऐसा करने के अनेक रास्ते हैं। कानूनी पहल, संसदीय बहसें, मीडिया अभियान और कई तरह के आंदोलन इसमें कुछ प्रमुख तरीके हैं। उनका इन्हीं तरीकों में सरकारी एजेंसी के बिना व्यवहारिक स्तर पर भी बदलाव हासिल किया जा सकता है – लोगों के नज़रिए और अवधारणाओं में बदलाव करना भी एक तरीका है। जैसे 'आंगनवाड़ी आन्दोलन' की उत्पत्ति भी सरकारी नीति या फैसलों के दायरे से बाहर ही हुई थी, जब महाराष्ट्र के आदिवासी गांवों में अनुताई वाघ ने बालवाड़ियां चलाने की अनुकरणीय पहल की। (देखें बाक्स : 6.2 अनुताई वाघ)

कानूनी पहल भी काफी मददगार हो सकती है, क्योंकि ये सरकार को सुस्त नहीं पड़ने देती। हमने प्राथमिक स्कूलों मं दोपहर के भोजन के सन्दर्भ में यह चीज बहुत स्पष्ट ढंग से देखी है। 28 नवम्बर 2001 को सुप्रीम कोर्ट का आदेश आने के पांच साल के अंदर ही दोपहर का तैयार भोजन पाने वाले बच्चों की संख्या 12 करोड़ से ज्यादा हो गई। अब यह और बात है कि अदालत के आदेश के हिसाब से यह काम हर महीने के अंदर हो तो जाना चाहिए था, पर अब चाहे जो भी दावे किए जाएं पर जिस दौर में सरकार सामाजिक क्षेत्र से अपने हाथ खींचती जा रही है, उसमें अगर सुप्रीम कोर्ट ने इतना दमदार फैसला और निरंतर चौकसी न बरती होती तो यह काम हो पाना असम्भव था।

एकीकृत बाल विकास विकास सेवा योजना के सन्दर्भ में भी कानूनी पहल की काफी गुंजाइश है। हमने अध्याय में

बाक्स 8.1. झारखण्ड में दोपहर का भोजन अभियान

कई राज्यों में बीते पिछले कुछ वर्षों में मिड-डे-मील के जीवंत अभियान हुए हैं। इन अभियानों ने राज्य सरकारों को, सर्वोच्च न्यायालय के 28 नवम्बर 2001 को दिए गए आदेश को लागू करने के लिए, आश्वस्त करने में प्रमुख भूमिका निभाई है।

उदाहरण के तौर पर, झारखण्ड को ले लीजिए। मिड-डे-मील के लिए अभियान वहाँ "धन्यवाद अपील" से शुरू हुआ, जो 17 फरवरी 2002 की भारत ज्ञान-विज्ञान समिति द्वारा जारी किया गया था। इस अपील ने 28 नवम्बर 2001 के सर्वोच्च न्यायालय के आदेश की ओर ध्यान खींचा और 9 अप्रैल 2002 को इसे "कार्यान्वित करने के दिन" के रूप में मनाया गया। इस दिन का मुख्य आकर्षण "स्कूल मील" था जो स्थानीय समुदायों द्वारा आयोजित किया गया था। इसका उद्देश्य था सरकार की निन्दा करना और यह दिखाना कि लोगा सर्वाच्च न्यायालय के आदेश के लागू किए जाने का इंतजार करते-करते थक चुके थे।

इस दिन से पहले एक बड़ा विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया था जिसका उद्देश्य पोस्टर, लीफलेट, वॉल पेटिंग, नुक्कड़ नाटक आदि के ज़रिये जागृति पैदा करना था। 9 अप्रैल 2002 को कई संस्थाएं इस "डे ऑफ एक्शन" से जुड़ गई। सैकड़ों स्कूलों में; पंचायतों, ग्राम सभाओं, शिक्षकों और साधारण जनता की सहभागिता के साथ, एक पीपुल स्कूल मील बनाई। रांची में, कुछ 2500 बच्चे, टाउन हॉल में एकत्रित हुए मिड डे मील की प्राथमिक स्कूलों में शुरुआत करने की मांग करने के लिए।

11 जुलाई 2002 को एक और आन्दोलन हुआ। सैकड़ों बच्चों ने रांची में मुख्यमंत्री निवास की ओर रैली की। सैक्शन 144 को नज़रअंदाज़ करते हुए और सुरक्षा गार्डों से बचते हुए, वह मुख्यमंत्री निवास में दाखिल हुए और उन्हें एक अर्ज़ी दी। मुख्यमंत्री ने बच्चों को सहानुभूतिपूर्वक सुना और "मामले में देखने का" वादा किया।

लेकिन झारखण्ड सरकार ने तब भी वही रवैया जारी रखा और मिड डे मील योजना को लागू न कर पाने या उसे टालने के लिए कई बहाने ढूंढती रही। नवम्बर 2003 में अभियानों की एक अन्य लहर उठी, जिसमें एक विस्तृत हस्ताक्षर अभियान, एक ओर "पीपुल्स स्कूल मील", एक "बाल संसद" और सचिवालय के सामने धरना शामिल थे।

इन आन्दोलनों को शान्त करने के लिए, झारखण्डल सरकार ने अन्ततः दिसम्बर 2003 में प्राथमिक स्कूलों में मिड डे मील्स की शुरुआत की। दूसरे राज्यों की तरह ही, शुरुआती दौर में इसमें कई समस्याएं आईं, जिनमें वितरण की समस्या, फूड प्वाज़निंग की घटनाएं और उच्च जाति/स्वर्ण माता-पिता द्वारा अवरोध शामिल थे। लेकिन मिड डे मिल्स की गुणवत्ता और पहुँच में समय के साथ सुधार हो रहा है।

2004 में ग्राम स्वराज अभियान द्वारा कराए गए एक सर्वेक्षण में यह पाया गया कि मिड डे मिल्स सर्वेक्षण के लिए चुने गए स्कूलों में से अधिकतर में रोज़ परोसी/दी जा रही थी। अभिभावकों द्वारा खाने की गुणवत्ता साधारणतः "अच्छी मानी गई और स्कूलों में उपस्थिति में भारी इज़ाफा देखा गया, विशेषतौर से वंचित बच्चों और लड़कियों की उपस्थिति में। एक को छोड़कर सभी शिक्षक चाहते थे कि मिड डे मील जारी रहें

सहयोग – गुरजीत

देखा है कि इस योजना को लेकर भी सुप्रीम कोर्ट ने कड़े आदेश दिए हैं, जिसमें समयबद्ध ढंग से सभी बच्चों को इसका लाभ देने का आदेश भी शामिल है। लेकिन इन अदालती आदेशों को लागू कराने के लिए उनके साथ ही संगठित गतिविधियों का चलाना भी जरूरी है, जैसाकि दोपहर के भोजन वाले मामले पर हुआ था। अगर लोगों की तरफ से चौकसी नहीं हुई तो सरकार के लिए अदालती आदेश को भुला देना ज्यादा मुश्किल काम नहीं है। दोपहर के भोजन मामले में इन्हें लागू करने के लिए काफी आन्दोलन हुए और कुछ राज्यों के चुनाव में तो यह एक महत्वपूर्ण चुनावी मुद्दा भी बन गया था। इसके चलते राज्य सरकारों के लए इन आदेशों की उपेक्षा करना मुश्किल हो गया। एकीकृत बाल विकास सेवाओं के बारे में सुप्रीम कोर्ट के आदेश के पक्ष में ऐसा अभियान आज तक नहीं छिड़ पाया है।

सुप्रीप कोर्ट के मौजूदा आदेशों के अलावा भी नए कानूनी पहल की गुंजाइश है। भोजन के अधिकार सम्बन्धी जनहित याचिका पर जो सुनवाई अभी चल रही है। (पीयूसी एल. बनाम केन्द्र सरकार एवं अन्य, नागरिक अधिकार 196, 2001) उसको नई याचिकाएं और 'अंतिम आंदोलनों' के जरिए और मजबूती दी जा सकती है, हाई कोर्टों में भी कानूनी पहल शुरू की जा सकती है। जैसे महाराष्ट्र के आदिवासी इलाकों में बच्चों की भूख से मौत की खबरों पर बंबई हाई कोर्ट ने अपनी तरफ से आदेश दिया। इसमें राज्य सरकार द्वारा संविधान

बाक्स 8.2. मुम्बई के हाई कोर्ट के महत्वपूर्ण फैसले

20 सितम्बर 2006, को मुम्बई हाईकोर्ट ने "2006 की सुओ मोटो रिट पिटीशन न. 5629" में निम्नलिखित अंतरिम निर्देश जारी किए :

(i) राज्य सरकार, भारत सरकार द्वारा 4.10.2005 के हलफ़नामे में दिए गए दिशा-निर्देशों के अनुसार, 31.10.2006 तक 12,684 अतिरिक्त आंगनवाड़ी केन्द्र फक्शनल कराए। ऐसा करने में असफ़ल होने पर मुख्य सचिव, महिला व बाल विकास विभाग, मंत्रालय, मुम्बई कोर्ट की अवमानना के मामले, 1971 के तहत मुकदमा चलाया जाएगा।

(ii) राज्य सरकार, डॉ. अभय बांग समिति द्वारा सुझाए गए "बाल मृत्यु मुक्त महाराष्ट्र" मिशन आरम्भ करे और तदानुसार, 11.3. 2005 से शुरू हुए "राजमाता जीजाउ मैटरनल चाइल्ड हैल्थ एण्ड न्यूट्रिशन मिशन" में सुधार लाए जिससे कुपोषण से हो रही शिशु मृत्यु की दर आज से पांच सालों के भीतर शून्य तक पहुँच जाए। दूसरे शब्दों में, राज्य सरकार, 30 सितम्बर 2011 तक, यह सुनिश्चित करे कि आदिवासी और आदिवासी रहित इलाकों में कुपोषण से हो रही शिशु मृत्यु दर लगभग शून्य तक पहुँच जाए।

(iii) शुरुआत के तौर पर सबसे से पहले, राज्य सरकार, डॉ. अभय बांग समिति द्वारा दिए गए सुझावों के अनुसार, कुपोषण मुक्त गांवों की तथा जच्चा और बच्चा मृत्यु रहित गांवों की पहचान करे और इन गावों को सम्मानित करे। ज़्यादा से ज़्यादा गांवों को कुपोषण रहित और जच्चा और बच्चा मृत्यु रहित बनाने के लिए, राज्य सरकार ग्राम पंचायतों और स्वयं सहायता समूहों को ज़िम्मेदारी और पैसा दे।

(iv) राज्य सरकार, स्थानीय ग्राम पंचायतों, स्वयं सेवा समूहों और गैर-सरकारी संगठनों को बच्चों सहयता मृत्यु और कुपोषण की रोकथाम करने में शामिल करें।

(v) स्वास्थ्य मंत्रालय में काम करने वाले अफसरों और कर्मयचारियों की समीक्षा और आंकलन करते हुए, उन अफसरों व कर्मचारियों को पर्याप्त वित्तीय प्रोत्साहन दिए जाए जिन्होंने बच्चों की मृत्यु और कुपोषण की रोकथाम में और शिशु मृत्यु से बचाव में सहायता की है।

(vi) "राजमाता जिजाउ जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य एवं पोषण मिशन" योजना में आंगनवाड़ियों को अधिक सुविधाएं, पर्याप्त दवाएं और किट उपलब्ध करा कर पर्याप्त सुधार लाए जाऐं, जो कुपोषण से हो रही मृत्यु को जड़ से हटाने में मददगार साबित हो पाएं।

(vii) राज्य सरकार, जहाँ तक हो सके, आदिवासी क्षेत्रों में, विकास के कार्यक्रम की योजना बनाने में आदिवासी ग्राम सभा को शामिल करे।

(viii) ज़िले द्वारा नियुक्त स्वैच्छिक पाडा महिला कार्यकर्ता जो कि बच्चों की समस्याओं और घरों में शिशुओं की देख-रेख के लिए रखी गई थी, उन्हें उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रम यदि अब तक शुरु नहीं हुआ है तो इसे 1/1/2007 तक शुरु जाना चाहिए।

(ix) गर्भवती महिलाओं के लिए आपातकालीन स्थिति में गाड़ी की व्यवस्था होनी चाहिए या फिर डिलीवरी वैन उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

(x) शिशु मृत्यु दर और गहरे कुपोषण के आधार पर ज़्यादा खतरे वाली जगहों की पहचान कीजानी चाहिए और उनके लिए अलग से बजट और अपेक्षित संसाधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए। यदि ज़रूरी हो तो राज्य सरकार द्वारा शुरू किए गए नव संजीवनी कार्यक्रम में उपयुक्त सुधार किया जाए ताकि अपेक्षित असर पड़ सके।

(xi) राज्य सरकारों को पन्द्रह जनजातीय जिलों के कलैक्टर को यह निर्देश जारी करना चाहिए कि वे महीने के न्यूनतम दो दिन, वैसे गांवों में गुज़ारें जहाँ शिशु मृत्यु दर ज़्यादा हो और कुपोषण की स्थितियां भयावह हों। गांव के प्रवास के दौरान यह कलैक्टर वहाँ की तमाम एजेन्सियों, जिसमें एन.जी. ओ. भी शामिल हैं, के बीच समन्वय बनाए और उन्हें मिशन में शामिल करें। अगर कुपोषण के चलते ख़ास जिले में हो रही बच्चों की मृत्यु दर को रोकने में कोई विशेष सफलता न मिल रही हो, तो ज़िला कलेक्टर के सर्विस रिकार्ड में इसे एक खराब कामकाज के तौर पर दर्ज किया जाना चाहिए।

(xii) मुख्य सचिव यह तय करें कि बाल मृत्यु और कुपोषण को रोकने के लिए जो पैसा दिया जा रहा है वह समय से और सुविधापूर्वक ज़रूरतमंदों तक पहुँचे।

(xiii) राज्य सरकार यह सुनिश्चित करे कि सिर्फ जिले में ही नहीं बल्की छोटी जगहों पर भी आपातकालीन चिकित्सा केन्द्र हों।

प्रदत्त जीवन रक्षा के अधिकार की पूर्ति न करने के लिए राज्य सरकार को फटकार लगाई गई है। आदेश के बाद राज्य सरकार ने आदिवासी इलाके के बच्चों को कुपोषण से बचाने के लिए कई कदम उठाये हैं।

यह इस टिप्पणी को हम एक हल्की चेतावनी के साथ खत्म कर रहे हैं। कानूनी पहल कोई जादू की छड़ी नहीं है – उल्टे यह अपने आप में भी मुश्किल है। कानूनी प्रक्रिया काफी समय और संसाधन तो लेती ही है, यही फैसले आपके हक में हो जाएं इस बात की कोई गारंटी नहीं है। फिर हर बात के लिए अदालत पहुंचना कई अर्थों में अलोकतांत्रिक भी है – आगे ही आधुनिक लोकतांत्रिक संस्थागत स्वरूप में न्यायपालिका एक मजबूत संस्था है। सम्भव है कि एकीकृत बाल विकास सेवा सम्बन्धी फैसला देने वाले न्यायधीश को बाल विकास की जमीनी हकीकत

बाक्स 8.3. छत्तीसगढ़ के कोरिया जिले में आई.सी.डी.एस. के लिए ज़मीनी स्तर पर लामबन्दी

कोरिया जिले के आदिवासी अधिकार समिति (आदिवासी कार्यकर्ताओं) ने 2003 में आईसीडीएस को लेकर एक मुहिम शुरू की जिसमें उन्होंने भारी मात्रा में बच्चों को तौलना शुरू किया। इससे पता चला कि 3 वर्ष से छोटे 79% लड़कियों और 67% लड़के कुपोषण का शिकार है। इनमें से 21% लड़कियाँ और 17% लड़के बुरी तरह से कुपोषित है (ग्रेड III या IV)। फिर भी राज्य सरकार ने समस्या की गम्भीरता को रेखांकित नहीं किया। छह वर्ष से छोटे केवल 48% बच्चे ही आंगनवाड़ियों में नामांकित हैं और आधे से अधिक बसाहटों में कोई आंगनवाड़ी नहीं है। आंगनवाड़ियों में उपस्थिति भी काफी कम थी क्योंकि आंगनवाड़ी अनियमित ढंग से काम करते थे। कई आंगनवाड़ियों में गेहू, तेल, गुड़, विटामिन आयरन की गोलियों कि उपयुक्त मात्रा मुहैय्या नहीं करायी गई थी।

बाल-पोषण पर प्रशिक्षण लेने के बाद मितानिनों ने गांव के स्तर पर मीटिंग और परामर्श-सत्र शुरू किये। प्रत्येक बसाहट में आदिवासी और दलित महिलाओं को लेकर देख-रेख समिति बनाई गई। मितानिनों से प्रोत्साहन पाकर ज्यादा-से-ज्यादा लोगों ने आंगनवाड़ियों का उपयोग शुरू किया। जैसे-जैसे यह लामबन्दी मजबूत हुई। वैसे-वैसे खराब काम करने वाले आंगनवाड़ियों में सुधार देखने को मिला।

मितानिनों ने महिलाओं से कहा कि वे अपनी शिकायतों को लिखित तौर पर सामूहिक शपथ पत्र के रूप में दें। इन शिकायतों को जिले कलक्टर के पास भेजा गया लेकिन कोई कार्यवाही नहीं हुई। आदिवासी अधिकार समिति ने ग्राम सभा के जरिये भ्रष्ट आई.सी.डी.एस. कार्यकर्ता को हटाने की कोशिश की लेकिन पंचायत अधिकारियों ने प्रस्ताव पास करने से मना कर दिया। इस हार के बाद आदिवासी अधिकार समिति के लोगों ने सर्वोच्च न्यायालय के कमिश्नर तक अपनी बात पहुँचाई। जिन्होंने राज्य सरकार से जाँच की माँग करते हुए पत्र लिखा। परिणाम स्वरूप तुरन्त कार्यवाही हुई।

आंगनवाड़ी के पुर्न-उद्धार के लिए एक मुहिम की योजना बनी। इस मुहिम को आई.सी.डी.एस. पर्यवेक्षक, स्वास्थ्य विभाग के ए.एन.एम. और मितानिन के सामूहिक प्रयास से चलाई गई। जिन गांवों में "समस्या" वाली आंगनवाड़ियां थीं। उनमें पुर्न-उद्धार गोष्ठियाँ आयोजित की गईं। आई.सी.डी.एस. के कर्मचारियों और समुदाय को एक साथ लाया गया और उनकी ज़िम्मेदारियाँ समझाई गईं।

यह मुहिम (आन्दोलन) सफल रही : अधिकतर आंगनवाड़ियों के संचालन और उपयोगिता में भारी सुधार हुआ। लेकिन घरेलू हिंसा के खिलाफ़ साथ आने के बाद ही मितानिन और आई.सी.डी.एस. कर्मचारियों के सम्बन्धों में सुधार हुआ।

लघु आंगनवाड़ियाँ शुरू करने से, कोरिया में आंगनवाड़ियों की संख्या 40% बढ़ गई, जिसमें समय के साथ सुधार लाया जाएगा। मितानिन और देखरेख समितियों ने यह सुनिश्चित किया कि आंगनवाड़ी कर्मचारियों का भेदभाव रहित चुनाव हो और उनके काम का पर्यवेक्षण किया जाए।

मार्च 2005 में, आई.सी.डी.एस. पर विशेष जोर के साथ, "खाने के मसलों पर", एक जन सुनवाई की गई। 135 गांवों से 2000 से भी अधिक आदिवासी महिलाओं ने इसमें भाग लिया। अधिकारियों ने सुधार कार्यों का वादा किया, लेकिन परिस्थितियों में सुधार धीमा रहा है।

मितानिनों ने मिलने वाले भत्ता व अन्य सुविधाओं के नकारे जाने का दस्तावेज़ बनाया और उसे ले दोबारा कमिश्नर तक पहुँचाया। उन्हें विश्वास है कि यह ऊपरी स्तर पर फैले भ्रष्टाचार को खत्म करने के उनके संघर्ष को बल देगा (सुदृढ़ करेगा) और स्थायी सुधार जल्दी ही प्राप्त होंगे।

सहयोग – समीर गर्ग

का ज्यादा कुछ पता न हो तो, मुद्दों के बारे में ज्यादा सूचनाएं न हों या उनके पास इस मामले पर ज्यादा विचार से चर्चा करने का वक्त ही न हो। आखिरी, लेकिन बहुत महत्वपूर्ण बात यह है कि कानूनी पहल कई बार एकदम उल्टा असर असर करती है – अदालत का आदेश आपकी मंशा के ठीक उल्टा भी कर सकता है जैसाकि नर्मदा बांध और कई अन्य मामलों में हो चुका है। बच्चों के मामले में एकदम उल्टा फैसला हो जाने की गुंजाइश अपेक्षाकृत कम है या इन मामलों में हम ज्यादा निश्चित नहीं हो सकते।

अगर आप छह वर्ष से कम के बच्चों के अधिकारों के लिए कोई कानूनी पहल करने की सेच रहे है तो आप 'राइट टू फूड' सेक्रेटेरियट द्वारा तैयार पुस्तिका 'सुप्रीम कोर्ट आर्डर्स ऑन द राइट टू फूड' भी देखना चाहेंगे। अनेक समाज सेवी संस्थाएं आपको विशेषज्ञों की सलाह और कुछ मामलों में कानूनी सहायता भी उपलब्ध करा सकती हैं।

8.3. सामुदायिक सक्रियता

'हम क्या कर सकते हैं, के जवाब में सबसे उपयोगी और सरल काम है इस योजना में (और उससे भी बढ़कर छह वर्ष से कम उम्र के शिशुओं के कल्याण में) दिलचस्पी लेना और अपने आसपास के बच्चों का खयाल रखना। लोगों को यह समझने की जरूरत है कि आज एकीकृत बाल विकास सेवाएं बच्चों के अधिकार का अंग हैं और सभी लोग इसे एक वास्तविकता बनाने में मददगार बना सकते हैं। उन्हें सुप्रीम कोर्ट के

आदेशों के बारे में भी जानना चाहिए। यह करने के भी कई तरीके हैं। आप अपने आसपास के लोगों को आंगन-वाड़ियों तक ले जा सकते हैं, जिससे वे स्वयं देखें कि वहां असल में क्या हो रहा है और योजना के अनुसार तथा अदालती आदेश के हिसाब से क्या होना चाहिए। आप उन्हें अपेक्षाकृत बेहतर काम करने वाली आंगनवाड़ियां भी दिखा सकते हैं जिससे उन्हें यह एहसास हो कि इस योजना से कितना ज्यादा लाभ हो सकता है।

एक और तरीका स्थिति को जांचने और नजर रखने का है, यह काम भी औपचारिक सर्वेक्षणों, अनौपचारिक पूछताछ, सचेत लोगों की बीच कार्यों जैसे अनेक तरीकों से लिया जा सकता है। ये कुछ मुद्दे हैं जिन ध्यान देना और पूछाताछ करना सम्भव है – आंगनवाड़ी की जरगह कौन-सी है? क्या यह वंचित बच्चों की पहुँच में है? उसका भवन कैसा है; बुनियादी ढाँचों और अन्य सामान की उपलब्धता; क्या आंगन-वाड़ी समय से खुलती है? जो बच्चे आंगनवाड़ी नहीं आते वे क्या करते हैं और जो आंगनवाड़ी आते हैं वे क्या करते हैं? क्या पोषक आहार की आपूर्ति नियमित रूप में पहुंचती है? क्या पर्याप्त आहार मिलता है? क्या शिशुओं, गर्भवती औरतों, लरकोरी माताओं और किशोरियों को नियमित चीजें मिलती हैं? क्या माँ-बाप या आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को आहार की क्वालिटी को लेकर कोई शिकायत है? क्या बांटे जाने के बाद बहुत खाना बचकर बर्बाद होता है? क्या राशन मापने का तरीका ठीक है? क्या आंगनबाड़ी में जाति या किसी और आधार पर भेदभाव होता है? क्या कभी किसी दलित बच्चे से भेदभाव हुआ है? क्या बच्चों को मिलने वाली स्वास्थ्य सेवायें और पूर्व-स्कूल शिक्षा पर्याप्त है? पीने के पानी, शौचालय आदि का कोई इंतजाम है या नहीं? क्या इसमें भ्रष्टाचार दिखता है? और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को क्या-क्या मुश्किलें आती हैं?

इन सवालों का सचेत होने और स्थानीय समुदाय को सक्रिय करने के बाद कई तरह की गतिविधियां चलाई जा सकती है? आंगनबाड़ी की रंगाई-पुताई से लेकर आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की मदद और सबको अच्छी सेवाएं देने के लिए जन समर्थन तैयार करने का काम किया जा सकता है। नीचे कुछ उदाहरण है जिस तरह के काम किए जा सकते हैं

हर बस्ती में आंगनबाड़ी का इंतजाम

हर बच्चे का यह अधिकार है कि उसके घर के पास ही आंगनवाड़ी हो, अगर आंगनवाड़ी नहीं है तो आपको सक्रिय हो जाने की जरूरत है, और इसका सबसे अच्छा तरीका नियोक्ता अर्थात् निगरानी अधिकारी या जिले के अधिकारियों से सम्पर्क करके शुरुआत करने का है। विभाग के प्रभारी सचिव की, स्थानीय नेता और अन्य संबद्ध लोगों को अर्जी भेजी जा सकती है। अगर इन सबसे लाभ नहीं होता तो आप सुप्रीम कोर्ट के आयुक्त या उसके सलाहकारों से सम्पर्क कर सकते हैं, (देखें अनुलग्नक II) अगर पूरे दस्तावेजों और ब्यौरों के साथ आयुक्तों तक बात पहुंचाई जाए तो अब तक का अनुभव रहा है कि उन मामलों में सफलता मिलती रही है (और मदद के लिए देखें www.righttofoodindia.org)

स्थानीय आंगनवाड़ी की देखरेख

अगर आंगनवाड़ी क्षेत्र में काम कर रही हो, तो यह बच्चों के लिए स्वर्ग जैसी होती है। पर काफी सारी आंगनवाड़ियां खस्ताहाल हैं या चल ही नहीं पा रही हैं। ऐसे मामलों में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के साथ ग्राम स्तर की बैठक करना लाभदायक होता है। अगर ऐसी बैठक और चर्चा के लिए आंगनबाड़ी कार्यकर्ता तैयार नहीं होती तो आप क्षेत्रीय अधिकारी से सम्पर्क कर सकते हैं। या आम तौर पर बिना लड़ाई या टकराव के ही आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को अधिक व्यवस्थित काम के लिए राजी किया जा सकता है – पर इसमें यह जरूरी होगा कि आप उसकी परेशानियों को भी सुनें और उन्हें दूर करने के लिए गांव के लोगों से मदद करायें।

अगर खाद्य सामग्री की आपूर्ति अनिश्चित हो या डॉक्टर और नर्स के आने में अनिश्चितता हो तो आपको परियोजना अधिकारी या जिले के अधिकारियों से बात करनी चाहिए। इन मामलों में भी अगर आप आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को अपने साथ लेते हैं या उसकी सलाह से काम करते हैं, तो ज़्यादा लाभ होगा। और अगर मामला ज्यादा गम्भीर हो और उसे स्थानीय स्तर पर नहीं निपटाया जा सकता तो आप आयुक्तों और उनके सलाहकारों से सम्पर्क कर सकते हैं।

आंगनवाड़ी की पूरी क्षमता का उपयोग

देश के अनेक हिस्सों में लोग एकीकृत बाल विकास सेवाओं की बात को ज्यादा पसंद नहीं करते क्योंकि उन्हें ठीक से मालूम ही नहीं है कि आंगनवाड़ी प्रभावी ढंग से कितना काम कर सकती है और कैसे-कैसे करती है। अगर आंगनबाड़ी में बच्चों को रोज सिर्फ एक कटोरी दलिया या खिचड़ी मिले तो अधिकांश माँ-बाप उस पर ज्यादा ध्यान क्यों देंगे। लेकिन जब माँ-बाप को यह समझ में

बाक्स 8.4. आंगनवाड़ी को सामाजिक संरक्षण

बहुत वर्षों से 'स्पंदन समाज सेवा समिति' के संस्थापक सीमा और प्रकाश ने मध्य प्रदेश के दलित समुदायों के बीच रहकर काम किया हैं। उन्होंने छह वर्ष तक के बच्चों के अधिकार को अभियान के मुख्य मुद्दे के तौर पर लिया है। अन्य पहलों में से एक उन्होंने दबिया गाँव (खंडवा जिला) के आंगनवड़ी नम्बर एक को "समुदाय द्वारा अपनाने" में सहायता की।

पहला कदम समुदाय को आंगनवाड़ियों का बाल विकास के लिए महत्व को बताने के लिए बातचीत था। सीमा तथा प्रकाश ने अपने अन्य सहमकर्मियों के साथ ग्रामीणों के साथ समय बिताया। उन्होंने उन्हें गाने सिखाये, कम कीमत के खिलौने बनाने में मदद की तथा पूर्व शाला शिक्षा तथा स्वास्थ्य जाँच के महत्व के बारे में बताया। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता तथा उनकी सहयोगी हमेशा उनके साथ रहती थीं तथा इस क्रिया ने उनकी लगन को बढ़ा दिया।

सीमा तथा प्रकाश ने महिला मंडल को भी इस प्रक्रिया में शामिल होने के लिए तथा स्थानीय उत्पाद से बच्चों के खाने तैयार करने के लिये प्रोत्साहित किया। महिला मंडल की महिलाओं ने अभिभावकों तथा पूरे गाँव के अन्य लोगों से आईसीडीएस के बजट को बढ़ाने के लिये चंदा इकट्ठा किया।

सीमा तथा प्रकाश ने इस बातचीत के साथ-साथ आंगनवाड़ी का पुर्नउद्धार तथा उसे पुर्नजीवित करना शुरू कर दिया। ग्रामीणें ने आंगनवाड़ी को गुलाबी तथा नीचे चमकीले रंगों से रंगा। उन्होंने सभी दीवालों के अन्दर की तरफ नीचे ब्लैक बोर्ड के रूप में रंगा। वे सीखने वाले चार्ट, खिलौने तथा खाने के लिए प्लास्टि की कटोरियों खरीद लाये। इस पुर्नउद्धार की प्रक्रिया का खर्च मात्र 5000 रुपये के लगभग था।

मरम्मत हो गये आंगनवाड़ी का उद्घाटन 2 जनवरी 2006 को किया गया। यह आई.सी.डी. एस. के हिन्दी बुकलेट विमोचन का अवसर था। (प्रवेशिका के पूर्व ड्राफ्ट से लिया गया था) सीडीपीओ, डॉक्टर, सुपरवाइजर तथा एएनएम ने इस जलसे में भाग लिया।

सीमा तथा प्रकाश ने मुझे भी आमंत्रित किया था। हम जब आंगनवाड़ी पहुँचे। 55 से 60 बच्चे बैठे मिले। वे गाने गा रहे थे और उसका नाटकीय रूप प्रस्तुत कर रहे थे। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता तथा उसकी सहायक दो लड़कियों के साथ उपस्थित थीं। उनमें से एक लड़की बच्चों को खेल तथा मज़ेदार गतिविधियों द्वारा पढ़ा रही थी।

यह मजे की बात थी कि बच्चे आंगनवाड़ी कार्यकर्ता का नाम नहीं जानते थे पर उन्हें इस लड़की का नाम बहुत अच्छी तरह पता था और 'दलिया बाई' (सहायक) का नाम भी। वहाँ बहुत सारे चार्ट लगे थे जैसे अक्षर चार्ट तथा स्वास्थ्य चार्ट, खिलौने के अलावा ब्लॉक, चित्र थे। प्रसिद्ध महिलाओं जैसे कल्पना चावला तथा तीजन बाई के चित्रों वाले चार्ट भी वहाँ थे। जब हमने उन महिलाओं के बारे में पूछा, बच्चों ने आसानी से उनका नाम बताया दिया। एक बच्चे ने रोम अक्षरों को शृंखलाबद्ध A से Z तक और 15 के पहाड़े को कंठस्थ सुना दिया। इससे समुदाय में आंगनवाड़ी कार्यक्रम द्वारा अपने बच्चों के लिये पूर्व शाला शिक्षा के प्रति इच्छा की झलक मिलती है।

इस दौरान महिला मंडल की महिलायें बच्चों का खाना तैयार कर रही थीं। वे इकट्ठे किये गये चन्दे से सामान खरीद लायी थीं। सौ से अधिक बच्चे, जिनमें अन्य आंगनवाड़ी के बच्चे भी शामिल हैं, ने साथ बैठकर दाल-चावल खाया। बच्चें खाने का मजा ले रहे थे और उनके लिये पर्याप्त खाना था।

मुझे लगा कि महिलाएं दो बातें इस खाने द्वारा बताना चाहती थीं। पहला कि स्थानीय खाना बच्चे ज्यादा पसंद करते हैं बजाये कि पहले से पकाये या पैकेट वाले खाने के। दूसरा कि पोषक भोजन को स्थानीय सामान के जरिये बनाया जा सकता है, वह भी 'दो रुपये प्रति बच्चे' के नियम के अन्दर।

दबिया एक मात्र गाँव है, लेकिन इस पहल का असर-असर दूर-दूर तक होने की सम्भावना है। सीमा तथा प्रकाश अन्य आंगनवाड़ियों के कार्यकर्ताओं को दबिया गाँव दिखाने की योजना बना रहे हैं। दैनिक भास्कर में यह खबर छपी तथा स्थानीय सम्पादक खंडवा जिले के 40 आंगनवाड़ियों को अपना कर उसे सहयोग देना चाह रहे हैं।

सहयोग – नवज्योति

आ जाए कि आंगनवाड़ी उसके बच्चों के शारीरिक, मानसिक और शैक्षिक विकास में सहायक है तो फिर तो वे जरूर आंगनवाड़ी के कामकाज में दिलचस्पी लेंगे, अपनी क्षमता भर मदद भी करेंगे। फिर आंगनवाड़ी गांव में दलिया केन्द्र बने रहने की जगह सबकी सक्रियता और गौरव का केन्द्र बन जाएगा। हम इस मामले में स्थानीय लोगों का समर्थन किस तरह पा सकते हैं, इस बारे में कुछ निम्नलिखित सुझाव हैं :

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को पूरे हफ्ते अपने केन्द्र का काम शानदार ढंग से करने में जरूर मदद दें; बच्चों के लिए पौष्टिक और साफ-सुथरा खाना, उसके साथ रचनात्मक गतिविधियां, उनके स्वास्थ्य के विकास की जांच बगैरह के काम को एकदम बढ़िया बनाने में मदद कीजिए। जब बच्चे आंगनवाड़ी से लौट कर वहाँ के किस्से सुनाते हैं, वहां सीखे गीत और तुकबंदियां सुनाते हैं तो माताओं को बहुत अच्छा लगता है। अच्छी तरह चलने वाली आंगनवाड़ी के अनुभव में सभी वर्गों को लोग और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, सभी इसके कामों में और ज्यादा रुचि लेना शुरू करते हैं। सम्भव हो तो किसी एक विशेष दिन को चुनकर 'आंगनवाड़ी दिवस' आयोजित करें जो मेले जैसे स्वरूप का हो।

एक अन्य काम आंगनवाड़ी को दिलचस्पी लेकर रंगने-पोतने का है, जिसमें इसके प्रति सहज रूप से सबका ध्यान आकर्षित हो। यह काम पूरे कार्यक्रम की भागीदारी

बाक्स 8.5 मोबाइल क्रेश

"नौकरीवाड़ी जिन्दाबाद"!
"पैसावाड़ी जिन्दाबाद"!
"आंगनवाड़ी जिन्दाबाद"!

ये नारे लगाती हुई एक भीड़ कुर्ताधारी नेताओं के पीछे-पीछे बैनर लेकर चली जा रही थी। जगह थी पश्चिम-दक्षिण का किंग्ज़ प्लेस, जहाँ मिलिट्री इंजीनियर सर्विस से कमिशन पाने वाले ठेकदारों के गोदाम बने हुए थे और वहाँ करीब 200 मजदूरों की झुग्गियों व उनके परिवार थे। उनमें से ज्यादातर बिहार के प्रवासी थे और निर्माण कार्य में लगे हुए थे।

यह कोई चुनाव का समय नहीं था फिर यहा नेता क्यों थे। गौर से देखने पर पता चला कि ये मोबाइल क्रेश से जुड़े पुराने बच्चे थे जो अब किशोर हो चुके है। वे नकली मूछों को लगाकर लोकदूत नुक्कड़ नाटक के बैनर तले ये काम कर रहे थे। जब दो उम्मीदवारों ने नौकरी समृद्धि के हवाई वादे किए तब आंगनवाड़ी पार्टी ने एक सचेत व सक्रिय समझ को रखा: छोटे बच्चों पर ध्यान दो, उन्हें मजबूत आधार दो, उनको ठीक स्वास्थ दो, सीखने और सामाजिक विकास का अवसर दो; नौकरी और पैसा पीछे-पीछे आयेगा। और उसने स्थानीय आंगनवाड़ी की हस्तक्षेप व बदलाव की मुख्य धुरी के तौर पर अनुशंसा की – अगर यह है तो उसका उपायोग करें, अगर नहीं है तो इसकी मांग करें और देखें कि यह काम कर रहा है।

इन मोबाईल क्रेशों के हस्तक्षेप ने कई तरह के रूप लिए, जिनमें से कि यह एक है दूसरे तरह के हस्तक्षेपों का विस्तार, घर पर क्रेश चलाने वाली सीमापुरी की महिला के प्रशिक्षण से झारखण्ड के सुदूर गांव में रहने वाली महिला तक जाता है। ये सब 37 साल से चल रही इस यात्रा के पड़ाव रहे हैं। 1969 में पहला मोबाइल क्रेश गाँधीजी की समाधी राजघाट पर बनाया गया; निर्माण कार्य में लगे मजदूरों के उन बच्चों के लिए जो अब तक उपेक्षित थे – यह उन मोबाईल समूहों में से एक था जो खेतिहर, ईंट-भट्ठा पर करने वाले, नमक का काम करने वाले ऐसे मजदूर जो कि काम की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह जाते है, के लिए था। मोबाइल क्रेश ने इधर-उधर भटकती हुई इस आबादी, खास तौर से उनके बच्चों की बुरी स्थिति को समझा।

"मोबाइल क्रेश ने 'छह वर्ष से कम के प्रवासी बच्चों' की समस्या को तीन हिस्सों में रखा, जो – शिशुओं का प्रवास, प्रवास के दौरान वैसा काम जो स्तनपान को असम्भव बना देता है में देरी, रोग सुरक्षा में कोताही, और जो कुपोषण और यहाँ तक कि बाल-मृत्यु का कारण बनती है। पूर्व-स्कूल के बच्चों को यह आई.सी.डी.एस. और पूर्व-स्कूल की अन्य सुविधाओं तक पहुँचने से रोकती है और भावनात्क व संज्ञानात्मक विकास में कई तरह के समझौते करती हैं।

लेबर मोबलिटी और राईट ऑफ चाईल्ड पर मोबाइल क्रेश (दिल्ली, 2006) की परामर्श रिपोर्ट।

किसी भी जगह हस्तक्षेप की सबसे बड़ी चुनौती रही है, प्रवेश : मुख्य नियोक्ता, उद्यमी या प्रबन्धक से बातचीत। एक बार पहुँचने के बाद आपका सामना होता है – परिवारों/बच्चों की संख्या, परियोजना की लम्बाई, स्टाफ के लिए दूरी और यात्रा समय – इससे हमें अपेक्षित व्यस्तता की लागत और फायदों का अंदाज मिलता है। इसके बाद बिल्डर से मोल-भाव शुरू होता है। ताकि वह भौतिक संसाधन, लोग व पैसा उपलब्ध करायें। छह महीनों के भीतर ऐसे पाँच मामलों में एक जगह क्रेश शुरू हो जाता है।

मोबाइल क्रेश का केन्द्र कामकाज की जगह पर ही बनाये जाते हैं, झुग्गियों के बगल में जहाँ पर ये मजदूर रहते हैं। यह एक अस्थायी निर्माण होता है, 250 वर्ग फीट का, ईंटों और टिन की छत के साथ। कमरे को ईंट की दो छोटी-छोटी दीवारें बनाकर तीन भागों में बांट दिया जाता है। क्रेश के पास 2 साल और उससे छेटे बच्चों के लिए कपड़े का पालना होता है, 3-5 साल के बच्चों की बालवाड़ी और छह साल और उससे बड़े बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र। अन्दरूनी भाग काफी रंगीन होती है जो बच्चों के बनाये चित्रों, शिक्षण सामग्री और उपस्थिति तालिका से सजा होता है। 9 बजे आकार मातायें अपने बच्चों को वहाँ दिन भर के लिए छोड़ जाती हैं। केन्द्र प्रमुख बच्चों की देखभाल करने वाले चार अन्य बालकर्मियों की मदद से प्रबन्ध करते हैं। सुबह के समय क्रेश के बच्चों को अनाज के दाने और दूध का मिश्रण खिलाया जाता है। पूरक पोषाहाकर, प्रत्येक बच्चे के लिए एक हेल्थ कार्ड और बहुत छोटे बच्चों की बारीकी से देखरेख इस कार्यक्रम के सबसे नाजुक हिस्से हैं। दोपहर के खाने के समय मातायें अपने बच्चों को स्तनपान कराती है – बगैर अपनी मजदूरी खोये। बालवाड़ी वाले हिस्से में खेलने के समान साधारण ही होते हैं – पीब्बल्स, बोतल के ढक्कन, रस्सियों के टुकड़े, कार्ड बोर्ड के कटे हुए हिस्से, लकड़ी के टुकड़े इत्यादि। उसके बाद सारे बच्चे एक गोल घेरे में बैठकर कहानी सुनते-सुनाते हैं। अनौपचारिक केन्द्रों के थोड़े से बड़े बच्चे काफी खुश रहते हैं क्योंकि अब उन्हें अपने से छोटे बच्चों के देखभाल के दायित्व से मुक्ति मिल जाती है। अगर वे वहाँ लम्बे समय तक रहते हैं तो उनमें से कुछ स्थानीय निगम स्कूल को जाते हैं। 5 बजे तक मातायें अपने काम से फारिग होकर लौट आती है और अपने बच्चों को वापस ले जाती हैं। वे सभी बच्चे अगली सुबह 9 बजे तक के लिए चले जाते हैं ...।

राजधानी में निर्माण उद्योग बदल रहा है। काम का मशीनीकरण हो रहा है और परियोजना छोटे होते जा रहे हैं। निर्माण गतिविधि अब दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों में फैल रहा है। उनमें ग्रेटर नोयडा, गाजियाबाद, फरीदाबाद और गुड़गांव भी शामिल हैं।

निर्माण क्षेत्रों पर बच्चों की देखभाल के सन्दर्भ में मोबाइल क्रेशों का सहयोग समय के साथ-साथ फैला और इसके लिए कुछ दिशा-निर्देश भी बने – जैसे प्रशिक्षित बाल देखभाल-कर्मी के लिए न्यूनतम भत्ता, न्यूनतम स्तर की भौतिक सुविधा और अधिक-से-अधिक साल का समय, परिणाम तक पहुँचने के लिए।

परम्परागत मॉडल – जिसमें मोबाईल क्रेश सेवायें उपलब्ध कराते थे और बिल्डर खर्चे का कुछ हिस्सा चुकाते थे, इससे वह रास्ता मिला जिसके जरिये बिल्डर को और व्यापक भूमिकाएँ मिलीं। ठेकेदार पोषण और शिक्षा सामग्री

उपलब्ध कराते थे, स्थानीय महिलाओं को मोबाइल क्रेश से प्रशिक्षित करवा कर बाल देखभाल कार्यक्रम चलवाते थे (शुरू से मोबाइल क्रेश के पर्यवेक्षण में)। विचार यह था कि ज्यादा से ज्यादा बच्चों तक पहुँचा जाये और स्थानीय समुदाय में से बाल देखभाल कर्मियों को तैयार किया जाये।

निर्माण क्षेत्रों और स्लम से मोबाईल क्रेश बाल देखभाल की जगह के साथ-साथ प्रशिक्षण क्षेत्र भी था जहाँ कई तरह के लोग थे – देखभाल करने वाले, सम्प्रेषण करने वाले, व लामबन्दी करने वाले। मोबाइल क्रेश के सामने कई चुनौतियाँ रही है – यह सुनिश्चित करना कि छोटे और प्रवासी बच्चे देखभाल, पोषण, स्वास्थ्य और पूर्व-स्कूल के दायरे में आ सकें; बाल देखभाल कर्मियों की पहचान और उनकी क्षमता में विकास कर, जिनके ऊपर ही छोटे बच्चों के सम्बन्ध में किसी भी हस्तक्षेप को पूरा करने का दारोमदार है; मजदूर, महिलाओं और बाल अधिकार मुहिम के साझे सरोकारों के मंच को मजबूती देना ई.सी.सी.डी. में इस अग्रणी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में 70 के दशक का भवन निर्माण बूम रहा है और प्रवासी बच्चे इसके मुख्य पात्र रहे हैं। अब हम एक नए तरह के युग से गुजर रहे हैं। जो हमसे एन.आर.आई. (अप्रभाव भारतीयों) के जीवन शैली के वादे कर रही है और जो उपभोक्ताओं और निवेशकों की नई पीढ़ी के सफल आई.पी.ओ. के कामयाब के उत्साह से चलेगी। प्रवासी मजदूरों की यह महाकथा विमल राय के उपन्यास पर आधारित बलराज साहनी के "दो बीघा जमीन" में दिखती है जो अब अप्रवासी भारतीयों के न्यूयार्क और लन्दन की सतही कहानियों में छुपती जा रही है।

अपनी जमीन से हट जाने की कथा और शहरों में हाशिए पर आने जाने की दास्तां अब सच्चाई बन रही है – अब यह सब कुछ 8.1 प्रतिशत व्यापार बढ़ोत्तरी के सुखान्त के साथ खत्म हो रहा है।

सहयोग – अंजलि एलेक्जेंडर

में होगा। दीवारों की रंगाई-पुताई के बाद उन पर फल, फूल और जानवरों वगैरह की तस्वीरें बनाई जा सकती हैं, जो बच्चों को उनके बारे में जानकारी दें। शिक्षक के लिए ब्लैकबोर्ड भी तैयार करने का काम साथ-साथ हो सकता है। इसमें आंगनवाड़ी खिल उठेगी और बच्चों को यहां आना अच्छा लगेगा। ऐसा बच्चों के माँ-बाप के साथ भी होगा।

बच्चे खिलौना और खेल-खेल में ही नई चीज़ें सीखना पसंद करते हैं। सो उनके लिए सीखने वाले खिलौने बनाने का काम सामूहिक रूप से किया जा सकता है जिसमें बच्चों के माँ-बाप, पड़ोसी, बड़े भाई-बहन, सभी हिस्सेदारी कर सकते हैं। और इस काम के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सस्ती चीजों का भी उपयोग कर सकते हैं। जैसे – पुराने अखबार, रद्दी पत्रिकाएं, पुराने कपड़े, खेती से निकाले रद्दी सामान, गत्ते या पुराने हवाई चप्पलों को काटकर अक्षर बनाने जैसे काफी सारे प्रयोग हो सकते है। लोगों को ऐस काम करने में आनंद आता है और फिर उनके काम से गली या मुहल्ले के बच्चों को मुफ्त या बहुत कम लागत पर लिखने और सीखने लायक खिलौने मिल जाते हैं।

बच्चों के आहार में ताज़ी सब्ज़ियां ज़रूर होनी चाहिए और आंगनवाड़ी के आसपास खुली जगह हो तो उसमें सब्जियों लगाना कई तरह से लाभप्रद होगा।

बच्चों के स्वास्थ्य की दृष्टि में आंगनवाडी का साफ होना जरूरी है और सफाई के काम में अगर बच्चों के परिवार वालों को भागीदार बनाया जाए तो यह बहुत लाभ करेगा।

अच्छे पोषण के बारे में जानकारी होना बहुत जरूरी है। अक्सर कुपोषण का कारण घर में भोजन का अभाव होना स्वास्थ्यकर भोजन के बारे में जानकारी का अभाव होता है। अगर ऐसा मेला आयोजित किया जाता है तो इस परियोजना से जुड़े डॉक्टर और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता जानकारी देने का काम कर सकते हैं। ऐसे मेलों में सिर्फ बच्चों के आहार और पोषण की जगह गर्भवती औरतों और लरकोरी महिलाओं के आहार और पोषक पदार्थों के बारे में भी जानकारी दी जा सकती है।

बच्चों के अधिकारों की रक्षा शासन की जिम्मेदारी ज़रूर है, पर यह नागरिकों और संगठनों को भागीदारी करने से नहीं रोकता। जमीनी स्तर पर रचनात्मक पहल में ही सबको स्तरीय सेवा देने का लक्ष्य हासिल किया जा सकता है। यह नए तरीके अपनाने का, मुद्दों को समझने का नया अवसर भी है। और नागरिकों की पहल का मतलब सरकार का हाथ झाड़ लेना नहीं होना चाहिए। दोनों ओर से सक्रियता अच्छे से अच्छा नतीजा देती जो गुजरात में 'सेवा' (देखें अध्याय 1 व 6) के अनुभव में हमने देखा है। अन्य उदाहरण साथ के बाक्स में दिये गये हैं।

8.4. प्रचार अभियान, मीडिया और अनुसंधान

कुछ समस्याओं को स्थानीय स्तर पर सुलझाना मुकिश्ल है और उनके लिए उच्चतर स्तर के नीतिगत बदलाव जरूरी होते हैं। जैसे, अगर पूरक पोषाहार का बजट प्रावधान कम है तो आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और निगरानी अधिकारी कुछ खास करने की स्थिति में नहीं होते। बजट आवंटन का काम राज्य और केन्द्र

बाक्स 8.6. बच्चों के साथ सीखना

रामकुमारी अमृत कौर बाल अध्ययन केन्द्र दिल्ली स्थित लेडी इर्विन कॉलेज का अभिन्न हिस्सा है। यह इस कॉलेज को मिले 100 रुपए के चेक से शुरु हुआ था राजकुमारी अमृत कौर, रेड क्रास और एल्यिश न्यूयार्क स्टेट के शिक्षक संगठन के साथ ही कॉलेज के पुराने और नए छात्रों के चंदों से कॉलेजे ने स्कूल पूर्व शिक्षा का यह काम शुरू किया। कॉलेज परिसर में स्कूल पूर्व शिक्षा की व्यवस्था करने का उद्देश्य यहाँ के छात्रों को बाल विकास और शिशु शिक्षा के बारे में व्यवहारिक अनुभव देना था। इस केन्द्र की संस्थापक शिक्षक मिस मैथ्युज बताती हैं, कि किस तरह एक सुबह लेडी इर्विन कॉलेज की निदेशक श्रीमती तारा बाई आईं और कहा, "यह रहा 100 रुपए और स्कूल शुरू करो।" फिर उन्होंने पूछा, "न इमारत, न उपकरण और न बच्चे। हम स्कूल कैसे शुरू करेंगे।" श्रीमती ताराबाई ने कहा, "यही तो आपका काम है।"

अभी केन्द्र करीब 250 बच्चों के विकास और शिक्षा की जरूरतों का ख्याल रखता है। बच्चे 12 वर्ष तक के हैं इसमें अलग-अलग शारीरिक और मानसिक क्षमता वाले 50 बच्चे भी शामिल हैं। यहाँ बच्चों की देखरेख और पढाई के कई कार्यक्रम चलते हैं जिसमें प्ले सेन्टर, नर्सरी स्कूल, विशेष जरूरत वाले बच्चों का प्री-स्कूल, डे-बोर्डिंग, 'सेतु' (नन्हें बच्चों के लिए), 'साथी' (परामर्श का कार्यक्रम), पेशेवर प्रशिक्षण और विशेष जरूरत वाले नौजवानों के लिए रोजगार का परामर्श देना शामिल है।

हर बच्चे को आदर करने के शैक्षिक आदर्शों बच्चों की शिक्षा के रचनात्मक तरीके विकसित किए गए हैं। उनका सीखना सिर्फ कक्षा तक सीमित नहीं है। बाहर, चिड़ियाघर, पार्क, डाकघर, संग्रहालय जाने वगैरह के माध्यम से बच्चों को कई तरह की नई चीज़ें सिखाई जाती हैं। उन्हें संगीत, नृत्य, नाटक की आरम्भिक सीख देना, चित्रकला वगैरह सिखाना भी स्कूल की पाठ्यचर्चा का अभिन्न हिस्सा है।

स्कूल की बुनियादी सिद्धान्त है कि बच्चे ही गतिविधियों और रूटीन का आधार तय करते हैं, कोई इंटरव्यू या एडमिशन टेस्ट नहीं होता; बच्चों की जरूरतों और अलग-अलग क्षमताओं का सम्मान होता है; उसी अनुरूप उनको मदद दी जाती है; पढ़ाई मातृभाषा में होती है; बच्चों को सीखने में परिवार की केन्द्रीय भूमिका मानी जाती है; कॉलेज के छात्र और अध्यापक अपने अनुसन्धान में नई चीज़ें जोड़ते हैं।

केन्द्र ने सदा स्थनीय समुदाय से रिश्ता बनाए रखने का प्रयास किया है। कामकाजी माताओं का चलन बढ़ने से बच्चों की वैकल्पिक देखरेख बढ़ाने की जरूरत महसूस की गई। इसने केन्द्र को 6 वर्ष से 12 वर्ष तक के बच्चों के लिए सुविधाएँ देने के लिए प्रेरित किया हैं। बच्चों की अलग-अलग क्षमता और जरूरत के हिसाब से केन्द्र में सुरक्षित और उत्साह जगाने वाला माहौल रखने का प्रयास किया गया है। 1980 से विशेष जरूरत वाले बच्चों के लिए भी साथ ही व्यवस्था की गई। मानसिक कमजोरी के शिकार 4 साल के बच्चे की माँ शान्ति औलक तब बाल विकास विभाग की प्रमुख डॉ. आनन्द लक्ष्मी के पास आईं और कहा, "आपके यहाँ आदर्श नर्सरी स्कूल है, भवन है, प्रशिक्षित स्टाफ है। अगर आप विकलांग बच्चों के लिए स्कूल नहीं शुरू करेंगी तो कौन करेगा?" अब केन्द्र में अनेक तरह की विकलांगकता वाले बच्चों का ख़याल रखा जाता है। इनमें कम मानसिक विकास, गूंगे, बहरे, दृष्टिकोण और अनेक तरह की चुनौतियों वाले बच्चे शामिल हैं। स्वस्थ्य बच्चों का साथ, शुरूआत में ही अच्छे प्रशिक्षित लोगों की मदद, व्यक्तिगत जरूरतों का ख़याल करके दी जाने वाली शिक्षा में ऐसे बच्चे अपनी कमजोरियों को कम से कम करने और अपनी क्षमताओं को ज्यादा से ज्यादा विकसित करने में सक्षम हो रहे हैं।

बच्चों के विकास में परिवारों की भूमिका भी महत्वहपूर्ण रहती है। 1992 से 'साथी' की परामर्श सेवा शुरू हुई है जो परिवारों को मदद करती है। इसमें बच्चों, उनके माँ-बाप और परिवारों को परामर्श दिया जाता है। विकलांग बच्चों को उनकी खास जरूरतों के लिए उनके घर-घर जाकर प्रशिक्षण भी उपलब्ध कराया जाता है। एक दिन तीन साल के बेटे अतुल को लिए उसकी माँ अनिता एक कॉर्डिनेटर के पास प्रवेश के लिए आई। अतुल विकलांग है, अनिता ने कहा, "मेरा बेटा सामान्य नहीं है, अगर आप दाखिला न देना चाहें तो भी मैं आपकी बात समझ सकती हूँ।' कॉर्डिनेटर ने उन्हें बैठाया, चाय दी और बातें शुरू कीं। अनिता ने एक घंटे से ज्यादा समय तक अपना किस्सा सुनाया कि किस तरह एक हादसे में उसके पति की जान गई थी और किस मुश्किल से उसने परिवार को सम्भाला, बच्चे की विकलांगता का सदमा उठाया और ससुराल वालों के तिरस्कार के बाद भी अपना जीवन सम्भाला। जब बातचीत खत्म हुई तो अनिता ने रोते हुए कहा, "मुझसे आज तक किसी ने नहीं पूछा कि मुझे कैसा लगता है। सबका ध्यान बच्चे पर, और वह भी विकलांगता पर केन्द्रित रहता है। आज इतनी बात करके मुझे लगता है कि मैं भी कोई हूँ।"

केन्द्र गरीब परिवारों के बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेवारी भी समझता है। बाहर के लोग यहाँ के खर्चों को उठने में मदद करते हैं और अच्छे परिवारों से आए बच्चों के माँ-बाप भी किसी और बच्चे का खर्च उठना स्वीकार करते हैं। केन्द्र बाल कल्याण, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले ऐसे अन्य संस्थानों के बीच समन्वय का काम भी करता है।

सहयोग – इंदु कौड़ा और श्रद्धा कपूर

बाक्स 8.7. दिल्ली में बाल अधिकार यात्रा

"बहुत से ईमानदार नौजवान सारी ज़िन्दगी गरीबों में अनाज बाँटकर या बीमारों की सेवा करके ही संतुष्ट हो जाते है। यह अच्छे और आत्म त्यागी लोग है, लेकिन वे यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि भारत में भूख और गरीबी की समस्या को खैरात के माध्यम से हल नहीं किया जा सकता। – भगत सिंह (भगत सिंह के दस्तावेज़, सम्पा. चमन लाल, आधार प्रकाशन, पंचकुला, चंडीगढ़)

दिल्ली में छह वर्ष से कम उम्र के 20 लाख हैं। जिनमें से आधे झुग्गी, पुनर्वास बस्तियों और अवैध कॉलोनियों में रहते हैं, जहाँ आंगनवाड़ियाँ बहुत कम हैं। दिल्ली में एकीकृत बाल विकास सेवाओं का लाभ सिर्फ 4,42,800 बच्चों को ही मिलता है जो कुल संख्या का चौथाई से भी कम है। आंगनवाड़ी योजना में झुग्गी बस्तियों, पुनर्वास और अवैध कॉलोनियों के कितने बच्चे आते हैं, इसका आँकड़ा उपलब्ध नहीं है और मुश्किलों को और बढ़ाते हुए इधर, शहर को खुबसूरत बनाने के नाम पर बस्तियां उजाड़ने की जो मुहिम चली है उसने काफी सारे परिवारों का जीना मुहाल कर दिया है – ऐसे में बच्चों की पढ़ाई और स्वास्थ्य की सुध किसे है।

नवम्बर में 14 से 21 तक किसी भी स्लम और पुनर्वास बस्तियों में निकली बाल अधिकार यात्रा में यह नारा आम था, "सेहत, शिक्षा, पोषाहार – हर बच्चे का ये अधिकार"। इस यात्रा का उद्देश्य हर बस्ती में आंगनवाड़ी बनाने के लिए सरकार पर दबाव बनाना था। सुप्रीम कोर्ट का ऐसा स्पष्ट आदेश है और दिल्ली में भी इस पर पूरा अमल नहीं हुआ है। इसमें छोटे बच्चों, किशोरियों, गर्भवती और लरकोरी औरतों को पर्याप्त पोषण, स्वास्थ्य की देखरेख और अन्य सेवाओं का लाभ मिलेगा। इस यात्रा का आयोजन अनेक स्वयं सेवी संगठनों, मजदूर संगठनों की महिला शाखाओं और राइट टू फूड अभियान ने साझा रूप से किया था।

सीमित संसाधनों के बावजूद हमने इस अभियान में ज्यादा से ज्यादा आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं बच्चों के माँ-बाप व सामाजिक कार्यकर्ताओं को शामिल करने का प्रयास किया। कला जत्था को इसके लिए जो वक्त देना तय किया उसमें ही उत्तर, उत्तर-पश्चिम (पुनर्वास कॉलोनियों की पांत), दक्षिण और पश्चिम दिल्ली में उसे ले जाया गया। नुक्कड़ नाटक, गानों, रैलियों, चित्र कला प्रतियोगिताओं और दीवार चित्रों का सहारा भी लिया गया। अनेक जगहों पर बाल मेला और हस्ताक्षर अभियान चलाया गया।

बाल अधिकार यात्रा की खूबसूरती इसकी विविधता थी। इस प्रक्रिया में काफी सारे लोग और संगठन जुटे और लम्बी तथा गर्मागर्म बातचीत के बाद यात्रा की कार्यक्रम समिति बनी। सभी बस्तियों में आंगनबाड़ी की मांग के लिए न्यूनतम कार्यक्रम बने। कार्यक्रमों के अलावा साधन और धन जुटाने पर भी काफी बात हुई। शुरू में दो महीनों तक व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास तो हुआ पर ठीक-ठाक पैसा जमा न हो पाने के बाद पैसों के लिए एक आम अपील जारी की गई – सब मिलाकर डेढ़ लाख रुपए जुट गए।

यात्रा मदनपुर खादर पुनर्वास कॉलोनी से शुरू हुई। इस इलाके की आंगनवाड़ियों की कार्यकर्ताओं के साथ पांच संगठनों के लोगों ने इसका आयोजन किया। इसके बाद यात्रा कुसुमपुर पहाड़ी, होलम्बी कलां, दक्षिणपुरी, खानपुर, जे.जे. कॉलोनी, रोहिणी, द्वारका, त्रिलोकपुरी, सीमापुरी और खजूरी इलाकों में गई। हर जगह तीन सौ से लेकर चार सौ तक लोग इसमें शामिल हुए। कला जत्था ने नुक्कड़ नाटक किए और गाने गाए। इनके जरिए ही बुनियादी संदेश देने की कोशिश की गई और समुदाय में चेतना फैलाने का प्रयास किया गया।

अभियान के आखिरी दिन बाल अधिकार सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें इस योजना में भागीदार लोग आए। इनमें सरकारी, गैर-सरकारी और सामुदायिक संगठनों के लोग शामिल हुए। यहाँ मुख्य नारा था, "अभी तो ये अंगड़ाई है, आगे और लड़ाई है"। राइट टू फूड सचिवालय के विशेष आयुक्त हर्ष मुंदर, एकीकृत बाल विकास सेवा योजना की संयुक्त सचिव रश्मि सिंह, आयुक्त की सलाहकार डॉ. वंदना प्रसाद के साथ ही योजना में भागीदारी करने वाले करीब एक हजार लोग दिल्ली के 80 गैर-सरकारी संगठनों ने इसमें भाग लिया। बाल अधिकार यात्रा के संयोजक ने सम्मेलन में अपनी रिपोर्ट रखी और इस अभियान में लगे लोगों ने अपने अनुभव सुझाए। समुदाय के प्रतिनिधियों ने आंगनवाड़ियों की स्थिति और चेतना जगाने में बाल अभियान यात्रा ने प्रयासों के बारे में अपनी राय रखी।

जब कला जत्था के लोग रोहिणी, सेक्टर-24 में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे थे तभी वहाँ से छह साल से कम उम्र के बच्चे की शव यात्रा निकली। वहाँ मौजूद समुदाय के किसी भी व्यक्ति ने न तो कार्यक्रम रोकने को कहा न टालने को। यह समुदाय की 'संवेदनशीलता' को बताता है। पर अभियान के दौरान लोगों का रुख देखकर हमें राहत महसूस हुई कि वे अपने अधिकारों के लिए लड़ने से लेकर अपने इलाके की आंगनवाड़ी के अच्छे कामकाज के लिए मुस्तैद हैं।

सहयोग – गुरमिन्दर सिंह

सरकारों का है।

नीतिगत बदलावों के लिए उनके पक्ष में प्रचार और दबाव बनाने की ज़रूरत होती है। इसमें विधायकों से मिलकर इसके पक्ष में उनको राजी करना, मुख्यमंत्री को अर्जी भेजना, राज्य की राजधानी में रैली निकालना, अखबारों में लेख लिखना, बयान देना जैसी गतिविधियां चलाने की जरूरत होती है। जैसे सुप्रीम कोर्ट के

बाक्स 8.8. भूख और मीडिया

मध्य प्रदेश का नाम, उच्च स्तर के बाल कुपोषण और ज़िन्दा बच जाने के कम दर का पर्याय बन चुका है। फिर भी इससे जुड़े हुए तथ्य मीडिया की मुख्य धारा में बामुश्किल ही आ पाते हैं। 2001 से पहले, जब मध्य प्रदेश में *राइट टू फूड* ने, संगठित होकर काम करना शुरू किया, मीडिया बामुश्किल ही बाल पोषण से जुड़े हुए बहस को, तथ्य और सूचनाओं के साथ, चलाता था।

भूख से मौत हमेशा से ही एक राजनैतिक मामला रहा है, जो आरोप-प्रत्यारोपों के विवादों की ओर तो बढ़ा लेकिन किसी स्वस्थ बहस में तब्दील नहीं हुआ। सरकार ने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि – कुपोषण और भूख से कभी कोई मौत हुई है और मुख्य मुद्दा बहस और चर्चा की भूल-भूलैय्या में खो गया। मीडिया ने भी सरकारी तर्क को ही सामने रखा। इस नज़रिये को बदलना मीडिया *एडवोकेसी* के लिए मुख्य चुनौती है।

2001-02 के दौरान, मध्य प्रदेश में केवल 2 लेख और 270 खबरें दिखीं, उनमें से भी ज्यादातर, प्रोत्साहन देने वाले खबरें ही थीं। कुछ ज़मीनी सिविल संगठनों के साथ, 'विकास संवाद' नें स्थानीय मीडियाकर्मियों का प्रशिक्षण शुरू किया; और संवेदनशील पत्रकारों के साथ मिलकर कुपोषण के वैज्ञानिक और सामाजिक पक्षों को उभारते हुए एक चर्चा शुरू की। इस बात को समझते हुए कि सूचनाओं के सन्दर्भ में मीडिया की अपनी जरूरत (सटीक तथ्य, जिनसे खबर बने) होती है, हमने आई.सी.डी.एस. और कुपोषण से जुड़ी हुई सूचनाओं को फैलाया।

2004 में, शिवुपरी जिले के सहरिया बच्चों के कुपोषण से जुड़ी रिपोर्ट को, एक रणनीति के तहत जारी किया गया। इसके बाद शिवपुरी ज़िले के पास पातालगढ़ गाँव, जो कि एक सहरिया बहुल क्षेत्र है, में कुपोषण के चलते 13 बच्चों की मौत का बृहत विश्लेषण किया गया। अप्रैल-मई 2005 में, गंजबसोड़ा तहसील (विदिशा ज़िला) में तथ्यों का पता लगाने के लिए एक टीम भेजी गई, वहाँ भी कुछ ऐसा ही हुआ, और एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की गई। इस बार 'विकास संवाद' ने उस पर राज्य और राष्ट्र के प्रतिष्ठित अखबारों में चर्चा करी, बजाए उसे प्रेस कॉन्फ्रेन्स में जारी किया जाए। एक सप्ताह बाद दैनिक जागरण (भारत में हिन्दी का एक बड़ा अखबार) ने गंजबसोड़ा की घटना पर एक खबर प्रकाशित की, और यह तय किया कि वह राज्य के दूसरे हिस्सों में कुपोषण और आई. सी.डी.एस. की स्थिति पर लेखों की एक कड़ी प्रकाशित करेगा। दैनिक जागरण के "जागरण अभियान" में बाल कुपोषण और सम्बन्धित मसलों पर खबर, लेख, सम्पादकीय और अन्य मीडिया रिपोर्ट जारी किए गए। परिणामस्वरूप यह मसला सर्वोच्चा न्यायालय में पहुँचा और न्यायालय ने राज्य सरकार को सम्मन जारी किया।

भारत सरकार ने इन तमाम रिपोर्टों पर ध्यान दिया और अगस्त 2005 में गंजबसोड़ा के छह गाँवों को "विशेषरूप से प्रभावित क्षेत्र" घोषित किया। मध्य प्रदेश सरकार ने, परिणामस्वरूप इसी क्रम में यह स्वीकार किया कि परिस्थितियां गम्भीर थीं और भूख से मृत्यु के हादसों को नकारा नहीं जा सकता। उन छह गाँवों में अब झूलाघर हैं, जहाँ बच्चों को पोषण युक्त पूरक भोजन और अच्छे स्वास्थ्य के लिए देखरेख मिलती है।

इस उपलब्धि ने, विकास संवाद अभियान के अगले चरण की शुरुआत को चिन्हित किया। 18 अगस्त 2005 को भोपाल में एक प्रेस कॉन्फ्रेन्स का आयोजन हुआ। जहाँ पर मध्य प्रदेश में पोषण की दुरह स्थिति को दिखाया गया और खलवा ब्लॉक (खंडवा ज़िला) के आंगनवाड़ियों में बांटे जाने वाले फंगस लगे दलिये को प्रदर्शित किया गया। कॉन्फ्रेन्स के बाद ख़बरों और स्थिति को बताने वाले लेखों के ज़रिए सरकार को चेतावनी दी गई।

'आज तक' ने, जो एक राष्ट्रीय न्यूज़ चैनल है, इस मुद्दे पर अपनी खबर दी और अभियान के सहभागियों के साथ गाँवों का दौरा किया।

जब एक अखबार ने इए मुद्दे को उठाया तो अन्य मीडिया ग्रुप भी इस बहस में शामिल होने के लिए मज़बूर हो गए। जैसे-जैसे कुपोषण का मुद्दा बार-बार उभर कर सामने आया, उस समय विधानसभा का सत्र उसे नज़र-अंदाज़ नहीं कर पाया और गंजबसोड़ा मुद्दे पर एक ज़ोरदार बहस हुई। वे सामाजिक संगठन भी, जिन्होंने इसे अब तक एक गैर ज़रूरी मुद्दा माना था, मीडिया की खबरों से प्रभावित हुए। अब पहली बार महिला और बाल विकास विभाग, एक महत्वपूर्ण विभाग बना और उसने अपने बढ़े हुए बजट के साथ पर्यवेक्षण और मूल्यांकन पर ध्यान देना शुरू किया। बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण से जुड़ी कई परियोजनाएं और स्कीम लाई गईं।

यद्यपि पातालगढ़ शिवपुर में कुपोषण के कई गम्भीर मामले दोबारा सामने आए।

कमिश्नर, सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के बावजूद और पहले हुई भूख से मौत पर मीडिया ने सवाल उठाया कि सरकार ज़िम्मेदार क्यों नहीं है? पातालगढ़ रिपोर्ट (2006) को सबसे पहले स्थानीय मीडिया में दिया गया था लेकिन उसको उसमें जगह नहीं मिली। जब एनडीटीवी ने इस मसले को उठाया तो कई अन्य अंग्रेज़ी अखबारों जैसे हिन्दुस्तान टाइम्स, द हिन्दू, द स्टेट्समैन, और पायनियर ने भी इस खबर को बढ़ाया। फिर स्थानीय अखबारों ने भी ऐसा ही किया। जब कभी भी कुपोषण से हुई मौत का ज़िक्र हुआ, यह कई और बृहत्तर मामलों से जुड़ा जैसे बजट का प्रावधान और संरचनात्मक बदलाव।

'सूचनों के अधिकार' मीडिया के हाथों में एक प्रमुख औजार है। उपभोक्तावाद की आँधी में मीडिया की प्राथमिकतायें बाली है लेकिन वह अपने सामाजिक दायित्व से नहीं मुकर सकता। मीडिया प्रवक्ता उन तमाम चीज़ों को इस्तेमाल में लाने की कोशिश करते हैं, जो उपलब्ध होती हैं। अब शायद ही कोई ऐसा दिन होता हो जब खाद्य सुरक्षा और बाल पोषणसे जुड़ा कोई न कोई मसला मीडिया में न दिखे। 2771 से ज्यादा खबरें प्रकाशित हो चुकी है और विश्लेषणों में और गहराई आई है। दैनिक अखबारों के स्थानीय और जिला कार्यालय पोषण के मामलों को रुटीन में छापते हैं।

सहयोग – सचिन कुमार जैन

आदेश के अनुसार हर बस्ती में आंगनवाड़ी बनाने का काम अकेले नहीं हो सकता – इसमें राज्य स्तरीय अभियान चलाना होगा। इस अध्याय के बाक्स लेख बताते हैं कि इस उद्देश्य के लिए किस तरह से विभिन्न अभियान चलाए जा सकते हैं।

अगर आप ऐसे अभियान चलाना चाहते हैं तो कभी भी मीडिया को न भूलें। आप दैनिक अखबार और टीवी के जरिए अब बहुत कम समय में ज्यादा से ज्यादा लोगों तक अपनी बातें पहुंचा सकते हैं। साथ ही नेता हों या नौकरशाह वे मीडिया द्वारा 'प्रतिकूल' बातें छापने – प्रमाणित करने के मामले पर बहुत सचेत होते हैं। सो उनको इन वांछित मुद्दों पर चौकस करने का यह सबसे अच्छा तरीका है। पर एकीकृत बाल विकास सेवा जैसे सामाजिक मुद्दों पर पर सचेत पत्रकारों से मित्रवत सम्पर्क बनायें, न्यूज बनाने लायक जानकारियां जुटा कर उनको उपलब्ध करायें और प्रेस कांफ्रेस करने जैसे कामों में समय, श्रम और ऊर्जा सबका खर्च होता है। अब इस काम को बिना किए भी नहीं रहा जा सकता। सो बेहतर तरीका है कि कुछ अनुभवी लोगों की सलाह और कुछ अपनी प्रेरणा से काम शुरू किया जाए। मीडिया में प्रभावी अभियान चला लेना आसान नहीं है पर यह अपना काम आगे बढ़ाने का बहुत ही उपयोगी माध्यम है।

अपने काम को लेकर शोध और अनुसंधान भी काफी उपयोगी होता है। अगर आपने अच्छे तर्क और तथ्य जुटा लिए हैं तो संबंधित अधिकारी आपकी मांगों की उपेक्षा नहीं कर सकता। मीडिया के काम की तरह यहां भी आपको काम करते हुए ही सीखना है और इस काम को भी काफी मेहनत से करने की जरूरत है। लेकिन पहले हुए अध्ययनों और सर्वेक्षणों से भी काफी कुछ सीखा जा सकता है। जैसे, अभी-अभी छह राज्यों – छत्तीसगढ़, हिमालच प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में आंगनवाड़ियों में काम-काज का एक व्यापक सर्वेक्षण हुआ था। 'राइट टू फूड' अभियान के वेबसाइट (www.rigjttofoodindia.org) पर इस सर्वेक्षण से सम्बन्धित जानकारियां उपलब्ध है इसी वेबसाइट का आपको इस सर्वेक्षण के दौरान इस्तेमाल की गई प्रश्नावलिया, सर्वेक्षणकर्त्ताओं के लिए दिशा-निर्देश और अन्य काफी सारी सामग्री मिल जाएगी।

8.5. छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों का भविष्य

यह अक्सर कहा जाता है कि "भविष्य को लेकर पहले जैसे सपने अब कहाँ है?" इस टिप्पणी में अतीत के प्रति ललक का भाव रहता है पर भारतीय बच्चों के सन्दर्भ में यह कहना पूरी तरह बेमानी भी नहीं है। निश्चित रूप से इसने हमारे पास आज असंख्य बच्चों के लिए मौजूद सम्भावनाओं को मिटाने और असमानताएं खत्म करने की अपार सम्भावनाएं है पर हमने अभी तक इन सम्भावनाओं को बर्बाद ही होने दिया है। पर आज, पहले की तुलना में बच्चों का भविष्य ज्यादा बेहतर होगा यह हमारे हाथ में है।

इस रिपोर्ट में हमने मौजूदा स्थिति में दोनों पक्षों – धनात्मक और ऋणात्मक बातों को बताने का प्रयास किया है। पर धनात्मक नतीजे उन राज्यों में ज्यादा हैं जहां सिर्फ आर्थिक विकास ही नहीं सामाजिक स्तर पर सक्रियता रखी गई है। अब उन सफलताओं को कैसे ही दूसरी जगह पर लेना है इसमें आसानी नहीं है। कुछ राज्यों में राजनैतिक और सामाजिक माहौल बदलने का निश्चित असर हो रहा है – हिमाचल प्रदेश और तमिलनाडु इसके उदाहरण है। आज भारत का लोकतंत्र इस सब लोगों को यह सब करने की आजादी देता है।

आखिर में

अगर आपको यह रिपोर्ट उपयोगी लगी हो तो इसे अन्य लोगो को भी पढ़ाएं। यह काम निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है – इस रिपोर्ट पर सामुहिक पाठ और चर्चा आयोजित करके; स्थानीय भाषा में इसका अनुवाद करके; रिपोर्ट के कुछ अंशों को पोस्टर और परचे में लेकर। जैसे सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बारे में बाक्स 3 पर आधारित पोस्टर बनाकर उसे स्थानीय स्कूल, आंगनवाड़ी, संचालन भवन वगैरह में लगाया जा सकता है।

और जरूर याद रखें कि इस रिपोर्ट का हमें आपकी टिप्पणियो और सुझावों का इंतजार है। सम्भव है आपको इसमें प्रूफ की गलतियों समेत कुछ और गड़बड़ हुई हो तो उन्हें भी बताएं तो अच्छा लगेगा।

परिशिष्ट

11वीं योजना में 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चे

(पोषण की स्टीयरिंग समिति द्वारा योजना आयोग को भेजा गया सुझाव)*

अक्टूबर 2006

खण्ड – ए : एकीकृत बाल विकास सेवाएं (आईसीडीएस)

खण्ड – बी : मातृत्व भत्ता

खण्ड – सी : क्रेश और डे-केयर प्रबन्ध

खण्ड – डी : शिशु और छोटे बच्चों का भोजन (आई.वाई.सी.एफ.)

---

* इन सुझावों को छह वर्ष से छोटी उम्र के बच्चों के अधिकार पर नागरिकों की पहल से तैयार किया गया, जिसका आधार 7-9 अप्रैल 2006 को हैदराबाद में बच्चों के भोजन के अधिकार पर हुए सम्मेलन की कार्यवाही है। जिसे कि भोजन के अधिकार पर अभियान के एक हिस्से के तौर पर आयोजित किया गया। जिसमें बाद में इस मुद्दें से जुड़े व्यक्तियों और संस्थाओं के मांग-पत्र भी रहे हैं। सम्मेलन की रिपोर्ट और सम्बन्धित दस्तावेज www.righttofoodindia.org पर मौजूद हैं। आईसीडीएस पर दिये गये इन सुझावों का आधार खाद्य और पोषण सुरक्षा पर बनाये गये तीसरे उप-समूह का काम रहा भी है।

खण्ड - ए : एकीकृत बाल विकास सेवाएं (आईसीडीएस)

I. सामान्य सुझाव

I.1. उद्देश्य

1. समता के साथ सार्वभौमीकरण : 11वीं योजना में आईसीडीएस का केन्द्रीय उद्देश्य समता के साथ सार्वभौमिकता का है।

इसमें ये चीज़ें शामिल होनी चाहिये : (1) प्रत्येक बस्ती में एक सुचारु ढंग से चलने वाला आंगनवाड़ी होना सुनिश्चित किया जाये। (2) यह सुनिश्चित किया जाये कि छह साल से कम उम्र के प्रत्येक बच्चे और सभी ज़रूरतमंद योग्य महिलाओं की पहुंच आईसीडीएस सेवाओं तक हो। (3) आईसीडीएस सेवाओं की गुणवत्ता को बढ़ाया जाये।

I.2. आईसीडीएस का विस्तार

2: सार्वभौमिक विस्तार : प्रत्येक घर की आंगनवाड़ी केन्द्र (या लघु-आंगनवाड़ी, कुछ समय के लिए, उस स्थिति में जहां छोटी बस्ती है) तक आसान व सुविधाजनक पहुंच हो।

3. सुधरे हुए मानक : आंगनवाड़ी के बनाये जाने और उसकी जगह के निर्धारण के लिए 'जनसंख्या के मानक' की समीक्षा की जानी चाहिये, जो कि समता के साथ सार्वभौमिकता के लक्ष्य के मद्देनज़र हो। इन सुधारे हुए मानकों के ज़रिये यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक घर की आंगनवाड़ी तक सुविधाजनक पहुंच बन सके (या लघु-आंगनवाड़ी तक, जैसा भी उपयुक्त हो।) इस सुधरे हुए मानकों को लेकर हमारा सुझाव परिशिष्ट में दिया गया है।

4. मांग पर आंगनवाड़ी : इन 'सुधरे हुए मानकों' को लेकर सम्भावित असफलता से बचने की दृष्टि से, ग्रामीण समुदाय और झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाले लोगों की "मांग पर आंगनवाड़ी" के लिए अधिकृत किया जाना चाहिए (जो कि, तीन महीने, के भीतर ही), यह वैसी बस्तियों के मामले में होगा जहां छह वर्ष से छोटे 50 बच्चे हैं, लेकिन कोई आगनवाड़ी नहीं है। इन बस्तियों की सूची, जो कि आंगनवाड़ी की मांग कर सकते हैं, को तीन साल के दरमियान बढ़ाया जाना चाहिए, जिसकी शुरुआत सर्वाधिक उपेक्षित समुदाय (उदाहरण – अनुसूचित जाति/जनजातियों की बस्ती या शहरी झुग्गी-झोंपड़ी बस्तियां) से हो और इसका अन्त सभी बस्तियों तक जाकर हो।

5. खुला पंजीकरण : छह वर्ष से छोटे प्रत्येक बच्चे को स्थानीय आंगनवाड़ी में पंजीकृत किये जाने के योग्य माना जाना चाहिए उम्र के अलावा कोई भी अन्य योग्यता नहीं मांगी जानी चाहिए (और खासतौर से 'बी.पी.एल.' परिवारों पर आईसीडीएस में कोई अवरोध नहीं होना चाािहए), और किसी भी आंगनवाड़ी में बच्चों की संख्या को लेकर कोई भी अधिकतम संख्या जैसी चीज़ नहीं लगायी जानी चाहिए।

6. समूची सेवाएं : सभी आईसीडीएस सेवाएं इन सभी (छह वर्ष से छोटे बच्चे, गर्भवती महिलाएं, लरकोरी माताएं और किशोरियाँ) को उपलब्ध होनी चाहिए जो कि स्थानीय आंगनवाड़ी में अपना पंजीकरण करना चाहते है।

7. समयबद्ध सार्वभौमिकीकरण : सार्वभौमीकरण के लिए एक स्पष्ट समय सीमा (सुधरे हुए मानकों के आधार पर), जो कि पांच साल से अधिक न हो, को 11वीं योजना में साफ तौर से दिया जाये। हम इसके लिए 2010 तक लक्ष्य सीमा तय करने का सुझाव देते हैं।

8. समता : आईसीडीएस के दायरे को बढ़ाने की प्रक्रिया में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति बस्तियों और शहरी झुग्गी बस्तियों को प्राथमिकता दी जानी चाहिये। ग्रामीण क्षेत्र में इसके लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति बहुल वाली बस्तियों में एक सर्वे करना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि इन बस्तियों में नये आंगनवाड़ी खुले, काम करें, उसी समय में से जब तक कि इस समूह के लिए सार्वभौमीकरण का लक्ष्य न पा लिया जाये। अन्य वंचित समुदाय के लिए भी खास प्रावधान किए जाने चाहिए।

9. समावेश : हाशिये पर के बच्चो को आईसीडीएस में समावेशित करने के लिए खास प्रावधान बनाये जाने चाहियें, जिसमें कि अन्य तरह से सक्षम बच्चे, बेघर बच्चे और प्रवासी परिवारों के बच्चे शामिल हैं। उदाहरण के लिए प्रवासी बच्चों को नजदीकी आंगनवाड़ी में दाखिले की सुविधा और अधिकार मिलना चाहिये।

10. तीन साल से छोटे बच्चों पर विशेष ध्यान : तीन साल से छोटे सभी बच्चों तक विस्तारित आईसीडीएस को पहुंचाने के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए, जिसमें यह खास ध्यान रखना

होगा कि उससे 3-6 साल के बच्चों का हक किसी भी तरह से प्रभावित न हो। इसका मतलब यह हुआ कि इसके लिए प्रत्येक आंगनवाड़ी में एक ओर आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को रखा जाये (नीचे देखें)। जिसकी मुख्य भूमिका/दायित्व तीन साल से छोटे बच्चों के साथ-साथ गर्भवती और लरकोरी माताओं की देखभाल करना होगा। इस नये फोकस "शिशुओं और बच्चों का खान-पान" पोषण, सलाह, जन्म सम्बन्धी देखभाल और जुड़े हुए मसले ज़्यादा बड़ी सावधानी के साथ-साथ शामिल करने होंगे।

I.3 भौतिक सुविधाएँ

11. अपना भवन : 11वीं योजना के अन्त में प्रत्येक आंगनवाड़ी केन्द्र (एडब्ल्यूसी) के पास अपना पक्का भवन हो। इस उद्देश्य के लिए निर्माण-सूची दी जानी चाहिए साथ ही साथ भवन के रख-रखाव की राशि भी। आईसीडीएस के लिए जो वित्त प्रावधान किए जाएं उसका एक खास हिस्सा निर्माण कार्य को दिया जाये (जैसा कि सर्व शिक्षा अभियान में 30 प्रतिशत है।)

12. एनआरईजीए के साथ तालमेल : बड़े पैमाने पर आंगनवाड़ी केन्द्र के निर्माण कार्य के लिए – "आंगनवाड़ी केन्द्र निर्माण" को एनआरईजीए को निर्माण की इजाज़त देने वाली सूची में शामिल किया जाना चाहिए। इसे अलग-अलग सामग्री के लिए अतिरिक्त राशि मुहैय्या करायी जानी चाहिए, जिसमें भारत निर्माण, पिछड़ा क्षेत्र राशि और उससे सम्बन्धित स्रोतों से मदद ली जा सकती है।

13. न्यूनतम ससाधन : प्रत्येक आंगनवाड़ी केन्द्र में एक न्यूनतम सुविधा होनी चाहिए ताकि आईसीडीएस सेवाओं को दक्षतापूर्वक चलाया जा सके। इसके लिए जांच सूची बनायी जानी चाहिए (जिसमें, भार तोलन, भंडारन व्यवस्था, पीने का पानी, खाना बनाने के बर्तन, दवा-बाक्स, बच्चों के लिए उपयुक्त शौचायल, रसोई दलान, खिलौने इत्यादि शामिल हों।)

14 प्रत्येक आंगनवाड़ी केन्द्र को वार्षिक तौर पर संयुक्त राशि दी जानी चाहिए (जैसी कि संयुक्त राशि सर्व शिक्षा अभियान और राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा में दी जाती है।) ताकि आंगनवाड़ी केन्द्रों पर स्थानीय पहल से सुविधाओं और वातावरण में सुधार हो।

I.4 स्टाफ

15. दो कार्यकर्ताओं का मानक : प्रत्येक आंगनवाड़ी केन्द्र में कम-से-कम दो "आंगनवाड़ी कार्यकर्ता" (एडब्ल्यू-डब्ल्यूएस) और एक "आंगनवाड़ी सहायक" (एडब्ल्यूएच) होने चाहिए। दूसरे "आंगनवाड़ी कार्यकर्ता" की मुख्य जिम्मेदारी तीन साल से छोटे बच्चों, गर्भवती व लरकोरी माताओं का स्थानीय एक्रीडेटेड सोशल हेल्थ एक्टिविटी (आशा) अगर हो तो, के सहयोग से देखभाल करना होगा।

16. आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के सरोकार: आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को एक नियमित कुशल कामगर की तरह पहचान मिलनी चाहिए और उनके सरोकारों को दर्ज किया जाना चाहिए, खास तौर से अधिक काम का बोझ, अनुपयुक्त भुगतान, देरी से वेतन मिलना और खराब कामकाज की स्थिति। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को गैर-आईसीडीएस ड्यूटी के लिए नहीं लगाया जाना चाहिए और उनके कामों के ब्योरे स्पष्ट व दृढ़ होने चाहिए।

17. आशा के साथ जुड़ाव : आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और आशा में सुलभ समन्वय स्थापित करने के लिए विशिष्ट प्रावधान किये जाने चाहिए, मसलन – आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और आशा का संयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम, मासिक "स्वास्थ्य और पोषण दिवस" में संयुक्त भागीदारी और साथ-साथ घरों में जाना।

18. प्रशिक्षण में सुधार : आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं के प्रशिक्षण की नियमितता और गुणवता में सुधार होने चाहिए, प्रशिक्षण कार्यक्रम में – नवजात शिशु और तीन वर्ष से छोटे बच्चों की देखभाल, पोषण-सलाह मशविरा और पूर्व स्कूली शिक्षा को शामिल किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण में सुधार के लिए पर्यवेक्षक, सीडीपीओ और सम्बन्धित स्टाफ की ज़रूरत होगी। आशा, एएनएम और चिकित्सा अधिकारी के साथ आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का संयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए ताकि स्वास्थ्य सेवाओं के साथ-साथ सहयोगी-पर्यवेक्षण की सुविधाओं से सुलभ समन्वय बिठाया जा सके।

19. जेन्डर का मसला : पर्यवेक्षण, सीडीपीओ और आंगनवाड़ी में ऊपर के स्तर के साथ अन्य आईसीडीएस स्टाफ का बेहतर प्रतिनिधित्व महिलाएं ही कर सकती हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रम और पुष्ट पोषण की संरचनाओं को महिला सरोकारों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए तथा ये ऐसी बनायी जायें ताकि आंगनवाड़ी कार्यकर्ता सशक्त हो सकें। (आगे की चर्चा के लिए देखें परिशिष्ट 5)

20. स्टाफ की नियुक्ति : प्रत्येक स्तर पर आईसीडीएस स्टाफ की कमी को पूरा करने के लिए तत्काल कदम उठाये जाने की ज़रूरत है। कार्यक्रम के प्रबन्धंन की संरचनाओं को भी विषय वार विशेषज्ञों (जैसे पूर्व-स्कूल शिक्षा, स्वास्थ्य व पोषण) को जिला, राज्य और केन्द्र स्तर पर लाकर, खास तौर से महिलाओं को, मजबूती दी जानी चाहिए।

II. सेवा विशेष सन्दर्भ में सुझाव

II. 1. पोषण-सम्बन्धी सेवायें

3-6 वर्ष के बच्चों के लिए पूरक पोषण योजना (एसएनपी)

21. पकाया हुआ खाना : 3-6 साल

के बच्चों के लिए पूरक पोषण योजना में पकाया हुआ खाना शामिल किया जाना चाहिए तथा यह खाना आंगनवाड़ी केन्द्र पर स्थानीय खाद्य पदार्थों के ज़रिये अलग-अलग दिनों में बदलाव के साथ पकाया जाना चाहिये।

22. कीमत का मानक : 3-6 साल के बच्चों को प्रतिदिन 3 रुपये (2006-07 की कीमत पर) का प्रावधान एसएनपी में करना चाहिए। यह प्राथमिक विद्यालयों के मौजूदा दोपहर के भोजन के मानक के समरूप होगा (जो कि दो रुपये प्रति बच्चा प्रतिदिन और 100 ग्राम अनाज है)। इस मानक को प्राप्त करने के लिए केन्द्र द्वारा 1.5 रुपये प्रति बालक प्रतिदिन की सहायता अपेक्षित है। कीमत के मानक को प्रति दो वर्ष में मूल्य-सूचकांक के मुताबिक निर्धारित किया जाना चाहिये।

तीन वर्ष से छोटे बच्चों के लिए एसएनपी

23. राशन घर ले जाना : तीन साल से छोटे बच्चों के लिए स्थानीय खाद्य पद्धति पर आधारित पोषण युक्त और सावधानीपूर्वक बनाये गये, घर ले जाने योग्य राशन, जिसे कि प्रति सप्ताह दिये जाने का प्रावधान/विकल्प होना चाहिए।

24. पोषण सम्बन्धी सलाह-मशविरा : पूरक पोषण की व्यवस्था के साथ हमेशा ही पोषण सम्बन्धी गहन सलाह मशविरा, पोषण व स्वास्थ्य, शिक्षा और घर से जुड़कर विकास और वृद्धि के लिए हस्तक्षेप की व्यवस्था होनी चाहिए, खास तौर से तीन वर्ष से छोटे बच्चों के लिए। सलाह-मशविरा में प्राथमिकता "शिशु और छोटे बच्चों के खान-पान" (आईवाईसीएफ) पर दिया जाना चाहिए।

गर्भवती और लरकोरी माताओं के लिए एसएनपी

25. घर ले जाने वाला राशन (टीएचआर) गर्भवती और लरकोरी माताओं के लिए प्रति माह पोषण युक्त खाद्य पदार्थ (राशन) "स्वास्थ्य और पोषण दिवस" (नीचे देखें) को उपलब्ध कराया जान चाहिये। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जो मातायें स्वास्थ्य और पोषण दिवस पर न आ पायें उन तक टीएचआर पहुँच जाये।

माइक्रो-पोषक

26. लौह और विटामिन ए : छह वर्ष से छोटे बच्चों के लिए लौह और विटामिन ए की कमी से बचाव की राष्ट्रीय योजना को आईसीडीएस के ज़रिये लोगू किया जाना चाहिये। उसके लिए उपयुक्त मात्रा का निर्धारण सहायक नर्स मिड-वाइफ (एएनएम) द्वारा ही किया जाना चाहिए।

27. आयोडीन : प्रत्येक आंगनवाडी में आयोडीन युक्त नमक का इस्तेमाल किया जाना चाहिये।

II.2 स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवायें

28. मासिक स्वास्थ्य और पोषण दिवस : प्रत्येक आंगनवाड़ी केन्द्र में हर महीने के एक दिन खास गतिविधियों के लिए आरक्षित होने चाहियें। जैसा कि – गर्भवती और लरकोरी माताओं के लिए टीएचआर, प्रतिरक्षण सत्र (टीकाकरण), एनएचई सत्र, तीन वर्ष से छोटे बच्चों का वज़न तौलना, कुपोषित बच्चों की पहचान, इत्यादि। "स्वास्थ्य और पोषण दिवस" – आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, आशा, और एएनएम के लिए मुलाकात का काम भी करेगा और यह पीआरआई* को शामिल करने के लिए प्रवेश द्वार का काम भी करेगा। (नीचे देखें "आंगनवाड़ी दिवस")

29. दवा-बाक्स : प्रत्येक आंगनवाड़ी केन्द्र में एक दवा-बाक्स होना चाहिये जिसमें कि बुनियादी दवायें हों (इसमें ओआरएस और आईएफए की गोलियां भी शामिल होनी चाहियें), जिसे कि एएनएच (जब तक कि यह सेवा देने के लिए 'आशा' द्वारा उपयुक्त प्रावधान नहीं हो जाता) द्वारा आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को उपयुक्त प्रशिक्षण व मार्गदर्शन के साथ बांटा जायेगा। "स्वास्थ्य और पोषण दिवस" को दवा-बक्से का निरीक्षण किया जाना चाहिए और खत्म हो रही या खत्म हो चुकी दवाओं को पूरा किया जाना चाहये।

30. बुरी तरह से कुपोषित : पीएचसी के स्तर पर उन बच्चों और उनकी माताओं के लिए पुनर्वास सुविधा उपलब्ध होनी चहिए जो कि ग्रेड-3 और ग्रेड-4 स्तर के कुपोषण से पीड़ित हैं। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की यह ज़िम्मेदारी होनी चहिए कि वे ऐसे बच्चों की पहचान करें और उन्हें पुनर्वास सुविधाओं के लिये सुझायें। इन बच्चों के परिवारों को पुनर्वास के अवधि के दौरान वित्तीय सहायता का प्रावधान होना चाहिए। साथ ही इन बच्चों के लिए पूरक पोषण कार्यक्रम के तहत अधिक राशन/खाने का प्रावधान होना चाहिये। आईसीडीएस और स्वास्थ्य विभाग को गहरे कुपोषण और भूख से मौत से बचाव की संयुक्त ज़िम्मेदारी निभानी चाहिये।

31. विशिष्ट प्रशिक्षण : आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को नव निहाल बच्चों और बाल-रोगों के एकीकृत प्रबन्धन (आईएम

* इसी तरह की गतिविधि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के लिए भी बनायी गई थी। यद्यपि, यह महत्वपूर्ण होगा कि यह मासिक गतिविधि "स्वास्थ्य और पोषण दिवस" हो न कि महज "स्वास्थ्य दिवस" जैसा कि हेल्थ मिशन में प्रस्तावित है।

एनसीआई) का प्रशिक्षण लेना चाहिये।

II.3. पूर्व-स्कूल शिक्षा

32. शिक्षा का अधिकार विधेयक : छह वर्ष से छोटे बच्चों की शिक्षा की सुविधाओं के प्रावधान को शिक्षा के अधिकार विधेयक में शामिल किया जाना चाहिये।

33. सर्व शिक्षा अभियान : पूर्व-प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम जिसे कि आईसीडीएस के जरिये लागू किया जा सके। को सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विकसित किया जाना चाहिये। आईसीडीएस के तहत पूर्व-स्कूली शिक्षा कार्यक्रम को मजबूती देने के लिए सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत राशि उपलब्ध करायी जानी चाहिये। मसलन – प्रशिक्षण कार्यक्रम के आयोजन या अच्छे संसाधनों की आपूर्ति के लिए।

34. पूर्व-स्कूली शिक्षा के लिए सुविधाएँ : प्रत्येक आंगनवाड़ी में पूर्व-स्कूली शिक्षा की सुविधाएं होनी चाहिए जिसमें कि विभिन्न गतिविधियां – कमरे में और मैदान में – कराने के लिए उपयुक्त स्थान, जहाँ साफ-सुथरा और स्वस्थ्य वातावरण, चार्ट और खिलौने इत्यादि हों।

35. प्रशिक्षण और पर्यवेक्षण : पूर्व-स्कूली शिक्षा को आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण और आईसीडीएस के पर्यवेक्षकों को डीपीओ के अन्य सहयोगी गतिविधियों में उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिये।

36. आंगनवाड़ी केन्द्रों की जगह : नये आंगनवाड़ी केन्द्रों के भवन सामान्यतः स्थानीय प्राथमिक विद्यालय के पास या भीतर बनाया जाना चाहिये जब तक कि यह स्कूल बच्चों के घर से काफी दूर न हो। जब आंगनवाड़ी केन्द्र और प्राथमिक स्कूल आस-पास होगे तो वे एक साझी रसोई की जगह (किचन शेड) का इस्तेमाल कर पायेंगे।

III. अन्य सुझाव

37. आऊटरिच सुविधाएँ : एक आईसीडीएस के तहत विस्तारित अनिवार्य सेवाओं के लिए (जिसमें रोग-बचाव, टीका और पोषण सुविधाएं हैं) एक 'आऊटरिच मॉडल' का विकास, मुकर्र किये गये आउटरिच कार्यकर्ताओं द्वारा, किया जाना चाहिये ताकि उन समूहों (जैसे – बेघर बच्चे और प्रवासी परिवारों) जो अब तक वंचित रहे हैं, को भी शामिल किया जा सके।

38. सूचना का अधिकार : आईसीडीएस से जुड़ी तमाम सूचनाएं सार्वजनिक पहुँच में होनी चाहियें। सूचना के अधिकार विधेयक का प्रावधान, जिसमें सक्रियता के साथ आवश्यक सूचना का खुलासा (सेक्शन 4) भी शामिल है, को आईसीडीएस के सन्दर्भ में पूरी निष्ठा के साथ लागू किया जाना चाहिये। निजी ठेकेदारों (अगर कोई हो) और एनजीओ के साथ तमाम समझौते की सक्रिय व दायित्वपूर्ण (प्रो-ऐक्टिव) जानकारी दी जानी चाहिए और इसे जन-परिक्षण के लिए सुलभ होना चाहिये। प्रत्येक आंगनवाड़ी केन्द्र की दीवारों पर आईसीडीएस सुविधाओं और अधिकारी का विस्तृत ब्यौरा लिखा जाना चाहिये। आईसीडीएस का सामाजिक लेखा-जोखा ग्राम सभा में या फिर स्वास्थ्य और पोषण दिवस को होना चाहिये।

39. रिकॉर्ड का रखरखाव : आंगनवाड़ी स्तर पर रिकॉर्ड रख-रखाव का बोझ कम किया जाना चाहिये। जहां तक सम्भव हो रिकॉर्ड को उस रजिस्टर तक ही सीमित रखना चहिये जो कि आईसीडीएस के निर्देशन के मुताबिक अनिवार्य है।

40. पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी: आईसीडीएस के प्रबन्धन और पर्यवेक्षण में पंचायती राज संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए कदम उठाये जाने चाहियें। यह सोचते हुए कि महिलाएं और बच्चे संविधान के 11वीं सूची में दर्ज हैं। खास तौर से पीआरआईएस आंगनवाड़ी केन्द्र पर होने वाले "स्वास्थ्य और पोषण दिवस" में और आईसीडीएस कर्मियों के चुनाव में सक्रिय भागीदारी निभाएं। पीआरआईएस के प्रशिक्षण और सशक्तीकरण के लिए संसाधन उपलब्ध कराये जायें जैसा कि – पिछड़ा क्षेत्र ग्रांट राशि में है।

41. आंगनवाड़ी दिवस : "स्वास्थ्य और पोषण दिवस" के विस्तार के तौर पर एक पूर्व निर्धारित दिन ऐसा भी होना चाहिए जिसमें न सिर्फ स्वास्थ्य और पोषण गतिविधायां हों बल्कि आईसीडीएस समुदाय से विभिन्न प्रकार का जुड़ाव भी हो। जैसे आंगनवाड़ी की योजनाबद्ध सजावट, रंग-रोगन पुनर्निर्माण, पूर्व-स्कूली शिक्षा सामग्री की तैयारी, आईसीडीएस सेवाओं का सामाजिक लेख परीक्षण इत्यादि। इससे आईसीडीएस में समुदाय की रुचि और भागीदारी बढ़ेगी।

42. बाल अधिकार पत्र : छह वर्ष से छोटे प्रत्येक च्चे के पास एक बाल अधिकार पत्र होना चाहिये, जिसमें जन्म प्रमाण पत्र के साथ-साथ रोगों से बचाव, टीका, विभिन्न उम्र में वज़न, आंगनवाड़ी केन्द्र पर रजिस्ट्रेशन, स्वास्थ्य परीक्षण और बीमारियों का ब्यौरा इत्यादि हो। ज़रूरी एनएचई सूचनाओं को इस पत्र पर छपा होना चाहिए। यह पत्र (कार्ड) बच्चे के अभिभावक रखेंगे लेकिन इसमें प्रगति ब्योरों को समय-समय पर दर्ज करने की जिम्मेदारी ग्राम पंचायत पर होगी, जिसे वह आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के मदद से कहेगी, इस रिकॉर्ड की एक प्रति आंगनवाड़ी और पंचायत भवन में होगी।

खण्ड ए का परिशिष्ट

नए आंगनवाड़ी खोलने और उनका स्थापन करने के लिए प्रस्तावित मानक

1. वैसे बसावटों में जिनकी आबादी 300 से ज़्यादा है, आंगनवाड़ी की संख्या इस प्रकार होनी चाहिये कि आंगनवाड़ी/आबादी का अनुपात अधिकतम 1000 हो। इसलिए वैसे बसावट जहां की आबादी 300 से 1000 के बीच में है वहां पर एक आंगनवाड़ी होनी चाहिए, जहां की आबादी 1000 से 2000 के बीच में हो वहां दो आंगनवाड़ी, 2000-3000 के बीच तीन आंगनवाड़ी और इस प्रकार प्रत्येक अन्य 1000 के लिए एक और आंगनवाड़ी हो।

2. वैसे बसावट जहां की आबादी 150 से 300 के बीच में है। वहां एक लघु-आंगनवाड़ी होनी चाहिए, अगर एक मुकम्मल आंगनवाड़ी का प्रावधान सम्भव न हो।

3. वैसे बसावट जिनकी आबादी 150 से कम है, उनके लिए अलग-अलग परिस्थितियों के हिसाब से आंगनवाड़ी/लघु-आंगनवाड़ी का या ऐसी आईसीडीएस सेवाओं का प्रावधान किया जा सकता है, इसका प्रस्ताव बाल-विकास परियोजना अधिकारी तैयार करेगा।

4. 'सुधरे हुए मानकों' को लेकर सम्भावित असफलता से बचने की दष्टि से, ग्रामीण समुदाय और झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाले लोगों को "मांग पर आंगनवाड़ी" के लिए अधिकृत किया जाना चाहिए (जोकि, तीन महीने, के भीतर हो), यह वैसे बसावटों के मामले में होगा जहाँ छह वर्ष से छोटे 50 बच्चे है लेकिन कोई आंगनवाड़ी नहीं है। इन बसाहटों की सूची, जो कि आंगनवाड़ी की मांग कर सकते है, को तीन साल के दरमियान विस्तार दिया जाना चाहिये। जिसकी शुरुआत सर्वाधिक उपेक्षित समुदाय (उदाहरण अनुसूचित जाति/जनजातियों की बस्ती या शहरी झुग्गी बस्तियों) से हो और इसका अन्त सभी बसावटों तक जाकर हो।

5. आईसीडीएस के दायरे को बढ़ाने की प्रक्रिया में अनुसूचित जाति/जनजाति बस्तियों और शहरी झुग्गी बस्तियों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र वाली बसावटों में एक सर्वे करना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि इन बसाहटों में नये आंगनवाड़ी खुलें, काम करें, या उसी समय में हों, जब तक इस समूह के लिए इसके सार्वभौमीकरण का लक्ष्य न पा लिया जाये।

6. कुछ खास मामलों में, जहां बच्चों के पास आंगनवाड़ी तक पहुंचने की सुलभता न हो – रास्ते की वजह से, नदी नालों की वजह से या किसी न किसी कारण से – वहाँ एक अतिरिक्त आंगनवाड़ी या लघु-आंगनवाड़ी का प्रस्ताव परियोजना अधिकारी द्वारा तैयार किया जाना चाहिए।

7. जहां तक सम्भव हो एक ऐसी कार्य व्यवस्था सुनिश्चित की जाए ताकि अतिरिक्त आंगनवाड़ी का प्रस्ताव परियोजना अधिकारी द्वारा पारित करने की प्रक्रिया विकेन्द्रीकृत हो, उदाहरण के लिए पूर्व कल्पित निर्धारित वित्तीय प्रावधान इस उद्देश्य के लिए राज्य सरकार द्वारा दिया जाये और किसी खास प्रस्ताव को पारित करने की प्रक्रिया को विकेन्द्रीकृत होना चाहिये।

8. 500 से अधिक आबादी वाले सारे बसावटों के आंगनवाड़ी केन्द्रों में कम से कम दो आंगनवाड़ी कार्यकर्ता होने चाहियें।

खण्ड बी : मातृत्व भत्ता

मुद्दा क्या है?

विश्व स्वास्थ्य संगठन की वर्तमान निर्देशिका इसका सुझाव देती है कि बच्चों के जन्म के छह महीने तक माता का दूध अति अनिवार्य है। वर्ष 2003 में, द *लॉन्सेट* ने बाल सुरक्षा सीरिज प्रकाशित किया। जिसमें यह दर्ज किया गया कि माता का दूध वह सर्वाधिक उपयुक्त साधन है जिसके ज़रिये बच्चों को मौत से बचाया जा सकता है, यह भी पाया गया कि इसके जरिये 13 प्रतिशत से 16 प्रतिशत बच्चों को मौत से बचा सकते हैं। इसलिए माता का दूध, उपयुक्त मात्रा में वह सम्भावना है जिससे कि (शुरुआती महीनों के लिए और जिसका दायरा दो वर्ष तक हो सकता है) देश को कुपोषण की उच्च दर शिशु मृत्यु दर और एन.एम.आर. से बचा सकते है।

यह मुद्दा काफी बेहतर तरीके से समझा गया है और इस पर विवाद की कोई गुंजाइश नहीं है। यद्यपि जब माता और बच्चों को इस मामले में कम से कम छह महीनों के लिए और आगे जाकर दो वर्ष तक के लिए सहयोग देने की बात, या इसके कुछ प्रावधानों के सन्दर्भ में अधिकृत करने की बात उठती है तब भारत के पास देने के लिए काफी कम चीजें होती हैं, खास तौर से उन महिलाओं और उनके बच्चों को जो कि अनौपचारिक सेक्टर में (इस तरह की महिलाएं पन्द्रह करोड़ से ज़्यादा हैं) काम कर रही हैं। मातृत्व की सुविधाओं को अधिकृत करना और कामकाजी जगह पर क्रेश – ये वो दो हस्तक्षेप हैं जो माता के दूध को बच्चे तक पहुंचाने में सहयोग दे सकते हैं – और ये खासतौर से बच्चे के स्वास्थ्य और पोषण के हस्तक्षेप के आड़े-तिरछे उपायों में से गायब नज़र आते हैं। इसके विपरीत सरकारी क्षेत्रों में काम करने वाली महिलायें छह महीने तक का मातृत्व अवकाश (और उनके पति 15 दिन का पितृत्व अवकाश) पाती हैं, ताकि पहले दो बच्चों की देखभाल कर सकें।

मातृत्व की सुविधाओं का प्रावधान कामकाजी महिलाओं तक पहुंचाने में काफी विभिन्नता है, कई बार यह अदृश्य-सी स्थितियां होती है जिसमें कि यह काम काफी मुश्किल सा लगता है। कोई कारण नहीं हैं कि ग्यारहवीं योजना में इस तरह के विशिष्ट हस्तक्षेपों को प्राथमिकता के तौर पर शामिल किया जाना चाहिए और सम्भव बनाया जाना चाहिए उसमें से कुछ का ज़िक्र नीचे किया गया है :–

मौजूदा उपलब्ध लाभ एवं योजनायें –

- राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना : गरीबी रेखा से नीचे की प्रत्येक महिला के लिए 500 रुपये। हाल में यह तय किया गया कि माता की उम्र और जन्म क्रम का कोई अवरोध इसमें नहीं होगा।
- मातृत्व लाभ विधेयक, ईएसआई एक्ट : 12 सप्ताह, के मौजूदा वेतन के साथ।
- राज्य की योजनायें : हाल ही में (तमिलनाडु) 1000 रुपये प्रति माह, छह महीनें के लिए – तीन महीने जन्म से पहले एवं तीन महीने जन्म के बाद।
- विनिर्माण क्षेत्र के मज़दूर तमिलनाडु : 2000 रुपये, यद्यपि 8000 रुपये की मांग की गई थी (80 रुपये प्रति दिन के हिसाब से 100 दिन के), नई योजना में 6000 रुपये सुनिश्चित करने की बात है।

इस समय इस तरह के प्रावधानों का दायरा और विस्तार अति न्यूनतम है। उदाहरण के लिये मातृत्व लाभ विधेयक न तो उन महिलाओं के फायदे की बात करता जो अनौपचारिक क्षेत्र में काम कर रही हैं और न ही यह परिभाषित नियोक्ताओं और नौकरियों में भी किसी ऐसे निकाय को सुनिश्चित

करता है जिससे महिलाएं इनका लाभ उठा ही सकें।

प्रस्तावित सिद्धान्त एवं रणनीति

दिये गये सिद्धान्तों के मद्देनज़र मातृत्व सम्बन्धी सुविधाओं से माताओं को अधिकृत कराने के लिये हम निम्न सुझाव देते हैं :–

- सभी महिलायें – जिसमें वे माताएं भी शामिल हैं जो बच्चे को गोद लेती हैं।
- बच्चे के जन्म से दो हफ्ते पहले और जन्म से छह महीने बाद तक।
- अगर महिला काम काजी है तो उसका वेतन दिया जाये।
- अगर महिला बिना वेतन के काम कर रही है तो उसको न्यूनतम भुगतान किया जाये।
- उम्र, वैवाहिक स्थिति, बच्चों की संख्या या किसी अन्य आधार पर कोई भी भेदभाव न किया जाये। लेकिन गरीबी के आधार पर वरीयता दी जा सकती है।

रणनीति के रूप में :

- अलग-अलग उपायों को अपनाये जाने की ज़रूरत है, ताकि इनके ज़रिये इन प्रावधानों की पहुँच अधिक महिलाओं तक हो जो मज़दूरी की असमानता एवं वैभिन्न स्थितियों में काम कर रही हैं।
- दूसरे राष्ट्रीय मज़दूर आयोग ने चार श्रेणियाँ प्रस्तावित की थीं :

1. न्यूनतम स्तर या 'सुरक्षा जाल' उनके लिए जो कि किसी तरह का कोई सहयोग देने में समर्थ नहीं है। उनके लिए राज्य (केन्द्र या राज्य सरकार) द्वारा समूचा प्रबंधन किया जाना चाहिए।
2. पहला स्तर – उनके लिए जो किसी न किसी प्राधिकरण में काम कर रहे हैं। इनके लिए प्रावधान को सरकार, नियोक्ता और कर्मचारी के बीच बांटा जा सकता है। प्रत्येक सेक्टर के लिए सहयोग का अनुपात निर्धारित किया जायेगा।
3. वे जो दैनिक कामकाज से जुडे हैं, दैनिक मज़दूर, खुदरा काम, स्व-नियोक्ता हैं या वहां जहां हम स्पष्ट तौर पर नियोक्ता को नहीं देख सकते – वहां पर सरकार और कामकाजी के बीच सहयोग का बंटवारा होगा।
4. उच्चतम स्तर या 'स्वैच्छिक स्तर', उनके लिए जो कि इन्श्योरेंस के मॉडल के ज़रिये खर्च उठा सकते हैं – वहां कर्मचारी और नियोक्ता के बीच में बंटवारा होगा। सहयोग की राशि निर्धारित की जाएगी।

यद्यपि रणनीति के तौर पर हम सुझाव देते हैं कि :

- तमाम मौजूदा कानूनों (एमबीए, ईएसआई एक्ट, प्रस्तावित गैर-संगठित मज़दूर सामाजिक सुरक्ष एक्ट इत्यादि) को सुझाये गये सिद्धान्तों की सीध में लाना।
- त्रिपक्षीय बोर्ड और फंड अनौपचारिक काम से जुड़े तमाम क्षेत्रों में लागू हो ताकि नियोक्ता सहयोग दे सकें।
- विस्तृत और विकसित राष्ट्रीय मातृत्व योजना – उन महिलाओं के लिए जो उपरोक्त किसी में भी नहीं आती हैं।

अन्य तरह के सहयोग काफी संवदेनशील हैं और उन पर अलग से विस्तार में चर्चा करनी होगी। उनको पूरा करने के सन्दर्भ में उनका ज़िक्र नीचे दिया जा रहा है :

- सभी गर्भवती महिलाओं की प्रसव सम्बन्धी देखभाल।
- सभी माताओं को शिशुओं और छोटे बच्चों के खान-पान सम्बन्धी पोषण पर परामर्श देना।
- कामकाज की जगह पर क्रेश (पड़ोस में क्रेश, कई पक्षों द्वारा सहयोग के ज़रिये बनाया जाये, आंगनवाड़ी केन्द्र + क्रेश, आउटरिच मॉडल) या नियमित देखभाल और शिशु तथा छोटे बच्चों का खानपान, जिसमें शिशु स्तनपान के लिए बीच में अवकाश हो और कामकाज के घंटों में अगर ज़रूरत हो तो लचीलापन हो।

खण्ड - सी : क्रेश और डे-केयर प्रबन्ध

जरूरत

क्रेश निम्न में हस्तक्षेप करेगा :

- शिशु मृत्यु दर और बाल मृत्यु दर में कमी।
- नियमित शिशु स्तनपान की सुविधा और पूरक खान पान से कुपोषण में कमी।
- छह साल से छोटे बच्चों की वृद्धि में सहयोग, सर्वांगीण विकास और भावनात्मक सुरक्षा।
- लड़कियों का स्कूल में दाखिला और वहां पढ़ते रहने देने में मदद।
- लैंगिक उत्पीड़न और उपेक्षा से बच्चों का बचाव।
- महिलाओं को आर्थिक तौर पर उत्पादक और राष्ट्रीय जीवन में भागीदार बनाने के लिए सशक्तिकरण।

क्रेश का इस्तेमाल हम महिलाओं के प्रति भेदभाव को ख़त्म करने और छोटे बच्चों के सुरक्षा सम्बन्धी अधिकार, उनके बचाव और उनके विकास को सुनिश्चित करने के राष्ट्रीय रणनीति के तौर पर अनिवार्य ये क्रेश – सभी तरह की स्वास्थ्य, पोषण और जीविकोपार्जन सम्बन्धी रणनीति और गरीबी कम करने की रणनीति के एकीकृत हिस्से हैं।

उन परिवारों में जहाँ जीवन चलाने के लिए माता का काम करना अनिवार्य है, क्रेश एक अनिवार्य जरूरत है, खास तौर से गैर-संगठित क्षेत्र में, अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि करीब छह साल से छोटे के करीब छह करोड़ बच्चों को दिन के समय देखभाल की ज़रूरत पड़ती है। एकल परिवारों के बढ़ने के सन्दर्भ में परिवारों की सहयोगी व्यवस्था के टूटने और अनियमित कामकाज इत्यादि की देखते हुए बच्चों के देखभाल में सहयोग का मामला महिलाओं के विकास के दृष्टिकोण से काफी संवेदनशील है।

क्रेश के केन्द्रीय अवयव

- साफ़-सफ़ाई रखे जाने योग्य फर्श वाला सुरक्षित स्थान, चहारदीवारी, शौचालय, खाना बनाने की जगह, पानी।
- प्रशिक्षित और ज़िम्मेदार क्रेश कार्यकर्ता (एक प्रशिक्षित कार्यकर्ता + एक सहयोगी तीन से छह साल से छोटे प्रति 10 बच्चों के लिए : एक प्रशिक्षित कार्यकर्ता + एक सहयोगी तीन से छह साल के प्रति 25 बच्चों के लिए)।
- साफ़-सफ़ाई, सोने, खाने और खिलाने/सिखाने, भंडारण करने के लिए ज़रूरी साज़ो-सामान।
- पोषण (परिवार द्वारा उपलब्ध कराया जायेगा जिसमें राज्य की योजना के तहत जारी किया गया पूरक पोषक आहर भी होगा)।
- स्वास्थ्य देखभाल व्यवस्थाओं से जुड़ी हुई स्वास्थ्य सेवाएं।
- समय : वह समय जो महिलाओं के कामकाज के दृष्टिकोण से उपयुक्त हो।
- समूह / प्रबन्धन की व्यवस्था / पर्यवेक्षण / प्रशिक्षण

वर्तमान दशा

वर्तमान समय में राजीव गांधी क्रेश योजना और मज़दूरी सम्बन्धी विधान के तहत क्रेश का प्रावधान है। राजीव गाँधी क्रेश योजना के तहत 22038 क्रेश खोले जा चुके हैं (31 मार्च 2006)।

मज़दूरी सम्बन्धी कानूनों के तहत बनाये गये क्रेश के प्रावधान।

जरूरत : एनएसएस के 55वें चक्र के, (1999-2000) के मुताबिक 10.6 करोड़ महिलायें कामकाजी हैं। उनमें से 40 से 50 प्रतिशत महिलायें प्रजनन वाली उम्र सीमा के भीतर हैं। क्रेश की जरूरत और प्रावधान के बीच का अन्तर उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है।

11वीं योजना के लिए सुझाव

क्रेश के द्वारा पाटे जा सकने वाले दायरे को बढ़ाने के लिये बहुस्तरीय सुझाव निम्नलिखित हैं।

1. राज्य द्वारा उपलब्ध कराया गया क्रेश/एनजीओ के सहयोग से : राजीव गांधी योजना के तहत बच्चों की संख्या को बढ़ाया जाये (एक ऐसी योजना जो कि एनजीओ प्रबन्धन को अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए गति दे सके)।

2. सरकारी योजनाओं के हिस्से के रूप में क्रेश : यहाँ इसकी अनुशंसा की जा रही है कि सभी एनआरईजीए ज़िलों में आंगनवाड़ी-सह-क्रेश को प्रायोग के

लिए आईसीडीएस के तौर पर लाया जाये, ताकि महिलाएं रोज़गार की सुविधाओं का लाभ उठा सकें और उनके पास एक ऐसी सुरक्षित जगह हो जहाँ कि वे अपने बच्चों को छोड़ सकें और वहाँ उनकी बुनियादी ज़रूरतें पूरी हो सकें। यह दायरा विस्तार की एक ऐसी राजनीति है जहाँ एनआरईजीए योजना में निवेश का अधिकतम इस्तेमाल कर सकते हैं।

आईसीडीएस के अन्तर्गत आंगनवाड़ी-सह-क्रेश के प्रावधान के लिए अतिरिक्त बजट की ज़रूरत होगी, ऐसे अतिरिक्त मानव संसाधन की भी ज़रूरत होगी जनको उपयुक्त प्रशिक्षण और वेतन हों, साथ ही जगह, भौतिक सुविधाओं और साज़-सामान की भी ज़रूरत होगी।

और आईसीडीएस के लिए आऊटरिच मॉडल का विकास ताकि उन बच्चों को भी इसमें शामिल किया जा सके जो अब तक हमसे वंचित हैं, खास तौर से अब तक अस्थायी काम की जगहों/चीनी, कपड़ा, धान, फसल-कटाई जैसे क्षेत्रों के बच्चें। स्तनपान कराने वाली माताओं और गर्भवतियों की पूरक पोषण, रोग-बचाव, पोषण सहयोग इत्यादि उपलब्ध कराने की व्यवस्था और स्वास्थ्य देखभाल की व्यवस्थाओं से जुड़ाव – (खास तौर से ऐसी स्थितियों में) को आईसीडीएस के अन्तर्गत आऊटरिच कार्यकर्ताओं के सहयोग से एक रणनीति के तौर पर विकसित करना होगा।

3. दिन के समय शिशुओं और बच्चों की देखभाल की व्यवस्था के लचीले मॉडल के लिए वित्तीय प्रावधान का दायरा – महिला मंडल, मज़दूर यूनियन, स्वयं सहायता समूह, सहकारी संस्थाओं इत्यादि तक होना चाहिए ताकि विभिन्न पेशेवर समूहों और विभिन्न क्षेत्रों के प्रत्येक बच्चे का 1.5 रुपये प्रति बच्चा प्रतिदन का दिन में देखभाल के लिए प्रबन्धन व पर्यवेक्षण हो सके। उसमें समय और ज़रूरत के हिसाब से लचीलापन बरतना होगा जो कि निर्धारित 'अवयवों' वाले बजट के विपरीत होगा। वैसे स्थानीय महिलाओं को जो कि अपने घर में क्रेश चलाने की ओर इसके लिए स्वयं को प्रशिक्षित करने को तैयार हो उन्हें सहयोग देना एक अन्य अतिरिक्त रणनीति हो सकती है, ताकि दिन में बच्चों की देखभाल का विस्तार हो सके।

राजीव गांधी योजना की सीमायें – राजीव गांधी योजना के अतिरिक्त उपरोक्त लचीले मॉडलों की ज़रूरत, इस योजना की प्रकृति के चलते हैं, जो कि आबादीं के कुछ हिस्से के लिए तो उपयुक्त हैं पर अन्य के लिए इसकी सीमाएं इस प्रकार हैं :

- यह एनजीओ पर आधारित है।
- योजना की रूपरेखा का पैटर्न और मान का देय के विविध स्थितियें से तालमेल नहीं बैठा पाते। उदाहरण कुछ क्षेत्रों में किराये के लिए उससे अधिक की राशि की ज़रूरत होती है, जितना इसमें दिया जाता है, कुछ क्षेत्रों में, अभिभावक भोजन उपलब्ध करा सकते हैं लेकिन वे चाहते हैं कि ये क्रेश अधिक समय तक काम करें और इसलिए वहाँ वेतन पर किये जाने वाले व्यय कां बढ़ाने की ज़रूरत है।
- इस स्कीम का पैटर्न उनकी ज़रूरतों को पूरा नहीं करा सकता, जहाँ महिलाएं विभिन्न पेशों में लगी हैं, जैसे मछली पालन, वनारोपण, मौसमी खेती-बाड़ी इत्यादि।
- स्कीम के लिए योग्यता की अपेक्षित अर्हताएं काफी सीमित हैं। "कामकाजी महिला" और "आम आर्हता" जैसे शब्दों निम्न तरीके से पुनर्निरीक्षण किए जाने की ज़रूरत है।

(i) कामकाजी महिलाओं की अवधारणा के विस्तार की ज़रूरत है। इसे बदलकर "गरीब वर्ग के बच्चों जिनके माता-पिता दोनों या कोई एक काम पर जाते हैं, खासकर कारीगर, घरों में, खेतों में तथा भवन निर्माण में काम करने वालों के बच्चे आदि।"

(ii) इसमें आने के लिए आमदनी के मापदण्ड के बजाये व्यवसाय तथा निवास स्थान को शामिल करने की ज़रूरत है। चूंकि आमदनी में उतार-चढ़ाव मौसम, रोज़गार की सम्भावना और परिवार के आय के अनुसार आता है अतः योग्यता को गरीबी के साथ-साथ व्यवसाय जैसे घरों के काम, कारीगरी, खेतों में काम करने वाले आदि तथा जो शहर की झुग्गियों, दलित बस्ती तथा अन्य इलाकों में रहने वाले कमज़ोरों के अनुसार परिभाषित करना चाहिए।

वर्तमान समय में इस्तेमाल किये जाने वाले आय के मानदण्ड के बजाये ऊपर दी गई बातें लक्षित आबादी को शामिल करने में अधिक सटीक लचीलापन लायेगी।

4. क्रेश जो औद्योगिक संकाय से जुड़े हों। श्रमिक कल्याण बार्ड को बिल्डिंग तथा कन्सट्रक्शन वकर्स एक्ट, 1996 के अन्तर्गत अन्य संस्थाओं को क्रेश स्थापित करने के लिए बुलाने की ज़रूरत है। वे एक निश्चित राशि निकाल सकते हैं और प्रमाणित क्रेश वर्कर को, जिन्हें एनआईपी-सीसीडी, एनजीओएस, आईसीसीडब्ल्यू आदि प्रशिक्षण मिला हो, इस काम में लगा सकते हैं। इन वर्कर के लिये क्रेश को शुरू करने के लिए एक शाखा का विकास किया जा सकता है।

5. उद्योगों पर एक निश्चित राशि निर्धारित किया जाना चाहिए जो कि बच्चों के देखरेख सम्बन्धित सेवा कोष के रूप में विकसित हो। इससे देशभर में क्रेशों के जाल विकसित करने, काम करने वालों की प्रशिक्षण मदद तथा आंकड़ों के संग्रह और मूल्यांकन में राष्ट्रीय स्तर की मदद मिलेगी।

खण्ड – डी : शिशु और छोटे बच्चों का भोजन (आई.वाई.सी.एफ.)

1. **संसाधनों को फिर सजाना/ बुद्धिमानी से उन्हें लगाना :** वर्तमान में हमारे अधिकाशं संसाधन दो साल के बच्चों के लिए हैं। चाहे वह टीकाकरण हो या बाद का पूरक भोजन। हमें 6 महीने से 12 महीने के बच्चों के लिए संसाधनों को फिर से व्यवस्थित करना चाहिए। हमें दक्षता बढ़ाने के प्रशिक्षण और नवजात के लिए सलाह तथा छोटे बच्चों के खान-पान पर उतना ही खर्च करना चाहिए जितना टीकाकरण पर होता है।

2. स्तनपान और अतिरिक्त खान-पान संयोजित ढंग से होना चाहिए न कि अस्थायी तौर पर। यह नवजात तथा छोटे बच्चों के लिए राष्ट्रीय दिशा-निर्देशों को लागू करने में पूर्णत: मदद करे।

3. उत्साह बनाये रखने के लिए उच्च स्तर पर संयोजन किया जाये। प्रधानमंत्री के नेतृत्व 'शिशु पोषण प्राधिकरण' बनाया जाए और सुनिश्चित किया जाये कि विकास की रिपोर्ट में स्तनपान आँकड़ा सुधर रहा है।

4. 11वीं योजना में समय से स्तनपान शुरु करने वाले (टीआईबीएफ) बच्चों का दायरा बढ़ाये जाने का लक्ष्य रखा जाना चाहिये। पहले छह माह तक के बच्चों के लिए विशेषतौर से स्तनपान (ईबीएफल) और 90 प्रतिशत के लिए समय से पूरक खान-पान (टीसीएफ) का भी लक्ष्य होना चाहिए।

5. "आईवाईसीएफ सलाह" को आरसीएच/एनआरएचएम और आईसीडीएस दोनों की सेवा सूची में शामिल करने की ज़रूरत है।

6. जन्म के समय तथा विशेष स्तनपान के लिए कुशल मदद, जन्म के समय दो घंटे के लिए दक्ष व कुशल सेवा का स्थान ताकि एक घंटे के अंदर स्तनपान की शुरुआत हो सके। इसकी व्यवस्था दोनों स्तर पर हो।

7. राज्य स्तर पर बदलाव को लागू करने के लिए ढांचा हो।

8. बाल अधिकारों की रक्षा के लिए कानून हो।

एकीकृत बाल विकास सेवा पर सर्वोच्च न्यायालय का आदेश (13 दिसम्बर, 2006)

न्यायालय के समक्ष रखी गई प्रार्थना और रिकार्डस को ध्यान में रखते हुए हम निर्देशित करते हैं कि :

(1) भारत सरकार दिसम्बर 2008 तक कम से कम 14 लाख आंगनवाड़ी केन्द्रों की स्वीकृति तथा संचालन अनिवार्य रूप से करें। ऐसा करते समय केन्द्र सरकार अनुसूचति जाति एवं जनजाति की बस्तियों को चिन्हित करके उन्हें वरीयता दे।

(2) भारत सरकार अनिवार्य रूप से यह भी सुनिश्चित करें कि आंगनवाड़ी केन्द्रों को खोलने के लिए निर्धारित मापदण्डों में संख्या वृद्धि का किसी प्रकार कोई संशोधन न करे। प्रति आंगनवाड़ी में जनसंख्या की अधिकतम सीमा 1000 के मापदण्ड को बरकरार रखते हुए नये आंगनवाड़ी केन्द्र खोलने के प्रति आंगनवाड़ी केन्द्र 300 की आबादी का ध्यान रखा जाये। जिन झुग्गी-बस्तियों तथा गाँवों में 6 वर्ष से कम उम्र के 40 बच्चें हों और यदि वहाँ पर कोई आंगनवाड़ी नहीं है तो वही माँग करने पर तुरन्त (3 महीने के अन्दर) अंगानवाड़ी केन्द्र खोला जाए।

(3) आईसीडीएस के सर्वव्यापीकरण में आईसीडीएस के तहत सभी छह वर्ष से कम आयु के बच्चों, सभी गर्भवती महिलाओं एवं धात्री माताओं तथा सभी किशोरियों को, आईसी डीएस के अन्तर्गत आने वाली सभी सेवाएँ (पूरक पोषण, विकास पर निगरानी, स्वास्थ्य, शिक्षा, टीकाकरण, पूर्व पाठशाला, शिक्षा) उपलब्ध होनी चाहिए।

(4) सभी राज्य सरकारें तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों की सरकारें आईसी डीएस योजना को पूर्णतया लागू करें तथा प्रावधान करें कि –

(अ) पूरक पोषण के लिए प्रति बच्चा प्रतिदिन कम से कम 2 रुपया व्यय किया जाये जिसमें से केन्द्रीय सरकार प्रति बच्चा प्रतिदिन 1 रुपये का योगदान करे।

(ब) गम्भीर रूप से कुपोषित बच्चे के पूरक पोषण हेतु प्रति बच्चे पर प्रतिदिन 2.70 रुपये का प्रावधान हो तथा व्यय किया जाये। इसमें केन्द्रीय सरकार प्रत्येक बच्चे पर 1.35 रुपये प्रतिदिन का योगदान करें।

(स) प्रत्येक गर्भवती महिलाओं, धात्री माताओं तथा किशोरियों के पूरक पोषण के लिए 2.30 रुपये प्रतिदिन का प्रावधान हो, जिसमें से केन्द्र सरकार 1.15 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से योगदान करे।

(5) बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, मणिपुर, पंजाब, पश्चिम बंगाल, असम हरियाणा और उत्तर प्रदेश राज्यों के मुख्य सचिव न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर यह स्पष्ट करें कि आईसीडीएस की योजना को पूर्णतया लागू करने के इस न्यायालय के आदेश पर अमल क्यों नहीं किया है।

(6) सभी राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों की सरकारों के मुख्य सचिवों को यह निर्देश दिया जाता है कि वे शपथ पत्र दाखिल करके बतायें कि इस न्यायालय के 7 अक्टूबर, 2004 के आदेश के

अनुपाल में कौन-कौन से कदम उठाये गये जिमें यह निर्देश दिया गया था कि – "पोषण सामग्री की आपूर्ति में ठेकेदारों का इस्तेमाल न किया जाये तथा आईसीडीएस फण्ड का व्यय अनाज को खरीदने तथा भोजन तैयार करने में करें, ग्रामीण समुदाय, स्वयं सहायता समूह और महिला मण्डल के द्वारा इसे वरीयतापूर्वक करें।" राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के मुख्य सचिव समयबद्ध योजना बनाकर बतायें जिसमें पोषण सामग्री की आपूर्ति का विकेन्द्रकीरण इस प्रकार हो कि स्थानीय समुदाय के हाथों में पहुँच जाये।

(7) यह एक गम्भीर मामला है कि इस न्यायालय के 07.10.2004 के फैसले के अनुपालन के सन्दर्भ में 15 राज्यों/केन्द्र शासित क्षेत्रों ने अपना शपथ पत्र दाखिल नहीं किया है। ये राज्य हैं – उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, गोवा, पंजाब, मणिपुर, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, मिजोरम, हरियाणा, बिहार, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, लक्षद्वीप। चार हफ्तों के अन्दर इन राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के मुख्य सचिव जवाब दें कि उनके खिलाफ न्यायालय की अवमानना करने के आरोप में क्यों न कारवाई की जाये।

इस मामले पर तीन माह बाद सुनवाई होगी, इस समय केन्द्र सरकार, राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्रों की सरकारें नवीनतम आंकड़ों के साथ रिपोर्ट दाखिल कर दें।

डॉ. अरिजित पसायत

एस॰एच॰ कपाडिया

सन्दर्भ सूची

एल्डरमैन, हैरोल्ड (2004), "लिंकेजिस बिट्वीन पॉवर्टी रिडक्शन स्ट्रेटेजीस एण्ड चाइल्ड न्युट्रीशन : एन एशियन पर्सपेक्टिव", विश्व बैंक, वॉशिंग्टन डी.सी.

एल्डमैन, एच.जे. हौडिनॉटे व बी. किन्से (2004), "लांग टर्म कन्सीक्वेन्सेज़ ऑफ अर्ली चाइल्डहुड मालन्युट्रीशन", विश्व बैंक, वॉशिग्टन डी.सी..

बैनर्जी, रुक्मिणी (2005), "प्रथम एक्सपीरियेन्सेज़" सेमिनार नं. 546.

बेहरमैन, जे., एच. एल्डरमैन, और जे. हौडिनॉट (2004), "हंगर एण्ड मालन्युट्रीशन", लौम्बार्ग, बी. (एड.) (2004), ग्लोबल क्राइसिज़, ग्लोबल सोल्यूशन्स (कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

ब्रेस्ट प्रमोशन नेटवर्क ऑफ इण्डिया (2003), "स्टेट्स ऑफ इन्फैन्ट एण्ड यंग चाइल्ड फीडिंग इन 49 डिस्ट्रिक्ट्स (98 ब्लॉक्स) ऑफ इण्डिया", मिमिओ, बी.पी.एन.आई., नई दिल्ली.

चैटर्जी, मिराई (2006), "डीसेन्ट्रलाइज़्ड - चाइल्ड केयर सर्विसेज़ : दी सेवा एक्सपीरियन्स", इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अगस्त 26.

डैनियल्स, एम., एल. अडायर (2004). "ग्रोथ इन यंग फिलिपिनो चिल्ड्रेन प्रिडिक्ट्स स्कूलिंग ट्रेजेक्टरीज़ थ्रू हाई स्कूल", जर्नल ऑफ न्यूट्रीशन 134.

द्रेज़, ज्यां (2004), "डेमोक्रेसी एण्ड दि राइट टू फूड", इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अप्रैल 24.

– (2006), "यूनिवर्सलाईज़ेशन विद क्वालिटी : आईसीडीएसइन ए राईट पर्सपेक्टिव", इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अगस्त 26.

द्रेज़, ज्यां व अपराजिता गोयल (2003), "फ्यूचर ऑफ मिडडे मील्स", इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अगस्त 2.

द्रेज़, ज्यां व शोनाली सेन (2004), "यूनिवर्सलाइज़ेशन विद् क्वालिटी : ऐन एजेन्डा फॉर आईसीडीएस" रिपोर्ट राष्ट्रीय सलाहकार समिति के लिए.

गर्ग, समीर (2006), "छत्तीसगढ़ : ग्रासरूट मोबलाइज़ेशन फॉर चिल्ड्रेन्स न्यूट्रिशन राइट्स", इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अगस्त 26.

घोष, जयती (2005), "दी अन्संग हिरोइन्स ऑफ इंडिया", फ्रंटलाइन, जून 17.

घोष, शांति (2004 ए), न्यूट्रिशन एण्ड चाइल्ड केयर : ए प्रैक्टिकल गाइड, द्वितीय संस्करण (नई दिल्ली - जे पी ब्रदर्स).

– (2004 बी), "चाइल्ड मालन्यूट्रीशन", इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अक्टूबर 2.

– (2006), "फूड डोल ऑर हैल्थ, न्यूट्रीशन एण्ड डेवेलपमेन्ट प्रोग्राम", इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अगस्त 26.

ग्ल्यू, पी., एच. जैकोबी, और ई. किंग (2001), "अर्ली चाइल्डहुड न्यूट्रीशन एण्ड एकैडमिक एचीवमेन्ट : ए लॉंगीट्यूडिनल एनालिसिस", जर्नल ऑफ पब्लिक इकॉनॉमिक्स.

गोपालदास, तारा (2006), "हिडेन हंगर : दी प्रॉब्लम एण्ड पॉसिबल इन्टरवेन्शंस", इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल विकली, अगस्त 26.

भारत सरकार (2000), "आईसीडीएस – कॉम्पेन्डियम ऑफ गाइडलाइन्स मिमियो, महिला व बाल विकास विभाग, नई दिल्ली.

– (2006 ए), "रिपोर्ट ऑफ दी इन्टर-मिनिस्टीरियल टास्क फोर्स सेट अप टू रिव्यू दी पोप्युलेशन नॉर्म्स फॉर सेटिंग अप ऑफ ऐन आंगनवाड़ी सेन्टर अंडर दी आईसीडीएस स्कीम", मिमियो, महिला व बाल विकास. नई दिल्ली.

– (2006 बी), "नेशनल रूरल हेल्थ मिशन : फ्रेमवर्क फॉर इम्पलिमेन्टेशन 2005 -2012", मिमियो, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली.

– (2006 सी) "वर्किंग ग्रुप ऑन चाइल्ड डेवलपमेंट फॉर दी इलैवेन्थ फाइव ईयर प्लान (2007-2012) फाइनल रिपोर्ट ऑफ दि सब-ग्रुप ऑन आईसीडीएस एण्ड न्यूट्रीशन", मिमियो, महिला व बाल विकास विभाग, नई दिल्ली.

– (2006 डी), "नैशनल गाइडलाइन्स ऑन इन्फैन्ट एण्ड यंग चाइल्ड फीडिंग", महिला व बाल विकास विभाग, नई दिल्ली.

भारत सरकार (एन.डी.), इन्टीग्रेटेड चाइल्ड डेवलप्मेन्ट सर्विसेज़ (आईसीडीएस) हैन्डबुक (नई दिल्ली : महिला व बाल विकास विभाग).

गुप्ता, अरुण (2006 ए), "इन्फैन्ट एण्ड यंग चाइल्ड फीडिंग : एन ऑप्टीमल अप्रोच", इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अगस्त 26.

हद्दाद, एल., एच. एल्डरमैन, एस. ऐप्पल्टन, एल. सॉंग एण्ड वाई. योहेन्स (2002), "रिड्यूसिंग चाइल्ड अंडर न्यूट्रीशन : हाऊ फॉर डज़ इन्कम ग्रोथ टेक अस?", डिसक्शन पेपर 137, इन्टर नैशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इन्सटिटियूट, वाशिंगटन, डीसी.

हलदर, अंतरा (2004), "लिट्रेचर सर्वे ऑन दी आइसीडीएस", मिमियो, सेन्टर फॉर ईक्विटी स्टडीज़, नई दिल्ली.

हेरिस-व्हाइट, बार्बरा (2004), "न्यूट्रीशन एण्ड इट्स पॉलिटिक्स इन तमिलनाडु", साउथ एशिया रिसर्च, 240.

हक : सेन्टर फॉर चाइल्ड राइट्स (2005 ए), "सेज ए चाइल्ड ... हू स्पीक्स फॉर माई राइट्स?" पार्लियामेन्ट इन बजट सेशन 2005 (नई दिल्ली : हक)

– (2005 बी), स्टेटस ऑफ चिल्ड्रेन इन इंडिया हक, (नई दिल्ली : हक)

– (2005 सी), कमेन्ट्स ऑन आईसीडीएस बजट 2005-06", हक, नई दिल्ली.

– (2006 ए), "यूनियन बजट (2006-07) एण्ड चिल्ड्रेन", हक, नई दिल्ली.

होर्टन, सुज़ान (1999), "ऑपरच्यूनिटीज़ फॉर इन्वेस्टमेन्ट इन न्यूट्रीशन इन लो-इन्कम एशिया", एशियन डेवलपमैन्ट रिव्यू, 17.

होर्टन, सुज़ान एण्ड जे रॉस (2003), "दि इकॉनॉमिक्स ऑफ ऑयरन डेफिश्येन्सी", फूड पॉलिसी 28.

हन्ट, जोज़ेफ एम. (2005), "दि पोटेन्श्यल इम्पैक्ट ऑफ रिड्यूसिंग ग्लोबल मॉलन्यूट्रीशन ऑन पॉवर्टी रिडक्शन एण्ड इकॉनॉमिक डेवलपमैन्टऊ, एशिया पैसिफिक जर्नल ऑफ क्लीनिकल न्यूट्रीशन, 14.

अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान (1995), नैशनल फैमिली हेल्थ सर्वे (आईआईपीएस) 1992-93 : भारत (मुम्बई : आईआईपीएस)

– (2000), नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे 1998-99, (एनएफएचएस-2 भारत (मुम्बई : आईआईपीएस).

– (2006), एनएफएचएस-3, फैक्टशीट", आंशिक रूप में www.nfhsindia.org पर उपलब्ध.

जन स्वास्थ्य अभियान (2006), कैम्पेन इश्यूज़ इन चाइल्ड हैल्थ (नई दिल्ली : जे.एस.ए.).

खेड़ा, रितिका (2006), "मिड-डे मील्स इन प्राइमरी स्कूल्स : एचीवमेन्ट एण्ड चैलेन्जज़", ईपीडल्यू, नवम्बर 18.

लेविट, ई., एल. बेकर, एच. कोरमैन एण्ड पी. शिओनो (1995), "दि डायरेक्ट कोस्ट ऑफ लो बर्थ वेट", दि फ्यूचर ऑफ चिल्ड्रेन, 5.

मन्दर, हर्ष (2005), "प्रोमिसेज़ टू कीप : आईसीडीएस ऐट क्रॉसरोड्स", मिमियो, सेन्टर फॉर इक्विटि स्टडीज़, नई दिल्ली.

मन्दर, हर्ष एण्ड एम. कुमारन (2006), "सोशल एक्सक्लूशन्स इन आईसीडीएस : ए सोशेलोजिकल हूडयूनिट?" मिमियो, सेन्टर फॉर इक्विटी स्टडीज, नई दिल्ली.

नाग, एम. (1994), "बिलीफ्स एण्ड प्रैक्टिसिज़ अबाउट फूड ड्यूरिंग प्रेग्नेंसी", ई.पी.डब्ल्यू, सितम्बर.

राष्ट्रीय सलाहकार समिति (2004), "रिकमेन्डेशन्स ऑन आईसीडीएस", www.nac.nic.in पर उपलब्ध.

– (2005), "फॉलो-अप रिकमेन्डेशन्स ऑन आईसीडीएस", www.nac.nic.in पर उपलब्ध.

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रिशन (1992), "आईसीडीएस अप्रेज़ल इन फाइव स्टेट्स", मिमियो, नेशनल न्यूट्रिशन मॉनिटरिंग ब्यूरो, हैदराबाद।

नेशलन काउंसिल ऑफ अप्लाईड इकॉनॉमिक रिसर्च (2001), "कॉनकरेन्ट इवैल्युएशन ऑफ आईसीडीएस (भाग-1)", मिमियो, दो एनसीएईआर, नई दिल्ली.

एनसीईआरटी (2005), "पोज़ीशन पेपर ऑफ दी नैशनल फीकस ग्रुप ऑन अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन", मिमियो मार्च 24।

नेशनल इन्स्ट्टीयूट ऑफ पब्लिक कॉपरेशन एण्ड चाइल्ड डैवलपमेंट (2006), "थ्री डेकेड्स ऑफ आईसीडीएस : ऐन अप्रेज़ल", एलआईपीसीसीडी, नई दिल्ली.

ऑक्सफैम इन्टरनेशनल (2006), "सर्व दि एसेन्श्यल्स : वॉट गवर्नमेन्ट एण्ड डोनर्स मस्ट डू टू इम्प्रूव साउथ एशियाज़ असेन्श्यल सर्विसेज़", ऑक्समैन इंडिया ट्रस्ट .

प्रसाद, वन्दना (2005), "दि स्टेट ऑफ प्रिवेन्टिव हेल्थ एण्ड न्यूट्रिशनल सर्विसेज़ फॉर चिल्ड्रेन" इन गंगोली, एल, आलर, दुग्गल एण्ड ए. शुक्ला (एडीडर्स), रिव्यू ऑफ हेल्थकेयर इन इंडिया (मुम्बई : सीईएचएटी)

प्रताप, अनिता ए.के. (2003), "स्ट्राइक अगेंस्ट हंगर", आउटलुक, अगस्त.

राजीवन, ए.के. (2004), "टुवर्डस ए मॉलन्यूट्रीशन फ्री तमिलनाडु : ए केस स्टडी", इन स्वामीनाथन एम.एम., एण्ड पी. मेडरानो संस्करण में, टुवर्डस ए हंगर फ्री इंडिया (मद्रास : ईस्ट वेस्ट बुक्स).

– (2006), "तमिलनाडु : आईसीडीएस विद ए डिफरेन्स", ईपीडब्ल्यू, अगस्त 26.

रामचन्द्रन, विमला (2005), "रिफलेक्शन्स ऑन दी आईसीडीएस प्रोग्राम", सेमिनार, 546.

रामकृष्णन, यू., आर. मारटोरेल, डी. स्क्रोएडर, व आर फ्लोर्स (1999) "इन्टरनेशनल इफैक्ट्स ऑन लीनियर ग्रोथ", जर्नल ऑफ न्यूट्रीशन, 129.

राइट टू फूड कैम्पेन सेक्रेटेरिएट (2005 ए), "सुप्रीम कोर्ट ऑर्डर्स ऑन दी राइट टू फूड : ए टूल फॉर ऐक्शन", राइट टू फूड अभियान – सचिवालय, नई दिल्ली.

– (2006 ए), "युनिवर्सलाइज़ेशन विद क्वालिटी : ऐक्शन फॉर आईसीडीएस", राइट टू फूड अभियान – सचिवालय, नई दिल्ली.

– (2006 बी), "रिपोर्ट ऑफ दि हैदराबाद कनवैन्शन ऑन चिल्ड्रेन्स राइट टू फूड", राइट टू फूड अभियान – सचिवालय, नई दिल्ली.

सचदेवा, वाई., व बी. एन. टण्डन (संस्करण) (1996 ए), "आईसीडीएस : सर्वे, इवैल्युएशन एण्ड रिसर्च सिस्टम 1975-1995", केन्द्रीय तकनीकी समिति, इन्टीग्रेटेड मदर एण्ड चाइल्ड डेवलपममेन्ट, नई दिल्ली.

सक्सेना, एन.सी. (2004 ए), "आईसीडीएस प्रोग्राम इन बिहार", मिमियो, ऑफिस ऑफ दी कमिशनर्स ऑफ सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली

– (2004 बी), "आईसीडीएस प्रोग्राम इन झारखण्ड", ऑफिस ऑफ दि कमिश्नरर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली.

सक्सेना, एनसी. एण्ड एच. मन्दर (2005), "सिक्स्थ रिपोर्ट ऑफ दि कमिश्नर्स", मिमियो, ऑफिस ऑफ दी कमिश्नर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली.

– (2006), "अपडेट ऑन दी यूनिवर्सलाइजेशन ऑफ आईसीडीएस : क्लेरिफिकेशन्स एण्ड रिकमैन्डेशन्स", ऑफिस ऑफ दी कमिश्नर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली.

सक्सेना, एन.सी., व नन्दिनी नायक (2006), "इम्पलीमेन्टेशन ऑफ आईसीडीएस इन बिहार एण्ड झारखण्ड", ईपीडब्ल्यू, अगस्त 26.

सक्सेना, एन. सी. व एस.आर. संकरन (2003 ए), "थर्ड रिपोर्ट ऑफ दि कमिशनर्स" ऑफिस ऑफ दि कमिश्नर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली।

– (2003 बी), "फोर्थ रिपोर्ट ऑफ दि कमिशनर्स" ऑफिस ऑफ दि कमिश्नर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली।

– (2003 सी), "स्पेशल रिपोर्ट ऑफ दि कमिशनर्स" ऑफिस ऑफ दि कमिश्नर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली।

– (2004 ए), "समरी रिपोर्ट ऑफ दि कमिशनर्स" ऑफिस ऑफ दि कमिश्नर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली।

– (2004 बी), "फिफ्थ रिपोर्ट ऑफ दि कमिशनर्स" ऑफिस ऑफ दि कमिश्नर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली।

सिन्हा, दीपा (2006), "रीथिंकिंग आईसीडीएस : ए राइट्स बेस्ड पर्सपेक्टिव", ईपीडब्ल्यू, अगस्त 26.

सिन्हा, शान्ता (2006), "इन्फैन्ट सर्वाइवल : ए पॉलिटिकल चैलेंज", ईपीडब्ल्यू, अगस्त 26.

सुन्दररामन, टी. (2006), "यूनिवर्सलाइजेशन ऑफ आईसीडीएस एण्ड कम्युनिटी हैल्थ वर्कर प्रोग्राम्स : लेसन्स फ्राम छत्तीसगढ़", ईपीडल्यू, अगस्त 26.

टारोज़ी, एलेसान्ड्रो (2005), "ऑन दी न्यूट्रीशनल स्टेटस ऑफ इंडियन चिल्ड्रेन" मिमियो, अर्थशास्त्र विभाग, ड्यूक विश्वविद्यालय।

थॉमस, डी., व जे. स्ट्रासस (1997), "हेल्थ एण्ड वेजिज़ : ऐविडेन्स ऑन मैन एण्ड वुमैन इन अर्बन ब्राज़ील", जर्नल ऑफ इकॉनॉमैट्रिक्स, 77.

यूनिसेफ (2006), स्टेट ऑफ दि वर्ल्डस चिल्ड्रेन (न्यूयार्क : यूनिसेफ).

विसरिया, लीला (2000), "इनोवेशन्स इन तमिलनाडु", सेमिनार 489.

www.righttofoodindia.org पर भी उपलब्ध.

छह वर्ष से कम के बच्चों पर

फोकस

छह वर्ष से कम के बच्चों पर फोकस - कामकाज के दृष्टिकोण से छह वर्ष से छोटे बच्चों के स्वस्थ विकास और अधिकारों के लिए बनाई गई एक हस्तक्षेप आधारित रिपोर्ट है। रिपोर्ट बताती है कि बच्चों की देखभाल एक सामाजिक दायित्व है और यह इसको सार्वभौमिक बाल विकास सेवा का मामला बनाती है।

यह रिपोर्ट छह वर्ष से छोटे बच्चों की स्थिति से मुख़ातिब होती, भारत की एकमात्र मुख्य योजना एकीकृत बाल विकास सेवा से विस्तृत सर्वेक्षण पर आधारित है। इसके नतीजे बताते हैं कि एकीकृत बाल विकास सेवा बच्चों की ज़िदंगी में बड़ा फ़र्क़ पैदा कर सकती है, बशर्ते इस कार्यक्रम पर उतना ध्यान और सहयोग दिया जाए जितने के लायक यह है। इसी क्रम में यह रिपोर्ट एकीकृत बाल विकास सेवा को पूरा करने की कार्य योजना के केन्द्रीय उद्देश्य - ''गुणवत्ता के साथ सार्वभौमीकरण'' पर विशेष ध्यान दिलाती है।

यह रिपोर्ट विस्तृत तौर पर इससे जुड़े सामाजिक मसलों को भी समेटती है जैसे - मातृत्व भत्ता, सामाजिक बहिष्करण, बच्चों के अधिकार की राजनीति, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के सरोकार, पूर्व-स्कूली शिक्षा पर मुकम्मल नज़रिया, एकीकृत बाल विकास सेवा पर सर्वोच्च न्यायालय के आदेश और कई अन्य बातों के साथ-साथ बाल विकास के क्षेत्र में तमिलनाडु का अग्रणी काम। अलग-अलग लेखकों के सहयोग से 60 से भी ज़्यादा विशिष्ट बिन्दुओं पर बॉक्सों में कसे हुए तरीके से चर्चा की गई है।

छह वर्ष से छोटे बच्चों के अधिकारों को लेकर सचेत व्यक्तियों और संगठनों ने दो वर्ष तक नियमित रूप से अपनी प्रतिक्रिया एवं आपसी संवाद के ज़रिए फोकस को तैयार किया है। रिपोर्ट को इस तरह से लिखा गया है कि यह अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचे और इसके अन्त में कामकाज के लिए व्यापक विचार दिए गए हैं।